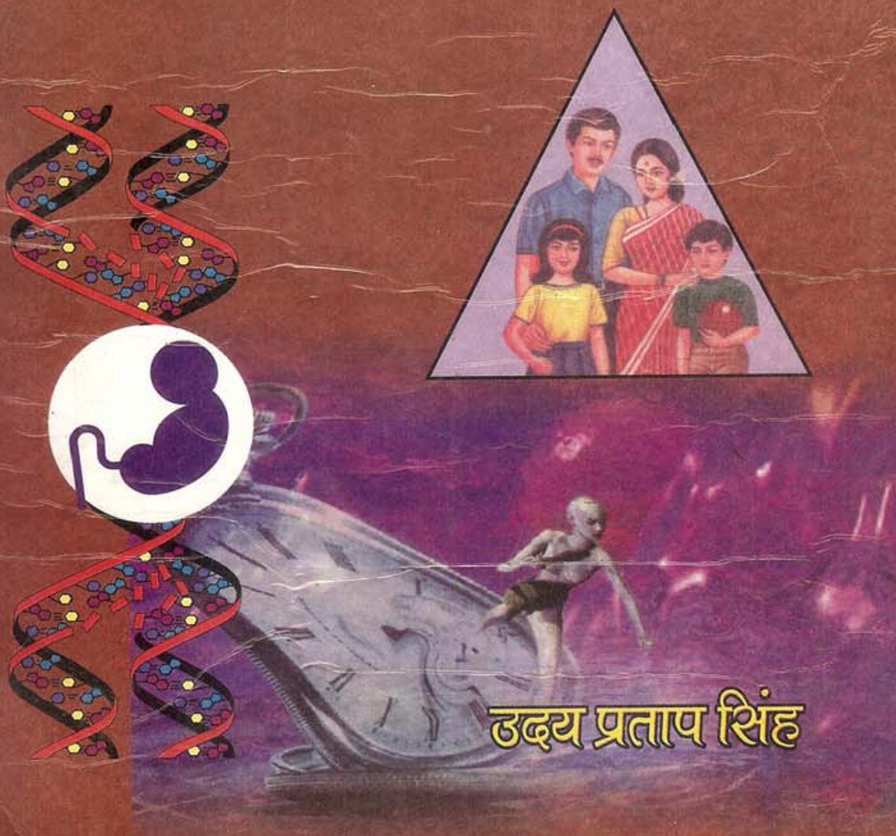
आनुवंशिक मानवविज्ञान

GENETICAL ANTHROPOLOGY



उदय प्रताप सिंह

आनुवंशिक मानवविज्ञान
(GENETICAL ANTHROPOLOGY)

लेखक
डॉ० उदय प्रताप सिंह

न्यू रॉयल बुक कम्पनी
लखनऊ

प्रथम संस्करण 2003

ISBN 81-85936-45-5

प्रकाशक

न्यू रॉयल बुक कम्पनी

प्रथम तल, शाह बिजनेस सेन्टर,
32/16, बाल्मीकी मार्ग, लालबाग
लखनऊ -226 001
फोन : (0522) 2285607

मूल्य–**225/-**

भारत में मुद्रित

श्री एम.एफ. बेग द्वारा न्यू रॉयल बुक कं०, लखनऊ के लिये प्रकाशित, और आर्क-टेक कम्प्यूटर्स, लखनऊ द्वारा टाइपसैट तथा नार्दर्न ऑफसेट प्रेस, लखनऊ द्वारा मुद्रित।

विषयवस्तु

(Contents)

समर्पण

मेरे प्रियवर समाजसेवी वरिष्ठ भ्राता

श्री दिनेश कुमार सिंह

नि0 विक्रमपुर (सीतापुर) दिनांक 1 अगस्त 2000 को अज्ञात परिस्थितियों में पंचतत्व में विलीन हुए। प्रस्तुत ग्रंथ उक्त दिवंगत आत्मा की स्मृति में अर्पित है।

प्रो० इन्दु सहाय
विभागाध्यक्ष

मानवविज्ञान विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय,
लखनऊ ☎ : **2322473** (O)
2789891 (R)

प्राक्कथन

मानव जीवन से जुड़े विषय अनेक हैं परन्तु मानव विज्ञान एक ऐसा निराला विषय है जो मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष का अध्ययन वैज्ञानिक विधि से करता है। मानव जीवन का सामाजिक-सांस्कृतिक एवं जैविक पक्ष जटिल है। उसे पढ़ कर ग्राह्य रूप में प्रस्तुत करना एक कठिन कार्य है।

संसार में अनेक मानव जातियाँ है और उनकी संस्कृति में व्यापक विविधताएँ हैं। उन्हें पढ़कर उनकी विविधताओं में अन्तर्निहित एकता तथा समग्रता को कुछ ऐसे प्रस्तुत करना कि बात सरलता से समझी जा सके और फिर भी वह सभी समाजों की संस्कृतियों पर लागू हो सके, यह काम मानवशास्त्री ही कुशलतापूर्वक कर पाते हैं। मानव की आनुवंशिक प्रक्रिया एवं नियम एक हैं परन्तु उसके प्रत्यक्ष स्वरूप अनेक हैं। प्रत्येक मनुष्य हर दूसरे से कुछ भिन्न दिखाई पड़ता है पर कहीं न कहीं उसकी जीन सम्बन्धी अभियांत्रिकी एक है। यह एक विषद विषय है। इसकी गूढ़ताओं को समझना और समझाना एक कुशल मानवशास्त्री एवं जेनेटिसिस्ट का काम तो है ही साथ ही उसे समझाने के लिए उसका एक कुशल अध्यापक होना सोने में सुहागे का काम करता है। इस पुस्तक में यह स्पष्ट प्रतीत होता है क्योंकि डा० उदय प्रताप सिंह मानवशास्त्री होने के साथ-साथ एक अनुभवी अध्यापक भी हैं। आनुवंशिकी के गूढ़ तथ्यों को आत्मसात् करके इन्होंने इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि स्नातक एवं परास्नातक विद्यार्थी भी समझ सके और वे विद्यार्थी भी जो जिज्ञासु हैं या वे जो विभिन्न सेवा संस्थानों के लिये प्रतियोगी परीक्षायें दे रहे हैं।

आशा है सभी प्रबुद्ध वर्गों को यह पुस्तक किसी न किसी प्रकार से अवश्य लाभान्वित करेगी। हिन्दी भाषा में पाठ्य पुस्तकों की कमी को पूरा करने में यह एक उपयोगी कृति है।

13-6-2003 **इन्दु सहाय**

प्रस्तावना

'जैविक माननविज्ञान' पाठ्य पुस्तक के प्रकाशनोपरान्त मेरे अनेक शुभचिन्तकों एवं विद्यार्थियों ने सुझाव दिया कि मानवविज्ञान विषय के स्नातक, परास्नातक एवं सिविल सेवा परीक्षा प्रतियोगी छात्र-छात्राओं को हिन्दी भाषा में 'आनुवंशिकी' विषय पर शिक्षकों द्वारा लिखित स्तरीय पुस्तकों का अभाव वर्षों से रहा है। यदि तदैव विषय पर पृथक रूप से सन्दर्भ सामग्री एक पुस्तक के रूप में छात्र छात्राओं को उपलब्ध कराने का प्रयास किया जाये तो इससे विद्यार्थियों एवं जिज्ञासुओं की सेवा अवश्य हो सकेगी। प्रस्तुत ग्रंथ 'आनुवंशिक मानवविज्ञान' इसी दिशा में किया गया एक प्रयास है।

यह ग्रंथ 10 अध्यायों में विभजित किया गया है। चूंकि शीघ्र ही अनेक विश्वविद्यालयों एवं सिविल परीक्षाओं का पाठ्यक्रम संशोधित किया गया है, इसलिये पुस्तक योजना में इन नवीन विषयों का विशेष ध्यान रखा गया है। **प्रारम्भिक अध्याय** में आनुवंशिक अवधारणाओं एवं परिभाषाओं की मीमांसा के साथ विषयवस्तु एवं इनकी मानव जनसंख्या में व्यावहारिकता प्रस्तुत की गयी है। **द्वितीय अध्याय** वंशागति के सिद्धान्तों की विवेचना प्रस्तुत करता है जिसके अन्तर्गत मेंडलीय सिद्धान्त के साथ नवीन अनुसंधानों को समाविष्ट किया गया है। **तृतीय अध्याय** में आनुवंशिकी के मूलभूत भौतिक आधार- कोशिका एवं केन्द्रक पर विस्तृत आलेख दिया गया है ताकि यह मानवविज्ञान में प्रासंगिक भूमिका सुनिश्चित कर सके। मानव कोशिकायें किन चरणों में विभक्त होती है तथा युग्म निर्माण की कौन सी प्रक्रियायें है इनका विस्तार से उल्लेख किया गया है। मानव आनुवंशिकी ज्ञान इसकी संरचना एवं रासायनिक बनावट के तत्वों को समझे बिना अपूर्ण हैं अतः **चतुर्थ**

अध्याय में गुणसूत्रों, जीनी संरचना तथा जैविक रसायनों- डी०एन०ए०, आर०एन०ए०, प्रोटीन आदि का समावेश किया गया है। चूंकि मानव जनसंख्या में अनेक प्रकार की विसंगितयां देखी जाती हैं। इनके कौन से मुख्य कारक हैं? ये विसंगतियां कौन-कौन सी हैं; इन सन्दर्भो को **पांचवे अध्याय** में वर्णित किया गया है। आनुवंशिक अध्ययनों की प्रणाली एवं विभिन्न उपागम **छठे अध्याय** में विस्तृत रूप से प्रस्तुत किये गये हैं तथा कतिपय नवीन सूचनाओं को भी इस अध्याय में समेटा गया है। मानव आनुवंशिकी के क्षेत्र में 1900 ई० से ही मानव संदर्भ खोजे जा रहे है जिससे इसका उद्विकासीय एवं प्रजातीय महत्व सिद्ध हो सका है तथा मानवविज्ञान में जनसंख्या आनुवंशिकी (Population Genetics) एक प्रमुख बिन्दु बना। इसलिये **सातवें अध्याय** में इसकी अवधारणा पृथक रूप से दी गयी है जिसके अन्तर्गत "हार्डी-वीनवर्ग सिद्धान्त" का विस्तार से उल्लेख किया गया है। मानव जनसंख्याओं में आनुवंशिकी बारम्बारताओं के परिवर्तित होने से नवीन जनसंख्या अथवा प्रजाति का विकास होता है जो जैविक मानवविज्ञान की मुख्य समस्या है। इनकी प्रक्रियायें कौन है जिनकी अन्तर्क्रिया विभेदों को उत्पन्न करती है, इन चर्चाओं को **अध्याय- आठ** में समाविष्ट किया गया है। इसी क्रम में **अध्याय- नवें** में मानवों में प्रमुख आनुवंशिक विभेदों की परिचर्चा प्रस्तुत की गयी है। पुस्तक के **अन्तिम अध्याय** में आनुवंशिकी की मानव व्यावहारिकता विवेचित की गयी है। वे जो नये-नये अनुसंधान मानव-कृत्यों का मूल्यांकन एवं मानव-मापन करने में समर्थ रहें हैं, उन्हें मुख्य रूप से समावेशित किये गये हैं।

अतः प्रस्तुत ग्रंथ मुख्य रूप से विश्वविद्यालयों में पढ़ाये जा रहे प्रश्नपत्रों एव प्रतियोगी परीक्षाओं के नवीन पाठ्यक्रमों पर आधारित है। आशा है जिज्ञासु छात्र-छात्रायें इससे लाभान्वित होंगे। ग्रंथ रचना में जो भी त्रुटियां हैं वे पूर्णतया लेखकीय परिधि की है। आशा है उनको उदारता पूर्वक क्षमा किया जायेगा।

पाण्डुलिपि निर्माण के दौरान लेखक विद्यार्थियों एवं शुभचिंतक शिक्षाविदों के सम्पर्क में प्रायः रहा है। वह उन सभी का हृदय से आभारी है। विशेष रूप से अपने गुरुजन प्रो० बी० आर०के० शुक्ल, प्रो० गोपाल शरण, प्रो० बनवीर सिंह, प्रो० कृष्णकान्त, प्रो० इन्दू सहाय एवं प्रो० चित्रलेखा वर्मा के द्वारा किया गया उपकार एवं मार्गदर्शन मैं जीवन पर्यन्त

नहीं भूल सकता। प्रस्तुत रचना इन्हीं के आशीर्वाद का फल है। अतः इन्हें हम सहृदय धन्यवाद देते हैं। मेरे माता-पिता एवं बहन का आशीर्वाद एवं शुभकामना यदि मेरे साथ न होती तो मैं इस लेखन में कभी प्रेरित न हो पाता; मेरी पत्नी एवं दोनों अबोध बच्चे मुझे मानसिक शान्ति न देते तो यह लेखन अधूरा ही रह जाता; मैं इन सबका सदैव ऋणी रहूँगा।

जो प्रेरणा मेरे मित्र एवं सहयोगियों, विशेषकर डॉ० नदीम हसनैन, डॉ० सुधा रस्तोगी, डॉ० ए०पी० सिंह एवं डॉ० अवधेश कुमार सिंह से प्राप्त हुई हैं तथा; जो उत्साह प्राचार्या-श्रीमती पुष्पा रानी दोहरे एवं पं० दीन दयाल उपाध्याय राजकीय महिला महाविद्यालय के मेरे सहकर्मियों से सदैव मिलता रहा, उसके लिये मै उन सभी का आभारी हूँ। प्रकाशन के दौरान श्री एम.एफ. बेग ने विशेष रुचि ली अन्यथा यह पुस्तक समय से प्रकाशित न हो पाती, इसलिये मैं इनका हृदय से आभारी हूँ। प्रस्तुत पुस्तक मेरे बड़े भाई स्वर्गीय श्री दिनेश कुमार सिंह की स्मृति में अर्पित है जिनका देहावसान आकस्मिक एवं आश्चर्यजनक परिस्थितियों में 1 अगस्त 2000 को हुआ था।

1 जनवरी 2003 **डॉ० उदय प्रताप सिंह**

लखनऊ

1

आनुवंशिक मानवविज्ञान : एक परिचय

(Genetical Anthropology : An Introduction)

आनुवंशिक मानवविज्ञान मानव के उस जैविक पक्ष का अध्ययन करता है जिसका सम्बन्ध आनुवंशिकी से है। वस्तुतः यह जैविक मानवविज्ञान की एक अध्ययन शाखा है जो मानव शरीर के आनुवंशिक आधारों की विवेचना करता है। ये आनुवंशिक आधार दो श्रेणियों में बांटे जा सकते हैं- भौतिक एवं रासायनिक। भौतिक आधार के अन्तर्गत कोशिका (Cell) केन्द्रक, गुणसूत्र, कोशिकाद्रव्य, जीन, आदि वे ईकाइयां है जो मानव शरीर की भौतिक संरचना बनाती है। इनसे संयुक्त होकर ही मानव शरीर क्रिया कर पाता है। इनकी उपस्थिति एवं क्रियाशीलता के बिना मानव शरीर की कल्पना भी नहीं की जा सकती। आनुवंशिक आधार की द्वितीय श्रेणी 'रासायनिक तत्वों की है। मूलतः ये सभी जैव-रसायन है। इनके अन्तर्गत डी०एन०ए०, आर०एन०ए०, प्रोटीन आदि को सम्मिलित किया जाता है। ये मानव शरीर की रासायनिक संरचना बनाते हैं। ये आनुवंशिक आधारों का प्रमुख भाग है जो शरीर की भौतिक संरचना ही नहीं सम्पूर्ण शरीर के आकार, गठन एवं क्रियाओं का निर्धारण व नियंत्रणं करता है। अतः आनुवंशिकी मानवविज्ञान आनुवंशिक विवेचनाओं के आधार पर मनुष्य के जैविक पक्ष का अध्ययन करता है।

मानव की आनुंवशिक विवेचनायें मुख्यतः 19वी शताब्दी के प्रारम्भ से ही की जाने लगी जिसने शारीरिक मानव विज्ञान को इतना प्रभावित किया कि इसका

आकार, अर्थ एवं विषयवस्तु भी परिवर्तित होने लगी। इसके फलस्वरूप ही एस०एल०वाशवर्न (1951) ने शारीरिक मानव विज्ञान में आनुवंशिकी का स्थान प्रमुख एवं अपरिहार्य माना। इन्होंने अपने ग्रंथ (Strategies of Physical Anthropology, 1951) में शारीरिक मानवविज्ञान के उद्देश्य एवं अर्थ पर बल दिया जिसमें आनुवंशिक प्रक्रियाएं एवं क्रियाविधियां प्रमुख हो गयीं। इसके पश्चात् गत शताब्दी के उत्तरार्ध से वाशवर्न एवं उनके सहयोगी विचारकों ने जिसे 'नवीन शारीरिक मानवविज्ञान' कहा था उसे सामान्य रुप से मानववैज्ञानिक जगत में 'जैविक मानव विज्ञान' कहा जाने लगा। इसके उद्देश्य एवं विषयवस्तु पूर्व से भिन्न हो गये जिसने अनेक नवीन संदर्भों का इसमें समावेश हुआ। अतः आनुवंशिक अनुसंधानों ने संम्पूर्ण शारीरिक मानवविज्ञान को अक्षरशः प्रभावित किया।

इन आनुवंशिक विवेचनाओं को 'मानव आनुवंशिकी' (Human Genetics) की परिधि में रखने का प्रयास बीसवीं सदी में प्रारम्भ से ही किया जाता रहा है। विश्वविद्यालय स्तर पर 'मानव आनुवंशिकी' के स्वतंत्र विभाग भी स्थापित हुए हैं। यही कारण है कि मानव आनुवंशिकी ने अभूतपूर्व प्रगति की है। इसने 'जीन' से लेकर 'मानव जीनोम' तक लम्बा रास्ता तय किया है इसके कारण ही समस्त जैविक विज्ञानों (Biological Sciences) में अपना प्रमुख एवं उपयोगी स्थान बना लिया है। चूंकि यह मूलतः मानव का अध्ययन करती है इसलिए इसका जैविक मानवविज्ञान से बेजोड़ सम्बन्ध है। इसकी जैविक मानवविज्ञान में प्रासंगिकता स्वतः सिद्ध है क्योंकि यह मानव विभेदों (Variations) के मूलतत्व एवं कारकों का उद्घाटन करती है तथा उद्विकासीय गति का मापन करती है जो जैविक मानवविज्ञान के विषय क्षेत्र हैं।

उक्त विवेचना से यह प्रश्न सहज ही उठता है कि क्या "मानव आनुवंशिकी" जैविक मानवविज्ञान की एक अध्ययन शाखा है? यदि अध्ययन शाखा है तो जैविक मानवविज्ञान में इसकी प्रासंगिकता की खोज करना निरर्थक है क्योंकि प्रासंगिकता उस समय खोजी जाती है जिसे किसी अन्य से जोड़ा जाये अथवा उसके आगमन से नवीनता उत्पन्न होने लगे; जो वाशवर्न, मांटेगू, लास्कर आदि मानव वैज्ञानिकों को बीसवी शताब्दी के उत्तरार्ध में प्रतीत हुई। अतः इससे यह इंगित होता है कि मानव आनुवंशिकी सम्पूर्णतया जैविक मानवविज्ञान का अंग नहीं है। यह अनेक अध्ययन क्षेत्रों में हिस्सेदारी अवश्य करती है। इस प्रकार की इसकी सहभागिता ही जैविक मानवविज्ञान से बेजोड़ सम्बन्ध बनाती है।

इससे एक पुनः प्रश्न उठता है कि मानव आनुवंशिकी क्या एक स्वतंत्र विज्ञान है? यदि है, तो इसके विषय क्षेत्र कौन-कौन हैं? इसकी अवधारणा क्या है? यदि नहीं, तो यह मूलतः किस स्वतंत्र विज्ञान की प्रमुख अध्ययन शाखा है? मानव का अध्ययन यह किस प्रकार से करती है? इसका आधारभूत अध्ययन-उद्देश्य क्या है? जैविक मानव-विज्ञान में प्रमुख स्थान कैसे बनाती है? क्या मानव आनुवंशिकी उन सन्दर्भों का अध्ययन करती है जो जैविक मानव विज्ञान से अंशतः या पूर्णतः असम्बद्ध है? आदि प्रश्नों के समीचीन उत्तर प्राप्त होने के पश्चात् ही मानवविज्ञान के एक क्षितिज ''आनुवंशिक मानवविज्ञान'' का मौलिक अर्थ स्पष्ट हो सकता है।

ज्ञातव्य है मानव आनुवंशिकी का शारीरिक मानव विज्ञान में आगमन अकारण नही हुआ है। मोरैन्ट, लैडस्टीनर, वीनर, हाल्डेन, राइट, डॉवजॉन्स्की ने शारीरिक मानवविज्ञान की ठोस अध्ययन-प्रणाली विकसित की है जिसको आरम्भिक ईंट जे०एफ०ब्लूमेनवाख एवं पॉलब्रोका ने अठारवीं एवं उन्नीसवीं शताब्दी में प्रदान किया था। चूंकि शारीरिक मानवविज्ञान उस समय मूलतः प्रजातीय विभेदों के आधार पर मानव प्रजातियों का वर्गीकरण करती थी तथा उन्नीसवीं शताब्दी की महत्वपूर्ण खोज ''जैविक उद्विकास'' को शनैः शनैः अपना अंग बना चुकी थी। यद्यपि उद्विकास वादियों की पहचान मानववैज्ञानिक के रुप में नही रही लेकिन फिर भी चार्ल्स डार्विन की "Descent of Man" ग्रंथ 1872 में प्रकाशित होने के पश्चात् उन्हें ''मानवउद्विकास'' का अग्रगणी चिंतक सामान्यताया स्वीकारा जाता है। इस प्रकार चार्ल्स डार्विन ने शारीरिक मानवविज्ञान को उतना ही प्रभावित किया है जितना जे०एफ०ब्लूमेनवाख ने मानवविज्ञान को अठारहवीं शदी के पूर्वार्द्ध में किया था। अतः चार्ल्स डार्विन ने अपने अन्तिम समयों में निश्चित रुप से एक शारीरिक मानववेत्ता के रुप में मानवोत्पत्ति (Origin of Man) की वैज्ञानिक समझ विकसित की है जो कालान्तर में शारीरिक मानवविज्ञान का ''मील का पत्थर'' सिद्ध हुआ।

इस प्रकार क्रमिक तीन शताब्दियों में शारीरिक मानवविज्ञान ने अपने चरमोत्कर्ष को प्राप्त किया है और तीन मुख्य प्रभाग-प्रजातीय अध्ययन एवं वर्गीकरण (अठारहवीं शताब्दी), मानव उद्विकास एवं उद्विकासीय विचारधारा (उन्नीसवीं शताब्दी) तथा मानव आनुवंशिकी एवं संश्लेषणात्मक उद्विकासीय विचार (बीसवीं शताब्दी) है। विगत शताब्दी में विभेदों के कारकों के मूल श्रोतों की खोज की गयी है जिनकों जाने बिना मानव आनुवंशिकी की अवधारणा को समझना कठिन है।

विभेदों के स्रोत (Source of Variation)

जीवोत्पत्ति से लेकर आज तक उद्विकासीय इतिहास में विभेदों का स्थान अपरिहार्य रहा है। ये उद्विकास के वास्तविक अस्तित्व का बोध कराते हैं। ये प्रायः दो प्रकार के होते हैं- सूक्ष्म एवं स्थूल।

एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में उत्पन्न होने वाले विभेदों को "सूक्ष्म विभेद" कहते हैं। इनके अध्ययन की इकाई जीन अथवा विकल्पी होती है जबकि स्थूल विभेद वास्तव में, सूक्ष्म विभेदों का ही संकुल है। यह उद्विकास की दिशा सुनिश्चित करते हैं। इन विभेदों के स्रोत उद्विकासीय बल हैं। ये विभेद (सूक्ष्म एवं स्थूल) जो उद्विकासीय बलों की अन्तर्क्रियाओं के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं, उनकी क्रियाविधि आनुवंशिक होती है जिनके अध्ययन का स्तर एक जीन होता है। ये जीन ही संशोधित सूचनायें एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तान्तरित करते हैं जिनके माध्यम से विभेद, उत्पन्न होते हैं।

अतः विभेदों का प्रमुख स्रोत जीन एवं गुणसूत्र हैं। युग्मक जनन (Gamete Formation) के समय कई घटनायें ऐसी सम्पन्न होती है? जैसे-अवियोजन (Crossing over) पुनःसंयोजन (Recombination) आदि जिनके फलस्वरुप माता-पिता के एकरुप (Identical) युग्म कतिपय जीनी परिवर्तन लाते हैं। जब दो भिन्न माता-पिता के युग्म परस्पर संयोजित अथवा निषेचित होते है तो उनके गुणसूत्रों (Chromosomes) के संयोजन की शैली पूर्णतया यादृच्छिक (Random) होती हैं। यह जीनी संरचना उत्परिवर्तन का भी शिकार होती है जो अविरल गति से घटित होने वाली एक प्रक्रिया है। ये उत्परिवर्तन जीनी एवं गुणसूत्री होते हैं जो स्वतः एवं प्रेरक अभिकर्ताओं के प्रभावों से उत्पन्न होते हैं। इन उत्परिवर्तनों में लगभग 99 प्रतिशत संख्या स्वतःजात होते हैं। (रिचर्डसून एवं स्टबूस, 1976)। अधिकांश स्वतःजात उत्परिवर्तन प्रत्येक पीढ़ी में सम्भवतः पुनरावर्ती होते हैं जो जीन कुण्ड (Gene pool) में या तो स्वीकार किये जाते हैं या अस्वीकार कर दिये जाते है। जीन कुण्ड में स्वीकार या अस्वीकार करने की यह प्रवृत्ति सम्भवतः इस बात पर आधारित होती है कि क्या यह उत्परिवर्तन किसी दिये गये समय पर लाभकारी सिद्ध्र होगा अथवा नहीं? उत्परिवर्तन के इस प्रकार के आग्रही अवतरण से विशेष जीव समूह अपने जीन कुण्ड को विविधता में सहसा अभिवृद्धि होती है, जिसके माध्यम से विकसित पर्यावरण के अनुकूलन हेतु कोई जीन समूह एक नवीन स्वैच्छिक आनुवंशिक

योग्यता प्राप्त कर लेता है। इसप्रकार एक विशेष जीव समूह नवीन पर्यावरण का अनुकूलन सरलतापूर्वक करने में सक्षम हो जाता है तथा उत्परिवर्तन एक विशेष जीवसमूह के उद्विकास में लाभकारी सिद्ध होता है।

जब अर्धसूत्री कोशिका विभाजन के दौरान जीनों अथवा समस्त क्रोमोसोमों (गुणसूत्रों) का मिश्रण अनेको प्रकार के जीन प्ररुपों (Genotypes) में होता है तब पुनर्संयोजन की उत्परिवर्तन से प्रतिद्वन्दिता होती है। इससे ये दोनों विभेदों के संसाधन के रुप में साथ-साथ क्रिया करते हैं। जहां उत्परिवर्तन जीनों के अस्तित्व में परिवर्तन उत्पन्न करता है वहीं पर पुनर्संयोजन जीनों के अस्तित्व का पुनर्गठन करता है।

इसके अतिरिक्त पुनर्संयोजन प्राकृतिक चुनावी अभिकर्ता (Selective agent) एवं संकरण के रुप में विभेद उत्पन्न कर सकता है जिससे संकरण विभेदन की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि वह मानव की विभिन्न संस्कृतियों में भी प्रासंगिक है। एक प्रसिद्ध उद्विकासविद स्टेविन्स ने इसे भिन्न-भिन्न अनुकूलनशीलता जीन समूहों को रखने वाली जनसंख्याओं के मध्य अन्तर-वरण की प्रक्रिया के रुप में परिभाषित किया है। क्रमविकासीय तथ्य यह स्पष्ट करते हैं। कि इस क्रियाविधि के परिणामस्वरुप आनुवंशिक अस्तित्व की अनुकूलन क्षमता में नवीन वृद्धि होती है जिससे संकर वर्ण (Hybrid) अपने उत्तरजीवी अस्तित्व की क्षमता विकसित करने में सक्षम होता है (रिचर्डसन एवं स्टबस 1976)।

जब ऐसे जीन जो किसी जनसमूह एवं पर्यावरण के मध्य अनुकूली क्षमता के उच्चतम स्तर को प्रदर्शित करते हैं तो उनमें से प्रकृति के सर्वाधिक अनुकूल जीन प्ररुप बार-बार उत्पन्न होते हैं। इस क्रिया विधि के सतत रहने से कालान्तर में सूक्ष्म विभेदों के समूह उत्पन्न होते हैं जो अन्ततः बृहद विभेदों का कारण बनते हैं। इसीप्रकार जीनी अपसरण (Genetic drift) एवं अन्तःप्रजनन (Inbreeding) की क्रिया भी सूक्ष्म विभेदों को प्रोत्साहित करती है।

आनुवंशिक एवं आकारीय विभेद
(Genetic and Morphological Variation)

सूक्ष्म विभेद जो वृहद विभेदों की मौलिक इकाई माने जाते हैं, दो प्रकार के होते हैं। एक तो वे विभेद हैं, जिनकी जीन बारम्बारता (Gene frequencies) ज्ञात

की जा सकती है तथा उनके लिए एक जीन उत्तरदायी होता है, उन्हें आनुवांशिक विभेद कहते है। इसके विपरीत दूसरे वे विभेद हैं, जिनकी जीन बारम्बारता ज्ञात नहीं की जा सकती है एवं उनके उत्तरदायी अनेको जीन होते हैं, इन्हें आकारिक विभेद कहते हैं।

इस प्रकार विभेदन जिन प्रक्रियाओं या क्रियाविधियों से उत्पन्न होता है वे मूलतः आनुवंशिक होती है। यह आनुवंशिक क्रियाविधि ही उद्विकास का मुख्य स्रोत है आनुवंशिक क्रियाविधियों के अध्ययन के विज्ञान को मानव आनुवंशिकी या जेनेटिक्स (Genetics) के नाम से पुकारा जाता है।

आनुवंशिकी की क्रियाविधियों को समझने के लिए आनुवंशिकी के बहुआयामी पहलुओं को समझना आवश्यक होगा। इसके आयाम तभी सरलता से समझे जा सकते है जब इसका सारगर्भित अर्थ समझ ले। अतः आनुवंशिकता की क्रियाविधि का वर्णन करने के पहले हम अब आनुवंशिकी का सरल अर्थ एवं विषय क्षेत्र समझने का प्रयास करेंगे।

मानव आनुवंशिकीः अवधारणा
(Human Genetics : Concept)

मानव आनुवंशिकी के अर्थ एवं विषयक्षेत्र का वर्णन करने के पहले आनुवंशिकी को समझ लेना आवश्यक है। आनुवंशिकी जो आंग्लभाषा में ''जेनेटिक्स'' के नाम से जाना जाता है। इसका सर्वप्रथम प्रयोग बेटसन ने सन् 1900 में किया था। ये शब्द वास्तव में ग्रीक भाषा के 'जीन' (Gen) से व्युत्पन्न हुआ है जिसका अर्थ है "to become" या बनना या "to grow into"अर्थात् 'विकसित होना' या 'अवतरित होना'। अतः आनुवंशिकी ''पूर्वस्थिति के समान विकसित'' पदार्थ या जीव के ज्ञान से सम्बन्धित विज्ञान है। इसमें मात्र वंशागत कारकों का ही अध्ययन नहीं होता है वरन् उन विधियों का भी अध्ययन होता है जिसका अनुसरण करते हुए कोई आनुवंशिक लक्षण एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तान्तरित होता है तथा इसमें उन वंशागत ईकाईयों का भी अध्ययन होता है।

कर्टस्टर्न ने इसे अन्य शब्दों में परिभाषित किया है। इनके अनुसार वंशानुक्रमण के विज्ञान को आनुवंशिकी कहते हैं। इसकी उत्पत्ति ग्रीक भाषा के मूल शब्द 'जीन' से हुई है जिसका अर्थ है किसी में विकसित होना जिससे यह प्रदर्शित

होता है कि आनुवंशिकी न केवल वंशागत कारकों के पारगमन को अध्ययन करता है वरन् उन विधियों का भी अध्ययन करता है जिनमें वे अपने को किसी व्यक्ति के विकास तथा जीवनकाल में प्रकट करते है।" (The Science of inheritance is called genetics, a term derived from the greek root "gen", Which means to become or to grow into something. It signigies that genetics deals not only with the transmission of hereditary factors but also with the ways in which they express themselves during the development and life of the undividuals).

उक्त परिभाषा में "वंशागत कारकों के पारगमन" एवं इनकी "विधियों" पर बल दिया गया। डॉब्जाँस्की (Dobzhansky) ने आनुवंशिकी को उम्र परिभाषा से थोड़ा हटकर परिभाषित किया है वे परिभाषित करते हुए कहते है कि "इसका कार्य उस क्रियाविधि को वर्णन करना है जो सन्ततियों को अपने जनकों के समान बनाता है, जो एक ही और भिन्न स्पीसीज के व्यक्तियों को कुछ सन्दर्भों में एक दूसरे के समान तथा दूसरे से असमान प्रदर्शित करता है और कुछ जीवों में उद्विकासीय प्रक्रिया के दौरान समयानुसार परिवर्तन का कारण होता है।"

इस परिभाषा में डॉब्जाँस्की ने आनुवांशिक क्रियाविधि पर बल दिया है जिसके माध्यम से सन्तति जनक के समान एवं अन्य व्यक्तियों से भिन्न रुप में विकसित होता है तथा यह क्रियाविधि कालान्तरण में उद्विकासीय प्रक्रियाओं के प्रभाव से परिवर्तनों का कारण बनती है। इसीप्रकार जे०बी०एस०हाल्डेन (J.B.S.Haldane) ने निम्नलिखित परिभाषा दी हैः

"आनुवंशिकी जीवविज्ञान की वह शाखा है जो समान जीवों में निहित भिन्नताओं से सम्बन्धित है।" (Genetics is that branch of Biology which is concerned with innate differences between similar organisms).

ह्वाइटिंगहिल (Whitting Hill) ने आनुवंशिकी की परिभाषा इस प्रकार दी है। कि-"आनुवंशिकी विज्ञान व्यक्तियों के मध्य दृश्यमान भिन्नताओं का अध्ययन करता है और उनमें पाये गये जीनी या गुणसूत्रीय भिन्नताओं को सम्बन्धित करने की चेष्टा करता है।" (The Science of genetics studies the phenotypic (visible) differneces between individuals and attempts to relate them to underlying genic or chromosomal differences).

इस प्रकार उक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि आनुवंशिकी विज्ञान की वह शाखा है जिसमें (1) वंशागत तत्वों का अध्ययन होता है, (2) वंशागत क्रियाविधियों का अध्ययन होता है, (3) ईकाइओं का अध्ययन होता है जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में पारगमित होने वाले तत्वों का नियन्त्रण करती है, (4) नातेदारों के मध्य वंशानुक्रमित भिन्नताओं का उद्विकासीय संदर्भ में अध्ययन होता है तथा (5) व्यक्तियों में फीनोटिपिक अर्थात्दृश्यमान भिन्नताओं का अध्ययन होता है। जो जीनी एवं गुणसूत्रीय भिन्नताओं से अन्तर्सम्बन्धित होते हैं। संक्षेप में "आनुवंशिकी वंशागत क्रियाविधियों विविधताओं एवं उससे सम्बन्धित विषयों का अध्ययन है।"

मानव आनुवंशिकी की सीमायें
(Limitations of Human Genetics)

आनुवंशिकी अध्ययन फल मक्खियों अथवा पौधों के ऊपर करना सरल है। प्रयोगशाला में उन सारी स्थितियों का सृजन किया जा सकता है जिनमें ये जीव भोजन, प्रकाश ताप, एवं अन्य प्राकृतिक परिस्थितियों को प्राप्त करे सकें। एक प्रयोगकर्त्ता परिस्थितियों की आवश्यकतानुसार अपने प्रयोग पर नियंत्रण रख सकता है। वह अपनी पूर्व योजना अथवा शोध योजना के अनुसार पौधों को 'स्व' अथवा 'पर' परागण करवा सकता है। वह नर एवं मादा में आनुपातिक परपरागण करा सकता है। उसकी शोध तकनीक त्रुटिपूर्ण हो सकती है। लेकिन वह अपने प्रयोग की पुनरावृत्ति एवं पुनःपरीक्षण कई बार कर सकता है। अन्य विद्वान भी उसके प्रयोगों का परीक्षण कर सकते हैं क्योंकि आनुवंशिकी में अन्य प्राकृतिक विद्वानों का समान स्वतंत्र परीक्षण किसी नियंत्रणात्मक प्रयोग का एक महत्वपूर्ण पहलू है। इसप्रकार जब किसी पूर्व प्रयोग के परिणामों के समान ही तादाम्य परिस्थिति में किये गये पुनः प्रयोगों के परिणाम की पुनरावृत्ति हो तो उस आगत 'परिणामों' की विश्वसनीयता में वृद्धि होती है।

इस प्रकार के प्रयोगशाला में होने वाले प्रयोग मानव जनसमूहों में नहीं किये जा सकते हैं। जब मानव को एक आनुवंशिक अध्ययन की वस्तु के रुप में रखनें की कोशिश करते हैं तो अनेकों आपत्तियों एवं कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है क्योंकि सिद्धान्तरूप से आनुवंशिक प्रयोगकर्त्ता उन्ही मानवीकृत जीव समूहों पर प्रयोग करते है जो आनुवंशिक रूप से पूर्णतः अथवा अंशतः समरूप होते हैं। उसे प्रजनन के द्वारा समान पर्यावरणिक परिस्थितियों में अनेकों सन्तति पीढ़ियों की

आवश्यकता होती है। मानव का आनुवंशिक अध्ययन करने में प्रमुखतया निम्नलिखित कठिनाइयाँ होती हैं :

1. मानव जनसमूहों की आनुवंशिक विविधता अत्यधिक होती है जो प्रयोगकर्त्ता के नियंत्रण से बाहर है।

2. मानव का जैविक वातावरण अत्यधिक विविधतायुक्त है। वह विश्वव्यापी वातावरण का सरलता से अनुकूलन कर सकता है। उसकी संस्कृति अत्यधिक विविधता प्रदर्शित करती है जिससे स्थान-स्थान पर इसका स्वरुप रुपान्तरित होता है जो किसी व्यक्ति के पर्यावरण का निर्माण करता है।

3. आनुवंशिकीविद् के शोध का प्राथमिक तत्व विभिन्न जीनी प्ररूपों का नियन्त्रणात्मक एवं प्रयोगात्मक प्रजनन करवाना है। वह मानव में किसी माता-पिता का जनन एक प्रायोगिक योजना के उद्देश्यों की पूर्ति नहीं कर सकता। सामान्यतया आनुवंशिक अध्ययन अनेकों श्रंखलाबद्ध एवं क्रमिक पीढ़ियों के ज्ञान पर आधारित होते है। फलस्वरुप आनुवंशिक अध्ययनों का समुचित प्रयोज्य (Subject) वही जीवरुप है जिनमें सन्ततियाँ अपने जनक पीढ़ी को सरलता एवं शीघ्रता से प्राप्त कर लेती है। उदाहरण के लिए पौधे एवं लद्युकाय स्तनधारी चूहे इस उद्देश्य को सरलता से पूर्ति करते हैं।

4. मक्खियां, फलमक्खिया, मॉथ एवं एक कोशिकीय जीवों का बैयक्तिक जीवनकाल छोटा होता है अतः इनका आनुवंशिक अध्ययन भी सरल है। इसके अतिरिक्त फलों अथवा जंगली वृक्षों अथवा घोड़ों अथवा पशुओं के आनुवंशिक अध्ययन में अधिक धैर्य की आवश्यकता पड़ती है। मनुष्यों में तो जीवनकाल प्रयोगशाला के जीवों की अपेक्षा अत्यधिक लम्बा होता हैं। इनमें प्रायः प्रयोगकर्त्ता एवं प्रयोज्य की आयु समान होती है। जिससे आगामी पीढ़ियों की क्रमिक ज्ञान सीमित होता है तथा एक ही समय में कई श्रंखलाबद्ध पीढ़ियों के आँकड़े उपलब्ध नही हो पाते।

5. मनुष्य को प्रयोगकर्त्ता किसी निश्चित प्रयोगशाला की सीमा रेखा में अधिक समय तक नहीं रख सकता और न ही अपने शोध योजना की आवश्यकता के अनुरुप उससे प्रजनन करवा सकता है क्योंकि ये दोनों ही व्यावहारिक एवं सामाजिक गतिविधियां है। प्रत्येक समाज में जीवन साथी के चुनाव के

पृथक-पृथक मान्य तरीके हैं। जिनके अनुसार ही उस समाज के सदस्य सन्तोनोत्पत्ति कर सकते हैं। कौन मनुष्य कब एवं किस स्त्री का लैंगिक वरण करेगा, यह पूर्व निश्चित नहीं है। अतः ऐसी स्थिति में प्रयोगकर्त्ता आनुवंशिक प्रयोगों हेतु यह प्रयास करता है कि उसकी शोध-परियोजना इन प्रयोगों के अनुसार ही पूर्व निश्चित हो।

6. अनेकों कारक वंशागत लक्षणों के हस्तान्तरण की विधियों को प्रभावित करते है। आज हम जानते हैं कि इन लक्षणों के हस्तान्तरण सांख्यकीय नियमों का पालन करते हैं। इसके लिए विशाल संख्या में सन्ततियों की उपलब्धता उपयुक्त होती है। मनुष्यों में यह संख्या छोटी होती है। बड़ी संख्या वाले परिवार भी प्रायः सांख्यकीय गणना में आकार में छोटे प्रतीत होते हैं।

इसप्रकार मानव जनसंख्याओं के अध्ययन में उक्त बाधाओं एवं कठिनाइयों को समझते हुए मानव आनुवंशिकीविद् सावधानीपूर्वक उन्हीं समुदायों से परिवारों का चुनाव करता है जो एक समान पर्यावरण में पलपोष रहे हों तथा आनुवंशिक समानता को प्रदर्शित करते हो तथा समजातीय समूह हो। अनुसंधानकर्त्ता पर्यावरणिक एवं आनुवंशिक विविधताओं को नियंत्रण करने की कोशिश करता है। यद्यपि वह मनुष्यों में अपनी शोध योजना के अनुरुप लैंगिक वरण को व्यवस्थित नहीं कर सकता तथापि वह उन्ही जनकों के संन्तति आंकड़े संग्रहीत कर सकता है जो उसकी शोध योजना के उपयुक्त हो। तीसरे, मनुष्य का जीवनकाल प्रयोगशाला के जीवों की अपेक्षा लम्बा होता है तथापि अध्ययनकर्त्ता विशिष्ट प्रविधियों का प्रयोग करके एक अथवा दो पीढ़ियों की सूचनाएं एकत्रित कर सकता है जिससे अपेक्षाकृत लम्बी श्रंखलाबद्ध ज्ञान प्राप्त हो सकता है। चौथे, यद्यपि मानव परिवार संख्यात्मक दृष्टि से छोटे होते हैं तथापि रक्त सम्बन्धी परिवारों के आंकड़ों को समायोजित करके सांख्यकीय विश्लेषण के लिए पर्याप्त सामग्री एकत्रित की जा सकती है। चूंकि मानव जनसमूह संख्या में विशाल होते हैं, इससे लाखों परिवारों के जननात्मक आंकड़े एक आनुवंशिकीविद के लिए पर्याप्त हो सकते हैं। वह इनमें से सर्वाधिक उपयुक्त आंकड़ों का आवश्यकतानुसार चुनाव कर सकता है।

अतः मानव को समझने के लिए आनुवंशिकी विशिष्ट रुप से प्रासंगिक है। इसकी उत्पत्ति उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्व हुई थी। परन्तु इस विज्ञान का विकास उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भिक काल में हुआ। मानव आनुवंशिकी के क्षेत्र में जो

महत्वपूर्ण शोध किए गये हैं उन वैज्ञानिकों में से डलबर्ग (Dahllberg), गाल्टन (Galton), पेनरोज़ (Penrose), फिशर (Fischer), हाल्डेन (Haldane), ली (Li), डॉब्जांस्की (Dobzhanski), स्टर्न (Stern), आदि प्रमुख हैं। लेकिन प्रमुखतया मानव आनुवंशिकी पशुओं एवं वनस्पतियों पर किये गये। अध्ययनों से उद्धृत सामान्य आनुवंशिक सिद्धान्तों पर आधारित है। आनुवंशिकी के सामान्य सिद्धान्त मानव संदर्भ में आज भी उतने ही प्रासंगिक है जितने कि वे सरल रचना वाले एक कोशिकीय एवं बहुकोशिकीय जीवों के संदर्भ में परिलक्षित होते है। इन सामान्य आनुवंशिक नियमों को मानवेत्तर जीवों के संदर्भ में सरलता पूर्वक प्रदर्शित किया जा सकता है, लेकिन मानव के संदर्भ में अनेकों विघ्न उत्पन्न होते है। अतः पशु-पक्षियों एवं वनस्पतियों के ऊपर किये अध्ययनों से विकसित वंशानुक्रमण सिद्धान्त प्रायः मानव जनसमूह के संदर्भ में सहायक होते हैं।

मानव में वंशागति का ज्ञान हमें मेंडल के मटर के पौधों पर किये गये प्रयोगों के पश्चात् ही हो सका। जब निल्सन-इहले (Nilson-Ehle) तथा ईस्ट (East) ने कार्न बीज पर प्रयोग किया उसके पश्चात् ही शरीर का आकार, स्वरूप, मानव की बुद्धिमतता अंक आदि मानव के गणनात्मक लक्षणों का ज्ञान हो सका। मानव में रक्तवर्णांधता के वंशानुक्रमण की जटिलता तभी जानी जा सकी जब पक्षियों, तथा मक्खियों में लिंग सहलग्न (Sex linked) लक्षणों के पारगमन की प्रतिरूप का अनुसंधान किया गया। अतः इससे सिद्ध होता है कि मानवेतर सजीवों पर किये गये प्रयोगों का महत्व मानव आनुवंशिकी में है।

मानव आनुवंशिकी उन आधारभूत सिद्धान्तों एवं उनकी उपयोगिता से सम्बन्धित है जो मानव जाति में निरन्तर एवं सार्वभौमिक है तथा वे परिवारों, वंशावलियों एवं जनसंख्या अध्ययनों से उद्धरित किए गये हैं। इसका सम्बन्ध उन नियमों तथा विधियों से भी है जो वंशानुगत लक्षणों के पारगमन को प्रगट करते हैं, तथा आनुवंशिकता के स्वभाव को प्रगट करते हे। इसका सम्बन्ध मानव 'जीन' की प्रक्रिया एवं उसकी अभिव्यक्ति तथा उसको प्रभावित करने वाले पर्यावरण से भी है। यह लिंगभेद, आनुवंशिक स्वरूप एवं वंशानुगत नवांकुरित विभेदों से भी सम्बन्धित है। अतः यह वंशानुक्रमण का विज्ञान मानव की उन वैयक्तिक, जन्मजात, शारीरिक अथवा मानसिक, तथा सामान्य अथवा असामान्य लक्षणों के वंशागति से है जो एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्तियों से, मानव स्पीशीज को मानवेत्तर स्पीशीज से

पृथक करता है। स्वभाजतः यह वंशानुगत समानताओं एवं असमानताओं से तथा इनकी पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरिता से सम्बन्धित है। संक्षेप में, यह एक मौलिक एवं व्यावहारिक विज्ञान की शाखा है जो मानव में वंशानुक्रमण एवं उससे सम्बन्धित विषयों का अध्ययन करती है। इसको इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका (Encyclopeadia Britanica) में निम्नांकित शब्दों में परिभाषित किया गया है :

"Human Genetics is especially concerned with the interplay of heredity and environmental factors in determining the physical characters of man, with the effects of heredity on disease, abnormalties and special abilities; and with the biological differentiation of interbreeding groups of man, such as races or subgroups seperated by geographic or cultural factors such as language, religion or tradition."

अर्थात् "मानव आनुवंशिकी" विशेषतया शारीरिक लक्षणों को समझने हेतु वातावरण की अन्तक्रिया; रोग; विकृतियों तथा विशेष क्षमताओं पर वंशागति के प्रभाव तथा मनुष्य के संकरण समूहों प्रजाति या उपसमूह जो भौगोलिक अथवा सांस्कृतिक तत्वों या भाषा धर्म परम्परा एक दूसरे से पृथक हों, ये जैविक विविधता से सम्बन्धित है।

इस प्रकार मानव आनुवंशिकी वंशागति एवं पर्यावरण की अन्तक्रियाओं के साथ-साथ जैविक विविधताओं, रोगों, विकृतियों, विशेष क्षमताओं, मानवसमूह संकरणों, सांस्कृतिक-सामाजिक एवं भौगोलिक प्रभावों का अध्ययन करती है। इन कारणों से जैविक मानवविज्ञान से अभिन्न सम्बन्ध रखती है। चूंकि इसकी उत्पत्ति के स्रोत आनुवंशिकी में निहित है इसलिये इसे क्या आनुवंशिकी की अध्ययन शाखा कहना समीचीन होगा जो मुख्यरूप से मनुष्य का आनुवंशिक अध्ययन करती है?

सिद्धान्ततया आनुवंशिकी के तीन प्रमुख शाखायें हैं ः मेंडलीय आनुवंशिकी, जनसंख्या आनुवंशिकी एवं आणविक या जैव रसायनिक आनुवंशिकी। मानव आनुवंशिकी में इन तीनों श्रेणियों का विचारधारायें समाविष्ट हैं उसी प्रकार जैसे वनस्पति एवं जन्तु आनुवंशिकी में यही विचारधारायें पायी जाती हैं। अतः आनुवंशिक विचार सार्वभौमिक है। इनहें व्यावहारिकता, प्रयोग एवं स्थान के आधार पर वनस्पति, जन्तु एवं मानव आनुवंशिकी में बांटा जा सकता है जो क्रमशः वनस्पति विज्ञान, जन्तुविज्ञान एवं मानवविज्ञान की अध्ययन शाखा ही हो सकती है, सिद्धान्तरुप से इनका स्वतंत्र अस्तित्व नहीं हो सकता। यह ठीक उसी प्रकार समझा

जा सकता है जैसे जीवन विज्ञान (Life Science) में वनस्पति, जन्तु एवं मानव विज्ञान समावेशित हो जाते हैं।

इस प्रकार मानव आनुवंशिकी एक स्वतंत्र विज्ञान नही है क्योंकि इसकी अध्ययन प्रणाली (Methodology) हर प्रकार से उद्धृत है एवं पड़ोसी विज्ञानों से उधार ली गयी है। जब तक किसी विज्ञान की सोंच दर्शन सीमित एवं उद्धृत रहता है तब तक उसकी ''कार्यप्रणाली'' भिन्न नहीं हो सकती। चूंकि मानव आनुवंशिकी मानवविज्ञान एवं आनुवंशिकी के सिद्धान्तों एवं प्रणालियों को जोड़ने का अभूतपूर्व प्रयास करती है। अतः यह इन दोनों विद्वानों के शोध-क्षेत्रों का संगम स्थल है। यह इन दोनो विज्ञानों का व्यावहारिक अध्ययन-क्षेत्र है। जिस समय यह मानव का एक जीव एवं व्यक्ति (Individual) के रुप में अध्ययन करती है तब यह ''आनुवंशिकी'' के अधिक सन्निकट हो जाती है; तथा जिस समय यह मानव का उसकी संस्कृति एवं समूह के रुप में अध्ययन करती है तो उस समय यह मानवविज्ञान से तादात्म्य सम्बन्ध बना लेती है। इससे मानवआनुवंशिकी का मध्यमार्गी दृष्टिकोण विकसित होता है। इसका स्वतंत्र अस्तित्व प्रतीत नहीं होता और न मानवविज्ञान में पूर्ण विलय सम्भव है।

सिद्धान्त रूप से मानवविज्ञान में जिन आनुवंशिक विचारों एवं विवेचनाओं को पढ़ते हैं वह ''आनुवंशिक मानवविज्ञान'' है न कि मानव आनुवंशिकी। सूच्य है मानव आनुवंशिकी पूर्णतः तब होती है जब मनुष्य का अध्ययन 'एक जीव एवं व्यक्ति' के रुप में किया जाता, जब कि जैविक मानवविज्ञान का उद्देश्य मनुष्य को 'एक सांस्कृतिक एवं सामूहिक प्राणी' के रुप में अध्ययन करना है। वह जैविक मानकों (Standards) की 'सामूहिक संरचना' तलाशता है इससे जैविक मानवविज्ञान का 'सर्वांगीण दृष्टिकोण' (Holistic Approach) विकसित होता है। वह मानव को 'जीव, संस्कृति एवं समूह' के रुप में एक साथ अध्ययन करता है। मानव का अध्ययन 'एक व्यक्ति' (An individual) के रुप में कभी नहीं करता। अतः वे विचारधारायें और कार्यप्रणालियां जो जैविक मानवविज्ञान की परिधि में विकसित हुई हैं वह समस्त शोध क्षेत्र एवं अध्ययन ''आनुवंशिक मानवविज्ञान'' है जो सिद्धान्तरूप से ही नही तथ्य विवेचनाओं से भी मानवविज्ञान की एक वैध अध्ययन शाखा है।

वस्तुतः आनुवंशिक मानवविज्ञान सांस्कृतिक मूल्यों, सामाजिक नीतियों तार्किक प्रतिमानों से बंधी है जो पूर्ण मानवता एवं कल्याण को प्राथमिकता देती हुई मनुष्य

के आनुवंशिक पक्ष का अध्ययन करती है। यह एक वंशागति, पर्यावरण की अन्तर्क्रियाओं को प्रकाशित करती हुई मानव की सजातीय विविधताओं एवं उदविकासीय प्रवृत्तियों का अध्ययन करती हे। यह जैविक मानवविज्ञान का आकाट्य अंग एवं हिस्सा है। यह जैविक मानवविज्ञान से तादात्म्य सम्बन्ध रखती है हुई मानवविज्ञान के अध्ययन उद्देश्यों को पूर्ण करने का प्रयास करती है। यह मानव आनुवंशिकी के शोधक्षेत्रों एवं अध्ययनों से अप्रतिम समानता रखने के बावजूद भी मानववैज्ञानिक विशिष्टतायें अन्तश में छिपाये है। इसी अनूठेपन के कारण यह मानव आनुवंशिकी से अंशतः भिन्न है।

विषय क्षेत्र
(Scope)

आनुवंशिक मानवविज्ञान के अन्तर्गत मुख्यतः तीन शोध क्षेत्र देखे जा सकते हैं-जनसंख्या उद्विकासीय आनुवंशिकी, आणविक एवं जैव रासायनिक आनुवंशिकी तथा भौतिक एवं संरचनात्मक आनुवंशिकी।

भौतिक तथा संरचनात्मक आनुवंशिकी मानव कोशिकाओं, केन्द्रक, गुणसूत्रों एवं, जीन की विवेचना करती है। मानव शरीर की दोनों दैहिक एवं जनन कोशिकाओं की विवेचना करती हुई यह शारीरिक विकास एवं मानव जाति निरन्तरता को प्रकाशित करती है। यह इसका भी विश्लेषण करती है कि मानव कोशिकायें, गुणसूत्र एवं जीन किन सिद्धान्तों का अनुसरण करते हुए पीढ़ी दर पीढ़ी अभिव्यक्त होते हैं। जनसंख्या एवं उदविकासीय आनुवंशिकी जीन के सामूहिक संरचना एवं उनके परिणामों का अध्ययन करती हैं। मानव जनसंख्या की आनुवंशिक संरचना क्या है? कैसे एक जनसंख्या अथवा नृजातीय समूह में जीनी परिवर्तन घटित होते हैं? जीन-परिवर्तन एवं उदविकास में क्या सम्बन्ध है? आदि प्रश्नों के उत्तर यह शाखा तलाशती है। जबकि आणविक एवं जैव रासायनिक आनुवंशिकी मानव शरीर के अणु- डी.एन.ए. (DNA) & आर.एन.ए. (RNA) माइट्रोकाण्ड्रिया तथा जैव रासायनों-प्रोटीन, एन्जाइम आदि की विवेचना करती है। इसके विकास का इतिहास अति नवीन है। इसके अतिरिक्त आनुवंशिक मानवविज्ञान में विभिन्न प्रकार के लक्षणों से सम्बन्धित विषयों का अध्ययन विभिन्न विधियों के द्वारा किया जाता है। असामान्य लक्षणों की वंशागति का अध्ययन परिवार, वंश एवं रक्त सम्बन्धियों की वंशावली के माध्यम से किया जाता है। तत्पश्चात् आनुवंशिक

परामर्शदाता प्रभावित स्थितियों के आधार पर प्रभावित व्यक्ति या चिकित्सक को उपयोगी परामर्श दे सकता है। मानव जनसंख्या में आनुवंशिकी के इस अमूल्य उपयोगिता के फलस्वरुप विभिन्न व्याधियों का निदान किया जाता है। चिकित्सा क्षेत्र में इसकी उपयोगिता के फलस्वरुप "चिकित्सा आनुवंशिकी" (Medical Genetics) विकसित हुई। इसके अन्तर्गत, किसी भी प्रभावित स्थिति का आनुवंशिक कारकों से सम्बन्ध निर्धारित किया जाता है। दृष्टान्तस्वरुप कई लक्षणों से युक्त आनुवंशिकता की क्रियाविधि जटिल होती है। वह अनेक कारको से नियन्त्रित होने के साथ-साथ मानव में विद्यमान अनेकों प्रकार के रक्त समूह निहित है। इन विभिन्न रूधिर वर्ग प्रणालियों से कई प्रकार की व्यांधियाँ सम्बन्धित है जिनका ज्ञान चिकित्सकों को रोग निदान के लिए आवश्यक है। जैसे-A रूधिर वर्ग सदस्यों के आमाशय (Stomach) में कैंसर एवं मधुमेह जैसी व्याधियों की सम्भावना रहती है। इसप्रकार आनुवंशिक रोगों हेतु कई सरल उपाय आनुवंशिक परामर्शदाता दे सकता है लेकिन इनका निदान प्रर्णरूपेण नहीं किया जा सकता क्योंकि गुणसूत्रों में विद्यमान अनेकों जीन्सों के कारण विभिन्न प्रकार की स्थितियाँ उत्पन्न होती है। अतः उनका निदान भी एक कठिन समस्या है। एक जीन की विकृति से उत्पन्न परिस्थितियों के निदान में अनेकों जीन्स से उत्पन्न विकृति को समझना सरल है। भविष्य में, आनुवांशिकी का ज्ञान और भी अधिक व्यापक होने से यह कहा जा सकता है कि आयुर्विज्ञान में "आनुवंशिक अभियान्त्रिकी" (Genetic Engineering) 'जीन चिकित्सा' (Genetherapy) "डी०एन०ए० फिंगर प्रिंटिग" (DNA Finger Printing) जैसी जीन्स से सम्बन्धित प्रविधियां और अधिक विकसित होगी।

चूँकि आनुवंशिक इकाई 'जीन' डी०एन०ए० के बने होते है। अतः गुणसूत्र DNA से विनिर्मित होते हैं जो कोशिका के केन्द्रक में पाये जाते हैं। इस प्रकार क्रमिक पीढ़ियों के मध्य जनन कीशिकाओं के केन्द्रक एक अविच्छिन्न सेतु का कार्य करता है। केन्द्रक की संरचना एवं उसके घटक तथा न्यूक्लिक अम्लों की रचना एवं गुणों के ज्ञान के बिना आनुवंशिकी का ज्ञान अधूरा है। इसके समस्त पहलुओं को समझने हेतु कोशिका के विभिन्न अंगों एवं उपांगों का अध्ययन किया जाता है। आनुवंशिकी के इस महत्वपूर्ण शाखा को 'कोशिकानुवंशिकी' (Cytogenetics) के नाम से जाना जाता है।

रूधिरवर्ग, Rh कारक, लिंग विभेदन, एवं लिंग निर्धारण आदि शरीर क्रियात्मक लक्षणों का आनुवंशिकी के क्षेत्र में विशेष महत्व है। व्यक्ति के शारीरिक विकास एवं

सवृद्धि के क्षेत्र में शरीरक्रियाविज्ञान एवं आनुवंशिकी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। इनके अतिरिक्त अनेकों जैविक क्रियाओं की आनुवंशिकी से प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता हैं मानव आनुवंशिकी में इन समस्याओं का अध्ययन 'शरीरक्रिया आनुवंशिकी' (Physiological Genetics) के अन्तर्गत किया जाता है।

आनुवंशिकी के अनतर्गत भ्रूण का अध्ययन किया जाता है। क्योकि एक कोशिकीय युग्मनज से विभिन्न अंगों एवं रचनाओं के एक निश्चित क्रम में विभेदन के फलस्वरुप एक जटिल रचनावाले जीव का परिवर्धन युग्मनज में स्थित जीनोटाइप के कारण ही सम्भव होता है। ये जीन्स ही भ्रूण के जीवन एवं विकास की गति का नियन्त्रण करते है। आनुवंशिकी के इस अध्ययन क्षेत्र को "वैकासिक आनुवंशिकी" (Developmental Genetics) से सम्बोधित करते है।

अनेकों व्यावहारिक लक्षण जैसे-जड़बुद्धिता, दूरदर्शिता, हस्तकौशल आदि एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में वंशागत होते है। इनका अध्ययन मानव आनुवंशिकी के अन्तर्गत किया जाता है जिससे यह ज्ञात हुआ है कि मानव को व्यवहार का नियन्त्रण जीनों द्वारा होता है। आनुवंशिकी में इस प्रकार के अध्ययन के फलस्वरुप व्यवहार आनुवंशिकी (Behavioral Genetics) का आविर्भाव हुआ है।

आनुवंशिकी ने प्रकृति में होने वाले क्रमिक विकास की क्रियाओं पर व्यापक प्रकाश डाला है। आनुवंशिकी के ज्ञान के बिना उद्विकासीय प्रक्रियाओं को समझना सम्भव नहीं है। मानव उद्विकास के अध्ययन के लिए आनुवंशिकी को एक उपकरण के रूप में प्रयुक्त किया जाता है क्योकि उद्विकास का आधार है जैविक विभिन्नतायें इन विभिन्नताओं का नियंन्त्रण जीन के द्वारा होता है। आनुवंशिकता के विभिन्न सिद्धान्त मानव एवं अन्य जीनों पर समान रुप से प्रयुक्त होते है। वंशागति से सम्बन्धित समस्त विषयों का अध्ययंन एक जनसमूह स्तर पर किया जाता है जिसे "जनानुवंशिकी या जनसंख्या आनुवंशिकी" (Population Genetics) से सम्बोधित किया जाता है। इसका उद्देश्य जनसमूह के आनुवंशिक संगठन (Composition) को ज्ञात करना होता है तथा इस संगठन को निर्धारित करने वाले समस्त नियम एवं सिद्धान्त इसकी विषयवस्तु है। इसके अन्तर्गत उन प्रक्रियाओं का विश्लेषण किया जाता है। जिससे उद्विकास घटित होता है। इस विश्लेषणात्मक व्याख्या के लिए सांख्यकीय, एवं पारिस्थितकी के आधारभूत सिद्धान्तों का उपयोग अनिवार्य है।

मानव पारिस्थितकी (Ecology) से सम्बन्धित सिद्धान्तों के विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि पर्यावरण का प्रभाव प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रुप से मानव समूह पर पड़ता है जिसके परिणामस्वरुप किसी व्यक्ति या जनसमूह की जीनी आवृत्तियां संशोधित होती है। जीनों में आवृत्तिगत संशोधन का प्रभाव किस सीमा तक किसी भी जीनोंटाइप में विविधता उत्पन्न कर सकता है जो कि परिवर्तित पर्यावरणिक परिस्थितियों के अनुकूल रहती है। वरण (Selection) परिस्थितियों में प्रमुखरुप से सहायक होता है। अतः आनुवंशिकता प्रत्यक्ष रुप से मानव पर्यावरण से सम्बन्धित है। "पारिस्थितकी आनुवंशिकी" (Ecological Genetics) का यही अध्ययन विषय है।

आनुवंशिक अनुसंधानों से मानवजाति की प्रगति हेतु आनुवंशिकी विशेषज्ञ प्रयत्नशील है। यद्यपि जन्तुओं एवं पौधों पर किये गये प्रयोगों को मनुष्य पर सम्पूर्णतया प्रयुक्त नहीं किया जा सकता किन्तु इन प्रयोगों से उपलब्ध ज्ञान की सहायता से मानवजाति की उन्नति अवश्य की जा सकती है। आनुवंशिकी की सहायता से मानवजाति की नस्ल सुधारने से सम्बन्धित शाखा को "सुजनन विज्ञान" (Eugenics) कहते हैं।

❑❑❑

2

वंशागति के मौलिक सिद्धान्त
(Basic Principles of Heredity)

आनुवंशिकी की आधारशिला आस्ट्रिया देश के एक पादरी ग्रेगर जार्न मेंडेल (Gregor John Mendel, 1822–1884) ने रखी। इसी कारण उन्हें 'आनुवंशिकी का जनक' कहा जाता है। इसके पूर्व अनेकों जीवशास्त्रियों ने जीवों में वंशागति की क्रियाविधि को समझने की चेष्टा की। जर्मन वनस्पतिशास्त्री जोसेफ कोलरूटर (Joseph Kelreuter, 1766) तथा अंग्रेजी वनस्पति वैज्ञानिक जॉन गोस (John Goss 1822) ने पौधों में संकरण के अनेक प्रयोग किये। इन वैज्ञानिकों ने संकर पौधे को दो जनकों के मध्यवर्ती रूप को प्रतिनिधित्व करने वाला बताया। इसके अतिरिक्त गार्टनर (1772–1850), डार्विन (1809–1882) तथा नॉडिन (1815–1899) ने भी इस दिशा में महत्वपूर्ण शोधकार्य किया है, लेकिन उन्हें पर्याप्त सफलता प्राप्त न हो सकी।

मेंडलवाद (Mendelism)

मेंडेल ने जीवों में वंशागति की क्रियाविधि को समझने हेतु 'मटर' के पौधे का चुनाव किया, जिस पर अध्ययन 1857 में चर्च प्रांगण की फुलवाड़ी में आरम्भ किया। आठ वर्षों की कठिन तपस्या के पश्चात् 1865 ई० में बून की प्रकृति वैज्ञानिक

सोसाइटी की बैठक में मेंडेल ने अपने शोध कार्य को प्रस्तुत किया। इनका शोध कार्य इस सोसाइटी की वार्षिक पत्रिका में प्रकाशित हुआ जो सम्पूर्ण योरोपीय पुस्तकालयों में वितरित हुआ। उस सयम वैज्ञानिकों का ध्यान इनके महत्वपूर्ण शोधकार्य की ओर आकृष्ट न हो सका और सन् 1884 में मेंडेंल का देहावसान हो गया।



चित्रः 1 ग्रेगर जॉन मेण्डल
(Gregor John Mendel)

मेंडेल की मृत्यु के 18 वर्षों पश्चात् 1902 में हालैंड के डी ब्रीज **(De Vries),** आस्ट्रिया के **वॉन शरमाक (Van Teschermak)** एवं जर्मनी के **कोरेंस (Correns)** ने पृथक-पृथक शोधकार्य किया तथा स्वतंत्र अध्ययनों के आधार पर तीनों वैज्ञानिक एक ही निष्कर्ष पर पहुँचे। ये वही शोध निष्कर्ष थे जिन्हें मेन्डेल ने 39 वर्ष पहले प्रतिपादित किया था। इस प्रकार मेंडेल के वंशागति के नियमों की कालान्तर में पुष्टि होने पर इन सिद्धान्तों को महत्व प्रदान किया गया। मेंडेल के ये मौलिक सिद्धान्त ही 'मेंडेलवाद' (Mendelism) के नाम से सम्बोधित किए जाते हैं।

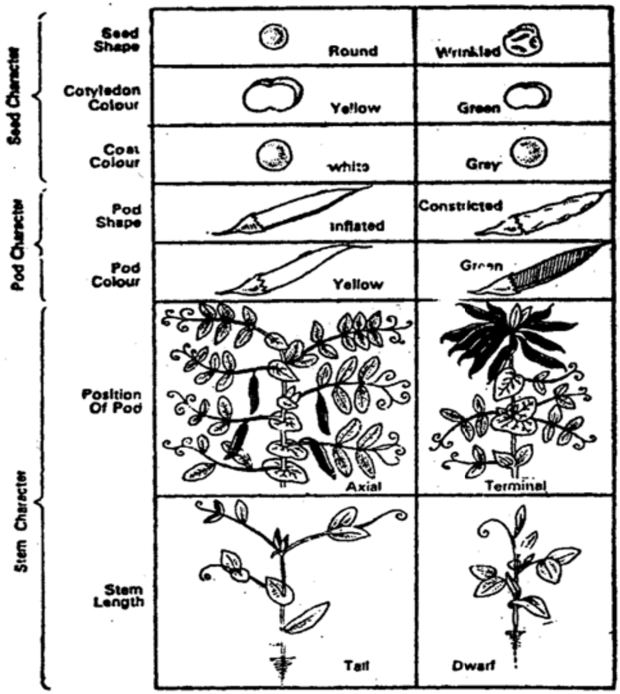
मेंडेल की सफलता का रहस्य उनकी दूरदर्शिता एवं विषय की मौलिक समझ थी। उन्होंनें पूर्व वैज्ञानिकों की असफलता के कारणों का वास्तविक विश्लेषण कर लिया था। इसके अतिरिक्त गणित इनका प्रिय विषय था अतः इसके मौलिक सिद्धान्तों की समझ मेंडेल को थी। यही कारण था कि उन्होंने अपने पूर्ववर्तियों जैसी त्रुटियों की पुनरावृत्ति नहीं होने दिया। इनकी सफलता के निम्नांकित कारण थेः

1. मेंडेल ने योजनाबद्ध रूप से आद्योपान्त प्रयोग पूरा किया। उन्होंनें अपने पूर्ववर्तियों की असफलता का गहनता पूर्वक अध्ययन किया था तदोपरान्त अपने शोध की योजना सावधानीपूर्वक बनाई। अपने प्रयोगों के समुचित अभिलेख सावधानी पूर्वक गणितीय विधियों से तैयार किया।

2. मेंडेल ने मटर के पौधे का चयन गहन सोच विचार के पश्चात् किया क्योंकि ये सरलतापूर्वक उगाये जा सकते थे। यह एक वार्षिक पौधा है। इसका जीवन चक्र अल्पकालीन है। इसकी अनेकों पीढ़ियों का अध्ययन करना सरल है। यह एक द्विलिंगी पौधा है। इसका स्वपरागण सम्भव है। इसमें अनेकों विपर्यासी लक्षण विद्यमान होते हैं। जिन्हें सरलतापूर्वक पृथक-पृथक समूहों में विभक्त किया जा सकता है।

3. मेंडेल ने कुल सात लक्षणों का चुनाव किया। ये सभी विपर्यासी लक्षण वाले थे अर्थात् प्रत्येक विशेषक के प्रायः दो विरोधीभासी रूप थे, उदाहरण के लिए तने की लम्बाई का 'लम्बा' एवं बौना होना। सौभाग्य से चुना गया प्रत्येक लक्षण एक ही जीन द्वारा नियन्त्रित था तथा वे जीन पृथक-पृथक गुणसूत्रों पर स्थित थे। ये सभी लक्षण प्रभावी एवं अप्रभावी विपर्यासी लक्षणों को प्रदर्शित करते थे। इन विशेषकों को निम्नलिखित तालिका में प्रदर्शित किया गया है:

	विपर्यासी लक्षण	
लक्षण (Character)	**प्रभावी**	**अप्रभावी**
तने की लम्बाई	लम्बा (Tall)	बौना (Dawrf)
पुष्प विन्यास	अक्षीय (Axial)	अन्तस्थ (Terminal)
फली का रूप	फूला हुआ (Inflated)	संकुचित (Constricted)
फली का रंग	हरा (Green)	पीला (Yellow)
बीजपत्र का रंग	पीला (Yellow)	हरा (Green)
बीज का आकार	गोल (Round)	झुर्रीदार (Wrinklled)



चित्र: 2 मेन्डल द्वारा अपने प्रयोगों के लिए मटर के पौधों में सात जोड़ी लक्षण
(Seven pairs of characters of pea plants selected by Mendel for his experiments)

4. मेंडेल की संकरण तकनीक (Crossing technique) अत्यन्त सूझबूझ की द्योतक है। उन्होंने एक समय में एक ही लक्षण का अध्ययन किया। तत्पश्चात् एक साथ दो लक्षणों का चुनाव किया और अन्त में एक ही साथ तीन लक्षणों का अध्ययन किया। एक लक्षण में भिन्नता पाये जाने वाले पौधों के संकरण का एक संकर संकरण (Monohybrid Cross), दो लक्षणों में भिन्न पौधों के संकरण को डिसंकर संकरण (Dihybrid Corss) तथा तीन लक्षणों में भिन्न पौधों के बहुसंकरण (Polyhybrid Cross) नामों से सम्बोधित किया। स्वपरागण द्वारा निषेचन की सम्भावना को समाप्त करने के लिए उन्होंने बीज धारण करने वाले पौधों के पुष्पों से वर्तिकाग्र के परिपक्व होने से पूर्व ही परागकोशों को हटा

लिया था। इसके विपरीत लक्षण वाले पौधों के पुष्पों के परिपक्व परागकोशों के पराग लेकर उसमें बीज धारण करने वाले पौधों के पुष्पों के वर्तिकाग्र पर रख दिया। जिससे पर परागण (Cross Polenation) सम्भव हो सका।

मेंडलीय शब्दावली
(Mendelian Terminology)

(i) जीन (Gene)

मेंडेल के अनुसार जीवों का प्रत्येक लक्षण उसकी दैहिक कोशिकाओं के कोशिकाद्रव्य में स्थित एक जोड़ी कारकों (Factors) अथवा निर्धारकों (Determinants) द्वारा निर्धारित होता है। मेंडलीय कारक या निर्धारक को जोहांसन ने 1906 में 'जीन' शब्द से सम्बोधित किया जिसे कालान्तर में व्यापक रूप से स्वीकारा गया।

(ii) युग्मविकल्पी अथवा एलीलोमॉर्फ (Allele or Allelomorph)

प्रत्येक लक्षण जो एक कारक द्वारा निर्धारित होता है, उसकी दो प्रतियां होती हैं। इन विकल्पी प्ररूपों को युग्मविकल्पी (Allele) कहते हैं। मेंडेलीय अवधारणा के अनुसार किसी लक्षण के दोनो विकल्पियों के युगल जीन दो भिन्न-भिन्न गुणसूत्रों पर किन्तु संगत संस्थिति (Corresponding loci) पर स्थित होते हैं। उदाहरणस्वरूप Tt युग्मक में से T एक गुणसूत्र पर तथा t दूसरे गुणसूत्र पर स्थित होता है। इनमें से प्रत्येक दूसरे का युग्म विकल्पी (Allele) पर स्थित होता है। इस प्रकार एक ही लक्षण के दो विकल्पियों को प्रदर्शित करने वाले तथा एक समान अथवा समजात (Homologous) गुणसूत्रों के संगत संस्थिति पर स्थित जीन के युगल को युग्म विकल्पी या एलीलोमार्फ (Allelomorph) कहते हैं।

(iii) समयुग्मजी एवं विषमयुग्मजी (Homozygous and Heterozygous)

प्रत्येक दैहिक गुणसूत्रों में एक जीन की दो प्रतियाँ या युग्मविकल्पी (allele) उपस्थित होते हैं। जब किसी जीव में ये दोनों एलील या युग्मविकल्पी समरूप हों तो उसे लक्षण विशेष के लिए समयुग्मजी (Homozygous) कहते हैं। परन्तु जब किसी पौधे या जीव में लक्षण विशेष के लिए जीन के दोनों युग्म विकल्पी भिन्न हो तो वह जीव इस लक्षण विशेष के लिए विषमयुग्मजी (Heterozygous) कहलाता है। उदाहरणस्वरूप, पौधे के लम्बे तने की लम्बाई के लिए T संकेत का प्रयोग होता है।

समयुग्मजी स्थिति में दोनों युग्म विकल्पी TT लम्बाई के लिए तथा tt बौनेपन लक्षण के लिए युग्मविकल्पी होते है। परन्तु विषम युग्मजी स्थिति में विपरीत युग्म विकल्पी वाला जीव होता है जैस- Tt इसमें सन्तति जीव विपरीत विकल्पी वाला होता है।

(iv) जीन-प्ररूप एवं लक्षण प्ररूप (Genotype and Phenotype)

जीनी प्ररूप जीव की आनुवंशिक रचना को व्यक्त करता है तथा इसकी वाह्य प्रतीति को ध्यान नहीं दिया जाता है। इस प्रकार एक पौधे या जीव में किसी लक्षण के लिए उपस्थित जीनों एवं उसके युग्म विकल्पियों को उस जीव का जीन-प्ररूप (genotype) कहते है। इसके विपरीत जीव में किसी लक्षण की वाह्य प्रतीति अर्थात् आखों से दिखाई देने वाली रचना को जीव का लक्षण-प्ररूप (Phenotype) कहते हैं। उदाहरण के लिए मटर के पौधे के तने के आकार को तीन आनुवंशिक प्ररूप TT , Tt एवं tt होते हैं। इनमें TT, Tt इसका 'जीनी प्ररूप' है जबकि लम्बाई 'लक्षण प्ररूप' है। "बौनापन" पौधे का लक्षण-प्ररूप है जबकि उसक जीन प्ररूप tt है। इससे यह स्पष्ट होता है कि भिन्न जीनो-टाइप या जीनी प्ररूप एक ही प्रकार का 'लक्षण-प्ररूप' व्यक्त कर सकता है। जीनी-प्ररूप एवं लक्षण प्ररूप शब्दों का सर्वप्रथम प्रयोग जोहांसन (1911) ने किया था।

(v) प्रभावी एवं अप्रभावी (Dominant and Recessive)

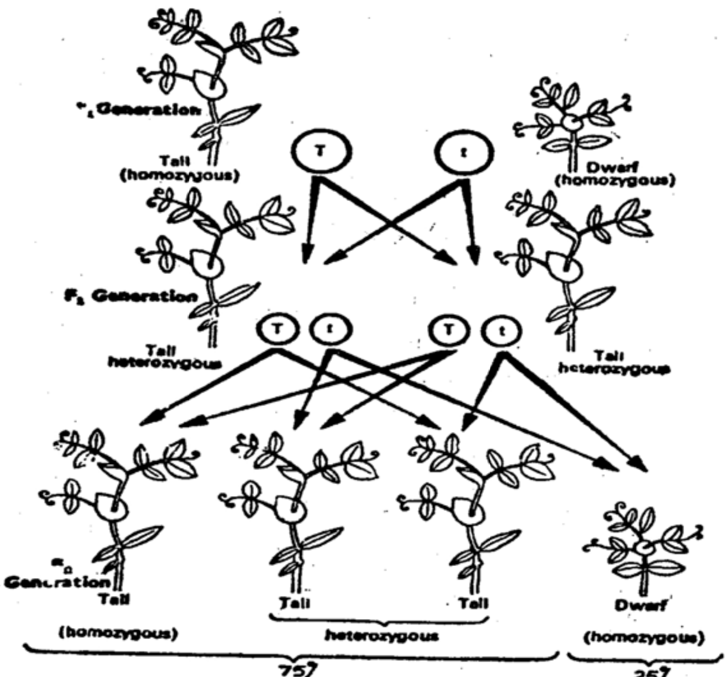
प्रत्येक विषमयुग्मज में दो विपर्यासी लक्षण होते हैं। इनमें से केवल एक ही स्वयं को अभिव्यक्त करता है तथा दूसरा अव्यक्त रहता है। व्यक्त लक्षण ही प्रभावी विकल्पी है तथा अव्यक्त लक्षण अप्रभावी विकल्पी होता हैं उदाहरण के लिए 'Tt' जीनी प्ररूप में T जीनी संकेत लम्बाई को व्यक्त करता है। तथा t संकेत बौनेपन का द्योतक है। Tt विषम युग्मजी में T एक प्रभावी विकल्पी है, क्योंकि यह लम्बापन लक्षण-प्ररूप को व्यक्त करता है इसके विपरीत 't' विकल्प अप्रभावी है यह अव्यक्त रहता है। लेकिन स्वयं को अभिव्यक्त न करने पर भी अप्रभावी जीन बिना किसी परिवर्तन के अगली पीढ़ी में पारगमित हो जाता है।

मेंडल के प्रयोग
(Mendel's Experiment)

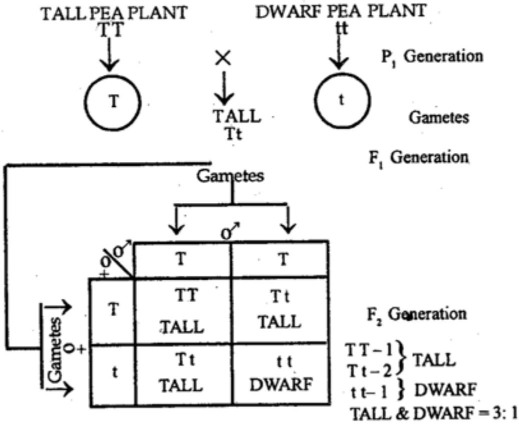
एक संकर संकरण (Monohybrid Cross)

मेंडेल ने सर्वप्रथम मटर के पौधों के एक लक्षण का अध्ययन किया। इसके

लिए उन्होंने दो विपरीत लक्षणों वाले पौधों का चुनाव किया। एक पौधा लम्बे तने का था तथा दूसरा पौधा बौने तने का था। इन पौधों में आपस में संकरण कराया तथा फिर से उगाया। संकरण से प्राप्त बीजों से उत्पन्न हुए सभी पौधे लम्बे कद के थे। ये पौधे F_1 पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करते थे। F_1 पीढ़ी के सभी पौधों में स्वनिषेचन (Polination) कराया तथा उनसे उत्पन्न बीजों को एकत्रित कर लिया। इन बीजों से उत्पन्न सभी पौधे उगाया गये। ये पौधे F_2 पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करते थे। इनमें 'तीन' पौधे लम्बे पाये गये तथा 'एक' बौने तने का पौधा पाया गया। तत्पश्चात् लम्बे तने वाले पौधों के बीज को एवं बौने तने वाले पौधे के बीज को पृथक-पृथक उगाया गया। परिणाम स्वरूप इनमें से ¾ पौधे लम्बे तने वाले पाये गये तथा ¼ पौधे बौने तने वाले प्राप्त किये गये। अगली पीढ़ी में बौने पौधों में उनका यह लक्षण परम्परागत पाया गया। जबकि लम्बे पौधों में से 1/3 पौधे शुद्ध लम्बे तने वाले पीढ़ी दर पीढ़ी बने रहे तथा उनमें शेष 2/3 पौधों में से 3 : 1 का अनुपात बना।



चित्रः 3 मेन्डल के लम्बे व बौने पौधों में मेण्डल द्वारा एक संकर क्रास
(Mendel's monohybrid cross between tall and dwaff pea plants)



चित्र: 4 मटर के लम्बे व बौने पौधों के एक संकर क्रास मेन्डल द्वारा स्पष्टीकरण
(Mendel's Explanation of monohybrid cross between tall and dwarf pea plants)

मेंडेल ने F_1 पीढ़ी के अप्रभावी लक्षण वाले विषमयुग्मजी जनक के साथ संकरण को 'परीक्षण संकरण' कहा तथा उसके पूर्व पूर्वज पौधों के संकरण को संकर पूर्वज संकरण (Bach Cross) कहा। मेंडेल को परीक्षण संकरण के द्वारा यह सिद्ध करना था कि प्रभावी एवं अप्रभावी जीन की आवृत्ति क्या पीढ़ी दर पीढ़ी समान रहती है या नहीं। इस प्रकार उन्होंने यह देखा कि लम्बे तने (T) एवं बौने तने (t) दोनों युग्म विकल्पी जब पृथक होते हैं तो उनकी आवृत्ति समान रहती है।

मेंडेल ने उक्त प्रयोग के परिणामों के आधार पर निम्नलिखित आनुवंशिक नियमों का प्रतिपादन कियाः

प्रभाविता का नियम (Law of Dominance)

मटर के पौधे पर परीक्षण करते समय मेंडेल ने यह देखा कि एक युगल विपर्यासी अर्थात् दो युग्म विकल्पी लक्षणों वाले पौधों में संकरण करने पर केवल एक ही लक्षण संकर पौधों में स्वयं को अभिव्यक्त करने में समर्थ होता है। यह 'प्रभावी लक्षण' होता है। दूसरा अव्यक्त लक्षण 'अप्रभावी' लक्षण होता है। इसके आधार पर मेंडेल ने आनुवंशिकता का प्रथम नियम प्रतिपादित किया। इसके अनुसार "एक या एक से अधिक विपर्यासी लक्षणों वाले जीवों में संकरण कराने पर F_1 पीढ़ी में प्रकट लक्षणों को 'प्रभावी लक्षण' कहते है अर्थात् प्रभावी लक्षण ही व्यक्त होते हैं तथा

'अप्रभावी' लक्षण प्रकट न होकर के भी छिपे रहते है। परन्तु F_2 पीढ़ी में दबा हुआ 'अप्रभावी लक्षण' पुनः 25% पौधों में अपने आपकों अभिव्यक्त करता है।"

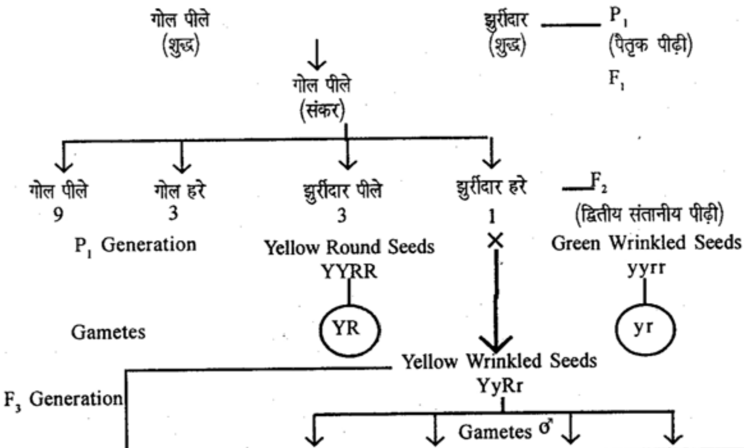
पृथककरण का नियम (Law of Segregration)

इस नियम को 'युग्मों की शुद्धता का नियम' (Law of Purity of gametes) से भी सम्बोधित किया जाता है। इस नियम के अनुसार F_1 पीढ़ी में आये युग्म विकल्पी आपस में मिश्रित नहीं हो जाते। प्रभावी विकल्पी के साथ अप्रभावी विकल्पी भी अपना अस्तित्व बनाये उपस्थित रहता है। तथा जब F_2 पीढ़ी के पौधे अपना युग्मक बनाते हैं तो यह युग्मविकल्पी एक दूसरे से पृथक हो जाते है। दोनो विकल्पियों के पृथक हो जाने की क्रिया को 'पृथक्करण' कहा जाता है।

पृथक्करण नियम के अनुसार विषमयुग्मजी या संकर युग्मविकल्पी (Tt) के दोनों कारक या जीन पास-पास रहते हुए भी एक दूसरे से समिश्रित नहीं होते है। युग्मक निर्माण के समय दोनों विकल्पी एक दूसरे से पृथक हो जाते है तथा प्रत्येक युग्मक में दोनों में से एक विकल्पी होता है। इसके फलस्वरूप विषमयुग्मजी संकर से दो प्रकार के युग्मक बनते है जिनमें से 50% में T (लम्बे तने वाले पौधे) तथा 50% में t (बौने तने वाले पौधे) जीन होते है। अतः यह युग्मक लम्बेपन अथवा बौनेपन के लिए शुद्ध होता है। इसीकारण पृथक्करण के नियम को 'युग्मकों की शुद्धता का नियम' भी कहते हैं।

द्विसंकर संकरण (Dihybrid Cross)

मेंडेल ने अपने द्विसंकर संकरण में मटर के पौधे के दो लक्षणों बीज के आकार (गोल एवं झुर्रीदार) एवं बीजपत्र के रंग (हरे व पीले) का एक साथ अध्ययन किया। इसके लिए मटर के एक पौधे का चुनाव किया, जिसके बीज का आकार गोल तथा बीजपत्र का रंग पीला था। इसी प्रकार उन्होंने एक दूसरा पौधा लिया जिसका बीज झुर्रीदार एवं बीजपत्र का रंग हरा था। इन दोनों पौधों में परस्पर संकरण कराया। इसके परिणाम स्वरूप प्राप्त F_1 पीढ़ी के सभी पौधों में स्वपरागण होने दिया। इनसे प्राप्त बीजों को पुनः उगाया। इसके फलस्वरूप F_2 पीढ़ी के पौधों में चार प्रकार के लक्षण प्ररूप (Phenotype) 9 : 3 : 3 : 1 के अनुपात में पाए गये।



♀ \ ♂	YR	yR	Yr	yr
YR	1 YYRR Yellow Round	2 YyRR Yellow Round	3 YYRr Yellow Round	4 YyRr Yellow Round
yR	5 YyRR Yellow Round	6 yyRR Green Round	7 YyRr Yellow Round	8 yyRr Green Round
Yr	9 YYRr Yellow Round	10 YyRr Yellow Round	11 YYrr Yellow Wrinkled	12 Yyrr Yellow Wrinkled
yr	13 YyRr Yellow Round	14 yyRr Green Round	15 Yyrr Yellow Wrinkled	16 yyrr Green Wrinkled

(Gametes ♀)

F_3 Generation = {
Yellow Round – 9
Yellow Wrinkled – 3
Green Round – 3
Green Wrinkled – 1

चित्रः 5 पीले, नीले तथा हरे, झुर्रीदार बीजों वाले मटर में पौधों में मेण्डल द्वारा द्विसंकर संकरण (Mendel's dihybrid cross between pea plants having bellow round seed and green wrinkled seeds)

इस प्रकार मेंडेल ने द्विसंकर संकरण के प्रयोग के परिणाम के आधार पर एक और नियम का प्रतिपादन किया जिसे 'स्वतंत्र अपव्यूहन का नियम' के नाम से सम्बोधित किया जाता है।

स्वतंत्र अपव्यूहन का नियम (Law of Independent Assortment)

मेंडेल के इस तृतीय नियम के अनुसार विभिन्न लक्षणों के लिए उत्तरदायी जीन युग्मक जनन के समय जब एक दूसरे से पृथक हो जाते है तो वे अगली पीढ़ी में जाने के लिए दोनों युग्मज एक दूसरे से स्वतंत्र होते हैं अर्थात् प्रत्येक लक्षण की वंशागति स्वतंत्र रूप से होती है। वह किसी विशेष लक्षण विकल्पी के साथ-साथ विकल्पी से प्रभावित हुए बिना ही अपव्यूहन करते है। ऐसा नहीं है कि मटर के बीजपत्र का पीला रंग सदैव गोल बीज के साथ या हरा बीजपत्र सदैव झुर्रीदार बीज के साथ-साथ पाया जाता है वरन् पौधे में उपस्थित लक्षण दूसरे पौधे में उपस्थित लक्षण के साथ स्वतंत्र रूप से पीढ़ी दर पीढ़ी पारगमन करते हैं।

मानव में मेंडलीय नियमों की सार्वभौमिकता (Universality of Mendelian Principles in Man)

मेंडेल के वंशागति के मूल नियम मटर के पौधों पर ही नहीं प्रयुक्त होते, वरन् यह नियम अन्य वनस्पतियों, जन्तुओं एवं मानव में सार्वभौमिक पाये गये है। मेंडेल के प्रथम दो नियमों का रूपान्तरण मानव के आनुवंशिक लक्षणों के आधार पर किया जाता सकता है। मानव में सभी फिनाइल-थायो-कार्बामाइड (P.T.C) रासायनिक पदार्थ को चखने में समर्थ नहीं होते हैं। वे जो इस रसायन को चखने में समर्थ होते है उन्हें स्वादक (Taster) कहा जाता है तथा शेष जो इसको चखने में असमर्थ है उन्हे अस्वादक (Non–Taster) कहा जाता है। स्वाद क्षमता को जीनी संकेत T से सम्बोधित किया जाता है तथा इसके विपर्यासी लक्षण स्वाद विहीनता को 't' से अंकित करते है। मनुष्यों में स्वाद क्षमता प्रभावी विकल्पी T से नियन्त्रित होता है जबकि स्वादविहीनता अप्रभावी विकल्पी t से नियमित रहता है।

इस लक्षण के अध्ययन से यह पता चला है कि स्वादक जनक (TT) एवं अस्वादक जननी (tt) की सभी सन्ततियों का लक्षण प्ररूप स्वादक तथा जीनी प्ररूप Tt अर्थात् विषमयुग्मजी पाया जाता है। इससे मेंडेल का प्रथम नियम पुष्ट होता है कि मानव में भी प्रभावी विकल्पी F_1 पीढ़ी में प्रकट होती है जब कि अप्रभावी विकल्पी अव्यक्त होकर छिपे रहते है। F_2 पीढ़ी में जब विषमयुग्मजी जनक (Tt) एवं जननी (Tt) की सन्ततियों का स्वाद परीक्षण किया गया तो उसकी ¾ सन्ततियां स्वादक (Taster) तथा ¼ अस्वादक पायी गयी। इससे यह सिद्ध होता है कि अप्रभावी विकल्पी द्वितीय पीढ़ी में पृथक होकर के पुनः प्रकट होता है। स्वादक एवं अस्वादक

के लक्षण प्ररूप का अनुपात 3 : 1 एवं जीनी प्रारूप का अनुपात 1 : 2 : 1 है जो मेंडेल के द्वितीय वंशागति के नियमों के समवर्ती परिणामों का प्रतिनिधित्व करता है। इसे चित्र संख्या में की सहायता से समझा जा सकता है।

इस प्रकार उक्त तथ्य के आधार पर मेंडेल के प्रथम दोनों नियम 'प्रभाविता' तथा 'पृथक्करण का नियम' मानव जनसंख्या में पूर्णतः सत्य प्रतीत होते हैं। इस नियम को आधुनिक आनुवंशिकी के आधार पर भी समझा जा सकता है कि प्रत्येक आनुवंशिक लक्षण के लिए जीन उत्तरदायी होता है। यह जीन अपने दो युग्म विकल्पी रखता है जिसका एक विकल्पी प्रभावी होता है एवं दूसरा अप्रभावी। जीन आनुवंशिकता की एक स्वतंत्र इकाई है जो गुणसूत्रों पर स्थित होते है। प्रायः यह समजात गुणसूत्र पर उपस्थित अपने युग्म विकल्पी से प्रभावित नहीं होते है। युग्मक जनन के समय गुणसूत्र के समजात युग्म का प्रत्येक भाग पृथक हो जाता है। जिनमें प्रत्येक पर दो युग्म विकल्पी में से एक विकल्पी स्थित होता है। जीन वर्णसंकर में फिर एक साथ आ जाते है ये जीन एक दूसरे से मिल नहीं जाते बल्कि एक साथ रहते है। जब वर्णसंकर युग्मक बनता है तो उस समय पृथक हो जाते है। मेंडल के आनुवंशिक लक्षणों को पारगमित करने वाले कारकों (factors) को अब जीन के नाम से जाना जाता है।

मेंडेल का स्वतंत्र अपव्यूहन का नियम इस बात की व्याख्या करता है कि जीनों के युग्म जो दो या दो से अधिक लक्षणों के लिए उत्तरदायी होते हैं वे युग्मक निर्माण की अवस्था में पृथक हो जाते है। वे ऐसे इसलिए होते है क्योंकि वे पूर्णतया स्वतंत्र होते है तथा अपने साथी जीन के किसी भी प्रभाव में उपस्थित नहीं होते है। इनका पारगमन पीढ़ी दर पीढ़ी स्वतंत्र रूप से होता है। मानव में इस मौलिक नियम की सार्वभौमिकता का परीक्षण सरलतापूर्वक एक दृष्टांत से किया जा सकता है जिसमें दो लक्षणों का वंशानुक्रमण एक साथ अवलोकित किया जा सकता है। ये दोनों आनुवंशिक लक्षण मानव में P.T.C. को चखने की क्षमता एवं जिव्हया के किनारे को मोड़ने की क्षमता है। पहले लक्षण के लिए उत्तरदायी जीन T होता है तथा दूसरे के प्रति R उत्तरदायी जीन होता है। इनका विपर्यासी विकल्पी क्रमशः t एवं r हैं। इस प्रकार प्रत्येक लक्षण के जीन के दो-दो विकल्पी हैं। जनक स्वादक एवं जिव्हया मोड़ने वाला है जो TTRR जीनी प्ररूप का प्रतिनिधित्व करता है जब कि माता पूर्णतः अस्वादक एवं जिव्ह्या मोड़ने में अक्षम है वह 'ttrr' जीनी प्ररूप का प्रतिनिधित्व करती

है। ऐसी स्थिति में जनक के दो युग्मक निर्मित होते है- TR एवं TR तथा माता के दो युग्मक tr एवं tr अतः F_1 पीढ़ी में सभी सन्ततियां स्वादक एवं जिव्ह्या मोड़ने वाली है क्योंकि ये दोनों लक्षण प्रभावी विकल्पी युक्त है। इन सब का जीनी प्ररूप विषम युग्मजी TtRr पाया गया। F_2 पीढ़ी के लिए विषमयुग्मजी जनक (TtRr) का विवाह भी विषम युग्मजी स्त्री से हुआ। जिससे इन दोनों माता एवं पिता के युग्मक एक जैसे प्राप्त हुए जो TR, Tr, tR एवं tr हैं। जब माता-पिता के चार-चार युग्मक आपस में निषेचित होते हैं तो 16 युग्मनज बनने की सम्भावना होती है। इनमें चार प्रकार के लक्षण प्ररूपों- (i) स्वादक एवं जीभ मोड़ने वाला (ii) अस्वादक जीभ मोड़ने वाला (iii) अस्वादक जीभ न मोड़ने वाला एवं (iv) अस्वादक जीभ न मोड़ने वाला, का गणितीय अनुपात 9 : 3 : 3 : 1 पाया जाता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि स्वादक लक्षण सदैव जीभ मोड़ने जैसे लक्षण के साथ पारगमित नहीं होता। ये दोनों लक्षण एक दूसरे से प्रभावित हुए बिना पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित होते है अर्थात् यह सिद्ध होता है कि मानव के आनुवंशिक लक्षण वंशानुक्रमण में स्वतंत्र हैं।

लेकिन 16 या उससे अधिक सन्ततियां शायद ही किसी मानव दम्पति के हो जिस पर इस प्रकार का अध्ययन किया जा सके जिससे 9 : 3 : 3 : 1 के अनुपात में लक्षण प्ररूप प्राप्त किया जा सके। साथ ही साथ समयुग्मजता एवं विषमयुग्मजता को सिद्ध कर पाना भी मानव समाज में सरल कार्य नहीं है। अतः मानव में मेंडेल के "स्वतंत्र अपव्यूहन के नियम" की पुष्टि कर पाना एक टेढ़ी खीर प्रमाणित होती है। साथ ही साथ कई अवस्थाओं में इस मूल नियम को त्रुटि रहित पाना सम्भव नहीं है। प्रत्येक गुणसूत्र असंख्यों जीनों का वहन करता है। जो जीन एक ही गुणसूत्र पर पाये जाते हैं विशेषकर उनमें वे जो एक दूसरे के समीप होते हैं, 'सहलग्न' (Linked) होते हैं। वे पूरे खण्ड के खण्ड पारगमित होते है। वे जीन-विनमय (Crossing Over) की अवस्था में समवर्ती गुणसूत्र से खण्ड विनमय करते है। इसी प्रकार लिंग सहलग्न लक्षणों की वंशागति मेंडेल के 'स्वतंत्र अपव्यूहन' का खण्डन करती है। मानव में लूथेरन रूधिरवर्ग (Lutheran Bloodgroup) एवं स्रावक स्तर (Secretor Status) की सहलग्नता मेंडेल के इस नियम की सार्वभौमिकता पर पुनः प्रश्नचिन्ह लगाती है। सर्वप्रथम इस नियम पर सन्देह वर्तमान शताब्दी के पूर्वाद्ध में ही डब्ल्यू बेटसन (W. Bateson), आर०सी०पुनेट (R.C. Punnet) एवं टी०एच०मार्गन (T.H. Morgan) आदि आनुवंशिक विशेषज्ञों ने व्यक्त किया था।

वंशानुक्रमण क्रियाविधि
(Genetic Mechanism)

मेंडेलीय आनुवंशिक नियमों की सार्वभौमिकता की पुष्टि के लिए कई अनुवर्ती अध्ययन किए गये। जिनसे यह ज्ञात होता है कि अनेकों लक्षणों में मेंडेल द्वारा प्रतिपादित अनुपात में खरे नहीं उतरते। मेंडेलीय नियमों में 'प्रभाविता का नियम' वंशानुक्रमण की क्रियाविधि का द्योतक है जिससे यह ज्ञान होता है कि जीन के युग्मविकल्पी किस प्रकार क्रिया करते है। समयुग्मजी स्थिति में प्रबल तथा अप्रबल दोनों युग्म विकल्पी अभिव्यक्त होते है लेकिन विषमयुग्मजी स्थिति में केवल प्रबल विकल्पी ही प्रकट होने में समर्थ है। यह मेंडेल ने संकरण प्रयोगों द्वारा निष्कर्ष निकाला था कि पेड़ पौधे एवं जन्तुओं में प्रत्येक लक्षण एक कारक द्वारा नियन्त्रित होता है। लेकिन उसके पश्चात् आनुवंशिकविदों ने अन्य जीवों पर लक्षणों की वंशागति से सम्बन्धित परीक्षण किये तो उन्हें मेंडेलीय अनुपात के विपरीत अनेकों विवादास्पद एवं परिवर्तित परिणाम देखने को मिले। इसके फलस्वरूप बेटसन (Bateson) ने 'कारक परिकल्पना' (Factor Hypothesis) नामक एक अवधारणा प्रस्तुत की।इस अवधारणा के अनुसार "दो या दो से अधिक जीन अन्तर्क्रिया (Interaction) द्वारा एक ही लक्षण को प्रभावित कर सकते है। वे विरोध या उत्क्रमण (reversal), योग (addition), अपघटन (Substraction) अथवा रूपान्तरण (modification) सम्पूरकता (Supplimentation) द्वारा किसी लक्षण की वास्तविक अभिव्यक्ति को प्रभावित करते हैं।"

यह जीनों की अन्तर्क्रिया प्रायः दो स्तरों पर होती है (1) जीन के युग्म विकल्पियों के स्तर पर (2) जीन के स्तर पर। पहले को अन्तर्विकल्पी जीन अन्तर्क्रिया (Inter Allelic gene interaction) तथा दूसरे को अन्तर्विकल्पी रहित जीन-अन्तर्क्रिया (Non interallelic gene Interaction) कहा जाता है। अन्तर्विकल्पी जीन अन्तर्क्रिया तो मेंडेल के प्रबल एवं अप्रबल वंशानुक्रमण क्रियाविधि से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित है। मानवों में प्रबल एवं अप्रबल विकल्पी के आधार पर निम्नलिखित चार विधियों से वंशानुक्रमण घटित होता है :

1. प्रबल वंशानुक्रमण

विषमयुग्मजी अवस्था में एक विकल्पी का प्रभाव दूसरे विकल्पी पर सदैव प्रभावी नहीं होता है।

इसकी प्रभाविता मुख्यतः तीन प्रकार से पायी जाती है:

(a) पूर्ण प्रभाविता (b) अपूर्ण प्रभाविता एवं (c) सह प्रभाविता

2. अप्रबल वंशानुक्रमण

विषमयुग्मजी अवस्था में अप्रबल विकल्पी प्रकट न होकर छिपा रहता है। वह प्रभावी विकल्पी के साथ सममिश्रित नहीं होता, बल्कि F_2 पीढ़ी में पुनः प्रकट होता है। मानव में कई ऐसे लक्षण हैं जिनको वंशानुक्रम के लिए अप्रबल जीन उत्तरदायी होता है जैसे रंजकहीनता (Albinism)।

1. प्रबल वंशानुक्रमण (Dominant Inheritance)

यदि किसी लक्षण का एक विकल्पी समयुग्मजी एवं विषमयुग्मजी दोनों अवस्थाओं में समान लक्षण-प्रारूप (Phenotype) रखता है तो इसे उस विकल्पी की प्रभाविता कहते है। जब यह प्रभावी विकल्पी किसी लक्षण के वंशानुक्रमण के लिए उत्तरदायी होता है तो इसे ही हम प्रबल वंशानुक्रमण के नाम से पुकारते है। प्रबल वंशानुक्रम मुख्यतः तीन प्रकार से घटित होता है, जो इस प्रकार है:

(a) पूर्ण प्रभाविता (Complete Dominance)

जब प्रभावी विकल्पी का लक्षण प्ररूप समयुग्मजी एवं विषमयुग्मजी दोनों अवस्थाओं में समान रूप से पाया जाय तो इसे उस विकल्पी की पूर्ण प्रभाविता कहते हैं। उदाहरण के लिए, मनुष्य में 'फिनाइल थायोकार्बामाइड' (Phenyl thio carbamide) नामक रासायनिक पदार्थ की स्वादक क्षमता का परीक्षण किया जाता है, जिसका वर्णन इसके पूर्व किया जा चुका है। इसमें यह देखा गया कि स्वादक क्षमता के लिए एक प्रभावी विकल्पी T उत्तरदायी हैं। इस जीन का दूसरा विकल्पी t अप्रभावी होता हैं यदि समयुग्मजी स्वादक पुरूष का विवाह किसी समयुग्मजी अस्वादक स्त्री से हो जाय तो उनसे उत्पन्न प्रथम पीढ़ी की सन्ततियां स्वादक क्षमता वाली पायी जाती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि स्वादक क्षमता वाला विकल्पी दूसरे अस्वादक क्षमता वाले विकल्पी पर पूर्णरूप से प्रभावी है।

(b) अपूर्ण प्रभाविता (Incomplete Dominance)

जब किसी प्रभावी विकल्पी की अभिव्यक्ति विषमयुग्मजी एवं समयुग्मजी अवस्था में समान रूप से न हो अर्थात् समयुग्मजी से विषमयुग्मजी का लक्षण प्ररूप कुछ भिन्न हो तो प्रभावी विकल्पी की इस प्रकार की अभिव्यक्ति को अपूर्ण प्रभाविता

कहते है। इसमें विषम युग्मजी अवस्था में प्रभावी विकल्पी की अभिव्यक्ति समयुग्मजी अवस्था की अपेक्षा कम होती है। सामान्यता ऐसी स्थिति में विषमयुग्मजी अवस्था का लक्षण प्ररूप प्रभावी एवं अप्रभावी विकल्पी के लक्षण प्ररूप का मध्यवर्ती होता है। उदाहरणस्वरूप मानव लाल रूधिर कोाशिकाओं में हंसियाकार कोशिकीय लक्षण (Sickle Cell Trait) पाया जाता है। यह लक्षण उन सन्ततियों में पाया जाता है जिनके जनकों में कोई एक समयुग्मजी प्रभावी विकल्पियों वाले (AA) होते है तथा दूसरे समयुग्मजी अप्रभावी विकल्पियों वाले (SS) होते है। प्रभावी युग्म विकल्पियों वाले जनक (AA) की सभी लाल रूधिर कणिकायें सामान्य एवं गोलाकार होती है जबकि इसके विपरीत अप्रभावी युग्म विकल्पी वाले जननी (SS) की लाल रूधिर कणिकायें असामान्य होती है। इनका आकार हंसिया जैसा होता है। ये हीमोग्लोबिन की पर्याप्त मात्रा का संचरण नहीं कर पाती। F_1 पीढ़ी में ऐसे जनकों की सभी सन्ततियों का लक्षण प्ररूप जनकों के लक्षण प्ररूप की मध्यवर्ती स्थिति का होता है अर्थात् विषमयुग्मजी (AS) कुछ लाल रूधिर कणिकायें गोलाकार तथा कुछ हंसियाकार होती है। मानव के लाल रक्त कणिकाओं की इस विशेषता को ही 'हंसियाकार कोशिकीय लक्षण' कहते हैं।

(c) सह-प्रभाविता (Codominance)

जब दोनों युग्म विकल्पी विषमयुग्मजी स्थिति में एक दूसरे के लिए प्रभावी एवं अप्रभावी न होकर साथ-साथ अपने प्रभाव को प्रदर्शित करते हो तो इस प्रकार की वंशागति को सहप्रभाविता (Codominance) कहते है। मनुष्यों में MN रूधिर वर्ग सह प्रभाविता का उदाहरण है। ऐसे व्यक्ति के माता पिता में से किसी एक का M रूधिर वर्ग तथा दूसरे का N होता है जो F_1 पीढ़ी विषमयुग्मजी सन्तति का जन्म देते है। इसी प्रकार जब एक A रूधिर वर्ग (। A । A) का पुरूष B रूधिर वर्ग (। B । B) की स्त्री से विवाह करता है तो उसकी सन्ततियां AB रूधिर वर्ग (। A । B) की पायी जाती है क्योंकि माता एवं पिता दोनों के विकल्पी साथ-साथ अभिव्यक्त होंते हैं।

2. अप्रबल वंशानुक्रमण (Recessive Inheritance)

यदि किसी लक्षण विशेष की वंशागति के लिए अप्रभावी विकल्पी उत्तरदायी हो तो इस प्रकार की क्रियाविधि को 'अप्रबल वंशानुक्रमण' कहते है। अप्रभावी विकल्पी विषमयुग्मजी अवस्था में अभिव्यक्ति नहीं होता। यह सदैव समयुग्मजी अवस्था में प्रकट होता है। उदाहरणार्थ, अप्रभावी विकल्पी ।O जब प्रथम पीढ़ी में प्रभावी

विकल्पी I^A से मिलता है तो विषम युग्मजी अवस्था में होता है जिससे यह प्रकट नहीं होता है तथा प्रभावी विकल्पी अभिव्यक्त होता है जिससे उस विषमयुग्मजी व्यक्ति का रूधिर वर्ग A पाया जाता है। जब यह अप्रभावी विकल्पी द्वितीय पीढ़ी में समयुग्मजी अवस्था में पुनः होता है तो यह प्रकट होता है एवं उस व्यक्ति का रूधिर वर्ग- O पाया जाता है। तृतीय पीढ़ी के लिए जब समयुग्मजी $I^O I^O$ का विवाह किसी समयुग्मजी स्त्री $I^O I^O$ से होता है तो उत्पन्न सन्ततियों के अप्रभावी विकल्पी प्रकट होते है। इस प्रकार O रूधिर की वंशागति हेतु अप्रभावी विकल्पी I^O उत्तरदायी है। अप्रभावी विकल्पी I^O विषमयुग्मजी अवस्था में- $I^A I^O$ प्रभावी विकल्पी के साथ मिश्रित नहीं होता न ही नष्ट होता है। इस अवस्था में इसका लक्षण प्ररूप A अप्रभावी विकल्पी का संवाहक (Carrier) होता है। इस प्रकार मानव में अप्रबल विकल्पी का निम्नांकित अनुपातों में वंशानुक्रमण होता है:

1. समयुग्मजी अप्रभावी विकल्पी ($I^O I^O$) वाले व्यक्ति का विवाह समयुग्मजी प्रभावी विकल्पी वाली स्त्री ($I^A I^A$) के साथ होने पर प्रथम पीढ़ी में सभी सन्ततियां विषमयुग्मजी A रूधिर वर्ग ($I^A I^O$) होती है।

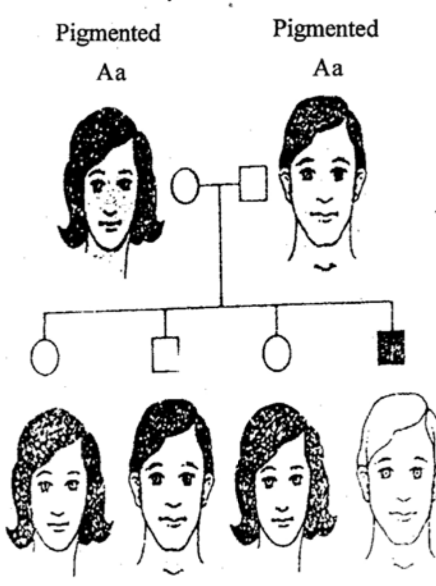
2. विषमयुग्मजी ($I^A I^O$) का विवाह जब एक विषमयुग्मजी ($I^A I^O$) के साथ होता है तो उत्पन्न सन्ततियों का लक्षण प्ररूप A एवं O रूधिर वर्ग का अनुपात 3 : 1 के अनुपात का होता है तथा जीनी प्ररूप 1 : 2 : 1 का पाया जाता है। इसमें एक समयुग्मजी A रूधिर वर्ग ($I^A I^A$) दो विषमयुग्मजी A रूधिर वर्ग ($I^A I^O$) तथा एक समयुग्मजी O रूधिर वर्ग ($I^O I^O$) का पाया जाता है।

3. विषमयुग्मजी ($I^O I^O$) का विवाह समयुग्मजी ($I^O I^O$) के साथ होने पर सभी सन्ततियां समयुग्मजी O रूधिर वर्ग की पायी जाती है।

4. जब विषमयुग्मजी ($I^A I^O$) का विवाह समयुग्मजी ($I^O I^O$) के साथ होता है तो उत्पन्न सनतियों के लक्षण प्ररूप 1 : 1 के अनुपात में पाये जाते है। इनमें 50% सन्ततियां A रूधिर वर्ग वाली एवं 50% सन्ततियां O रूधिर वर्ग की पायी जाती है।

उक्त तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि केवल तीन अवस्थाओं के घटित होने से 'अप्रभावी' लक्षण प्रकट होता है। अप्रभावी लक्षण कभी-कभी एक पीढ़ी की सम्पूर्ण सन्ततियों में प्रकट नहीं होता। इस प्रकार वंशागति में अप्रबल लक्षण की आवृत्ति अत्यल्प होती है।

मानव जनसंख्या में अप्रबल वंशानुक्रमण के अनेकों उदाहरण हैं। **'रंजकहीनता'** (Albinism) एक इसी प्रकार का लक्षण है। रंजकहीनता (Albino) मनुष्यों में त्वचा, बाल तथा आँख में मिलैनिन (Melanin) नामक रंजक का अभाव पाया जाता है। परिणामस्वरूप 'एल्बिनों' (Albino) की त्वचा श्वेत होती है। वे उन पदार्थो का रूपान्तरण नहीं कर पाते जिससे मिलैनिन का निर्माण एक रंजक के समान होता है। एल्बिनो की त्वचा प्रकाश की किरणों के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होती है। इनके बालों का रंग श्वेत होता है। इनकी आँखों का रंग लाल होता है क्योंकि परावर्तित प्रकाश लाल रूधिर कूपों से आंखों में आता रहता है। समयुग्मजी अप्रभावी एल्बिनों विरले ही पाये जाते है। ऐसा अनुमान किया गया हैं कि अनेकों यूरोपीय राष्ट्रों में 20 हजार व्यक्तियों में से कहीं एक 'एल्बिनो' होता है। स्टर्न के अनुसार संयुक्त राज्य अमेरिका में कुल 9000 एल्बिनों व्यक्ति हैं। कुछ राष्ट्रों में इनकी संख्या अपेक्षाकृत अधिक है, जेसे लगभग 14292 नीग्रो में से 5 व्यक्ति एल्बिनों होते हैं। इसी प्रकार पनामा राज्य में 132 व्यक्तियों में से एक एल्बिनों हैं।



A = normal pigmentation

a = albino

Aa × Aa

(A) (a) (A) (a)

EGGS

SPERMS	A	a
A	AA Pigmented	Aa Pigmented
a	Aa Pigmented	aa Albino

चित्र: 6 मानवों में एक संकर संकरण एवं रंजकहीनता (Albino) की अप्रभावी वंशागति का स्वरूप

वंशावली विश्लेषण (Pedigree Analysis) से यह पाया गया है कि रंजकहीनता का लक्षण अनेकों पीढ़ियों में प्रकट नहीं होता है। इसके लिए अप्रबल विकल्पी 'a' उत्तरदायी होता है। सामान्य व्यक्ति का जीनी प्ररूप 'AA' होता है। विषमयुग्मजी सामान्य व्यक्ति का जीनी प्ररूप 'Aa' होता है। यादृच्छिक वरण (Random mating) से 6 प्रकार के संयोग हो सकते है। पहले, जब किसी सामान्य व्यक्ति (AA) का किसी सामान्य स्त्री (AA) से विवाह होता है। इससे उत्पन्न सभी सन्ततियां सामान्य (AA) होती है। दूसरे, जब एक सामान्य व्यक्ति (AA) का विवाह किसी विषमयुग्मजी सामान्य (Aa) होते है। इससे उसके 50% बच्चे सामान्य समयुग्मजी (AA) होते है। 50% सन्ततियां विषमयुग्मजी (Aa) होते है जो अप्रभावी विकल्पी 'a' के वाहक होते है लेकिन वे स्वयं रंजकहीनता के लक्षण से प्रभावित नहीं होते। तीसरे, सामान्य एवं समयुग्मजी (AA) व्यक्ति का विवाह किसी असामान्य समयुग्मजी (aa) अर्थात् एल्बिनों से ह्नेने पर उसके बच्चे सामान्य होते हैं लेकिन सभी सन्ततियां विषमयुग्मजी (Aa) एवं रंजकहीनता के लिए उत्तरदायी विकल्पी 'a' के वाहक होते हैं। चौथे, जब विषमयुग्मजी (Aa) का विवाह किसी विषमयुग्मजी (Aa) से होता है तो सामान्य एवं असामान्य स्थिति का अनुपात 3 : 1 (75% सन्तति सामान्य एवं 25% सन्ततियां एल्बिनों) होता है। सामान्य सन्ततियों में समयुग्मजी (AA) एक तिहाई एवं विषमयुग्मजी (Aa) दो तिहाई होते है जो रंजकहीनता के प्रति उत्तरदायी जीन का संवाहन करते हैं। पांचवे, जब विषमयुग्मजी एंव सामान्य व्यक्ति (Aa) का विवाह किसी एल्बिनों (aa) से होता है तो उनके 50% सन्ततियां विषमयुग्मजी (Aa) एवं 50% सन्ततियां एल्बिनों होती है। छठे, जब एल्बिनों (aa) का विवाह एक एल्बिनों (aa) से होता है तो सभी सन्ततियां एल्बिनों होती है।

उक्त तथ्यों के अतिरिक्त रंजकहीनता से सम्बन्धित एक नीग्रो वंशावली को ए.सी. पिपकिन एवं पिपकिन ने 'जनरल ऑफ हरेडिटी के 33 भाग में 1942 में प्रकाशित किया जिसमें एक एल्बिनों का विवाह एक सामान्य स्त्री से होने पर उनकी एक पुत्री रंजकहीनता के गुण से प्रभावित थी। इससे कुछ वैज्ञानिकों ने इस लक्षण की अप्रबल वंशानुक्रमण पर संदेह व्यक्त किया लेकिन इस वंशावली के सभी तथ्यों के सत्यापित न होने के कारण इस लक्षण की वंशागति पर संदेह व्यक्त करना निरर्थक प्रतीत होता है।

बहरा-गूगांपन (Deaf–Mutism) लक्षण भी 'अप्रबल वंशानुक्रमण' के नियमों का अनुसरण करता है। इसकी कई वंशावली प्रकाश में आयी है जिससे स्पष्ट होता है कि अपवादों को छोड़कर 'बहरा गूंगापन' के प्रति एक अप्रभावी विकल्पी उत्तरदायी होता है। बहरापन का लक्षण जन्म के समय प्रकट होता है। कालान्तर में गूंगेपन का लक्षण प्रकट होने लगता है। यदि नवजात शिशु को बोलने का प्रशिक्षण प्रदान न किया जाय तो कई वाह्य कारक गूगेपन लक्षण को जन्म देते है। यह सम्भवतः रूबेला नामक विषाणु के भ्रूण संक्रमण से उत्पन्न होता है। यह उस मां के भ्रूण को प्रभावित कर पाता है जो खसरे नामक रोग से कभी ग्रसित हुई हो। यह आनुवंशिक नियमों का अनुपालन करता है। आनुवंशिक बहरापन के कई प्रकार एक अप्रभावी विकल्पी जोड़े की समयुग्मजी अवस्था में पाये जाने से उत्पन्न होते है क्योंकि इनके माता-पिता इस रोग के उत्तरदायी जीन के वाहक होते है तथा उनका जीनी प्ररूप विषमयुग्मजी होता है। विषमयुग्मजी माता-पिता की सन्ततियों में बहरापन 3 : 1 के अनुपात में वंशानुगत होता है। दो बहरे-गूंगे जनक की सभी सन्ततियां गूंगी-बहरी होती है। इस आनुवंशिक रोग की कई वंशावलियां प्रकाशित हो चुकी है जिससे यह ज्ञात होता है कि यह सामान्यतया अप्रबल वंशानुक्रमण की क्रियाविधि के द्वारा पीढ़ी दर पीढ़ी पारगमित होता है।

फिनाइल कीटोन्यूरिया (Phenyl Ketonuria) नामक लक्षण की पारिवारिक आवृत्ति एक अप्रबल विकल्पी की समयुग्मजी अवस्था में पायी गयी हैं इस लक्षण से प्रभावित व्यक्ति में बुद्धिहीनता चयापचयी विकृति के कारण प्रकट होती है। प्रभावित व्यक्ति का मानसिक विकास अवरूद्ध हो जाता है। ऐसे व्यक्तियों की प्रजनन क्षमता अत्यल्प होती है। वंशावली अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ है कि यह रोग भी 'अप्रबल वंशानुक्रमण' की विधियों से हस्तान्तरित होता है।

इसी प्रकार मायोक्लोनिक इपीलेप्सी (Myclonic Epilepsy) अलकाप्टोन्यूरिया (Alkaptonuria), गैलैक्टोसीमिया (galactosemia) आदि रोगों की वंशागति अप्रबल युग्मविकल्पों पर आधारित होती है।

अन्तर्विकल्पी रहित अथवा अन्तर्जीनी पारस्परिक अभिक्रिया (Non–Allelic or Intergenic Genetic Interaction)

अन्तर्विकल्पी जीनी अभिक्रिया का आधार एक जीन होता है, जिसका वर्णन

इसके पूर्व किया गया। इसे मेंडेल ने एक संकर संकरण (Monohybrid cross) के प्रयोगों द्वारा स्पष्ट किया था। वास्तव में मेंडेल के परवर्ती अध्ययनों से यह सदैव सत्य सिद्ध नहीं हुआ है। एक लक्षण जिसके लिए एक जीन के दो विकल्पी उत्तरदायी होते है। उन्हीं की कुछ अभिक्रियायें मेंडेल के प्रतिपादित सिद्धान्तों से कुछ हटकर प्रतीत हुई। जब सामान्य एक वंशानुक्रम (Simple single inheritance) से हटकर दो अथवा बहुजीनी अथवा बहुकारकीय वंशानुक्रम का उल्लेख करते हैं तो एक जीन के युग्मविकल्पियों के मध्य क्रियाओं तक ही सीमित नहीं रहना पड़ता, वरन् दो अथवा उससे अधिक जीनों के मध्य क्रियाये अध्ययन का मुख्य आकर्षण बनती है। मेंडेल ने इस प्रकार का अध्ययन द्विसंकर संकरण अथवा बहुसंकर संकरण (Polyhybrid Corss) के द्वारा 9 : 3 : 3 : 1 का आनुवंशिक अनुपात की सार्वभौमिकता को प्रस्तावित किया। यह आनुवंशिक अनुपात भी कालान्तर के अध्ययनों में सदैव सत्य सिद्ध न हो सका। पौधों एवं जीवों के ऊपर कई द्विसंकर संकरण प्रयोगों के परिणाम स्वरूप आनुवंशिकी का एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त प्रबलता का सिद्धान्त (Principle of Epistasis) प्रस्तावित किया गया, जिसका उल्लेख यहां किया जा रहा है।

प्रबलता का सिद्धान्त (Principle of Epistasis)

'जब कभी एक गुणसूत्र के भिन्न-भिन्न स्थान (Locus) पर स्थित एक जीन दूसरे की अभिव्यक्ति को प्रभावित करता है तो पहला जीन दूसरे पर अपनी प्रबलता प्रकट करता है। इस घटना को प्रबलता (Epistasis) कहते हैं।' इसमें अलग-अलग स्थानों (Loci) पर स्थित दो स्वतंत्र जीन (जो एक दूसरे के युग्मविकल्पी नहीं होते) जीव के एक लक्षण को इस प्रकार प्रभावित करते है कि एक जीन दूसरे की अभिव्यक्ति को छिपा देता है। जो जीन दूसरे को प्रभावित करता है उसे प्रबल कारक (Epistatic factor) तथा जिस जीन की अभिव्यक्ति छिप जाती है उसे अप्रबल कारक या जीन (Hypostatic factor) कहते हैं।

वास्तव में 'प्रबलता' ग्रीक भाषा के Epistasis शब्द का रूपान्तरण है। इस ग्रीक भाषायी शब्द का अर्थ 'प्रतिरोध उत्पन्न करता हुआ' या 'रोकता हुआ' या 'छिपाव' या 'शमन' होता है। यह शब्द अर्थ बोध कराने में स्वयं समर्थ है। उदाहरण स्वरूप, रंजकहीनता (Albnism) का जीन श्याम एवं धूसर रंग (agaute) के जीनों

के प्रति प्रबल है क्योंकि ये रंग बिल्कुल व्यक्त नहीं होते है जब रंजकहीनता के जीन समयुग्मजी अवस्था में पाये जाते है। ये जीन 'निरोधी जीन' (Inhibiting gene) हैं। निरोधी जीन वह जीन होते हैं जिसका किसी लक्षण विशेष पर स्वयं का तो कोई प्रभाव नहीं होता किन्तु प्रभावी रूप में उपस्थित होने पर यह उस लक्षण विशेष के स्वतंत्र प्रभावी जीन की अभिव्यक्ति को रोकता है अथवा उसका विरोध करता है।

इस प्रकार 'प्रबलता' (Epistasis) भिन्न-भिन्न जीनों के मध्य घटित होने वाली एक अभिक्रिया है जिसमें कम से कम भिन्न स्थानीय दो जीन परस्पर सक्रिय होते है जब कि 'प्रभाविता' (Dominance) एक ही जीन के युग्म विकल्पियों के मध्य होने वाली अभिक्रिया है जिसमें दो विकल्पी परस्पर सक्रिय रहते होते है। प्रबलता दो प्रकार को होता है- प्रभावी प्रबलता (Dominant epistasis) एवं अप्रभावी प्रबलता (Recessive epistasis)।

'प्रभावी प्रबलता' में एक जीन का प्रभावी विकल्पी (Dominant allele) दूसरे स्थान पर स्थित किसी जीन के युग्म के प्रभाव को छिपा अथवा रोक लेता है 'अप्रभावी प्रबलता' में एक जीन का अप्रभावी युग्म विकल्पी (Recesive allele) दूसरे स्थान पर स्थित सामान्य जीन के प्रभाव को छिपा अथवा रोक लेता है। उदाहरण स्वरूप, रजंकहीनता अवस्था में दूसरे स्थान पर स्थित जीनों के प्रभाव को विकसित नहीं होने देता। एक एल्बिनों नीग्रों बच्चा जो अपने माता-पिता से नीग्रो रंजक ग्रहण करता है किन्तु रंजकहीनता के लिए उत्तरदायी युग्म विकल्पी समयुग्मता की स्थिति में रजंकहीनता का जीन त्वचा, बाल एवं आंखों के रंगो के उत्तरदायी जीनों पर प्रबल होता है।

अमेंडलीय वंशागति
(Non–Mendelian Inheritance)

अभी तक मेंडलीय वंशागति के वर्णन में यह देखा गया कि मानव में प्रबल एवं अप्रबल वंशागति के नियम सामान्य स्थितियों में स्पष्टतयः लागू होते है। लेकिन जब मेंडल का स्वतंत्र अपव्यूहन के नियम की चर्चा की जा रही थी तो इसका संकेत दिया गया था कि मानव में स्पष्ट रूप से व्यवहरित नहीं होता है क्योंकि कुछ जीन या लक्षण ऐसे होते हैं जो किसी न किसी जीन से उस समय भी सम्बन्ध बनाये

रहते है जब ये अगली पीढ़ी में पारगमित होते हैं। इस नियम के विपरीत इस प्रकार की क्रियाविधि को 'सहलग्नता' या सहलग्न वंशागति (Linkage or Linked Inheritance) कहते हैं।

सहलग्नता
(Linkage)

सहलग्नता का सिद्धान्त 1911 में ही टी०एच० मार्गन (T.H. Morgan) ने प्रतिपादित किया था। इसके पूर्व सटन (Sutton 1903) ने विचार व्यक्त किया था कि प्रत्येक गुणसूत्र (Chromosomes) पर स्थित समस्त जीन एक साथ सन्ततियों में पारगमित होते हैं। बेटसन एवं पुनेट (Bateson and Punnet, 1906) ने सर्वप्रथम मटर के पौधों पर अध्ययन किया और देखा कि एक ही जनक के युग्मविकल्पी (जीन) युग्मक में एकत्रित रहते हुए एक ही साथ संततियों में वंशागत होने की प्रवृत्ति रखते है। इसमें जनकों से आये जीन सन्ततियों में पृथक रूप से वंशागत होते है। इसे उन्होंने 'विलग्नता' या 'प्रतिकर्षण' (Repulsion) की संज्ञा दी।

मार्गन के अनुसार 'युग्मन' एवं विलग्नता (प्रतिकर्षण) एक ही प्रक्रिया के दो पहलू है। इस प्रक्रिया को 'सहलग्नता' (Linkage) कहते हैं। उनके अनुसार एक गुणसूत्र पर स्थित सभी जीन युगमक के द्वारा सन्ततियों में साथ-साथ वंशागत होने की प्रवृत्ति को 'सहलग्नता' कहते हैं। इस सिद्धान्त की निम्नलिखित प्रमुख विशेषतायें हैं:

1. सहलग्नता की प्रवृत्ति रखने वाले जीन एक ही गुणसूत्र पर स्थित होते है।
2. सभी जीन एक रेखीय क्रम में गुणसूत्र पर स्थित होते हैं।
3. सहलग्न जीन के मध्य की दूरी सहलग्नता सामर्थ्य से सम्बन्धित होती है। अतः निकटस्थ जीन में सहलग्नता की शक्ति दूरस्थ जीनों की तुलना में अधिक होती है। दूरस्थ जीनों में विनिमय (Crossing Over) की सम्भावनायें अधिक होती है।

मार्गन एवं उनके सहयोगी कैसल (Castle) ने ड्रोसोफिला मक्खी (Drosophila–Fruit Fly) पर अध्ययन किया। इनके सहलग्नता सिद्धान्त को कालान्तर में कोशिकीय अध्ययनों द्वारा व्यापक समर्थन प्राप्त हुआ। यदि दो जीन एक ही गुणसूत्र पर सहलग्न होते है तो स्पष्ट रूप से वे मीयासिस विभाजन के दौरान भी जीन साथ-साथ यात्रा करने की प्रवृत्ति रखते है। उस समय जब जनकों के युग्मक

निषेचित होते है तो पुनः वह सभी जीन अपनी सन्ततियों में उसी गुणसूत्र पर विन्यासित रहते हैं।

दूसरी ओर यदि गहरायी से अवलोकन किया जाये तो सहलग्न वंशागति मेंडल के स्वतंत्र अपव्यूहन सिद्धान्त की कोई विरोधी प्रक्रिया नहीं है क्योंकि मेंडलीय वंशागति के अनुसार यह उन दो असहलग्न (Unlinked) जीनों के अध्ययनों पर आधारित है जो पृथक गुणसूत्रों पर स्थित होते हैं तथा युग्मजनन क्रियाविधियों में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पृथक अथवा स्वतंत्र या असहलग्न रूप से पारगमित होते हैं। मेंडल ने सहलग्नता की जटिलताओं के ऊपर प्रहार कभी नहीं किया। वह भाग्यशाली इस बात के लिए अवश्य थे कि गुणसूत्र के ज्ञान न होने पर भी उन्होंने उन्हीं लक्षणों (जीन) का चुनाव किया जो अलग-2 गुणसूत्र पर स्थित थे। इस प्रकार सहलग्नता का सिद्धान्त मेंडलीय वंशागति का उपहास नहीं करता अपितु वंशागति की क्रियाविधि का एक नवीन आयाम है।

यह सहलग्नता मानव के प्रत्येक गुणसूत्र से सम्बन्धित हो सकती है। चूंकि मानव के गुणसूत्रों को दो मुख्य संवर्गों में विभक्त करते है- अलिंगसूत्री या कायिक सूत्री एवं लिंग सूत्र (Sex–Chromosome) इसलिए जब कोई सहलग्न जीन कायिक सूत्रों (Autosome) पर पाये जाये तो उनकी सहलग्नता को 'अलिंग-सहलग्नता' (Autosomal Linkage) कहते है। दूसरी ओर, जब कोई जीन लिंग गुणसूत्रों पर सहलग्न हो तो इस सहलग्न वंशागति को लिंग-सहलग्नता (Sex–Linkage) कहते है। लेकिन कभी-कभी दो सहलग्न जीन में से एक लिंग सूत्र पर स्थित होता है तथा दूसरी अलिंग सूत्रों पर होती है, लेकिन उनकी बंशागति साथ-साथ (सहलग्न होकर) होती है। अलिंग सहलग्नता से सम्बन्धित दृष्टान्त अत्यल्प है क्योंकि मार्गन के पश्चात् सहलग्नता अध्ययन लिंग गुणसूत्रों पर अपेक्षाकृत अधिक हुआ।

लिंग-सहलग्नता (Sex–Linkage)

लिंग गुणसूत्रों- X एवं Y का मुख्य कार्य लिंग निर्धारण है। इन पर लिंग निर्धारक जीन उपस्थिति होते हैं। अभी जल्दी ही एक खोज में 1995 में फॉस्टर एवं उनके सहयोगियों ने Y गुणसूत्र पर 'SRY' जीन का पता लगाया है। इसी गुणसूत्र पर 'SRY–9' लिंग निर्धारक एवं अस्थि निर्माण में भाग लेता है। पुरूषता हेतु उत्तरदायी जीन 'TDF' (Testies determining Factor) का पता भी चला है जो Y

गुणसूत्र की छोटी भुजा पर स्थित है। यह DNA का एक छोटा अनुक्रम है जो कुल 35 Kb लम्बा जीन है। इस पुरूषता जीन की खोज 1995 में रैस्कों एवं डाउन्स (Rasko and Downes) ने की। इसी प्रकार स्त्री लक्षण के लिए उत्तरदायी 'XIST' जीन गुणसूत्र- X के Q भुजा पर स्थित होता है जो कुल 17 KB लम्बा जीन है। इन लिंग निर्धारक जीनों के अतिरिक्त कुछ अन्य जीन भी इन लिंग गुणसूत्रों- X एवं Y पर होते है। ये जीन कुछ ऐसे दैहिक लक्षणों का नियन्त्रण करते हैं जिनका लिंग से कोई सम्बन्ध नहीं होता। अतः उन दैहिक लक्षणों को जिनके लिए उत्तरदायी जीन, लिंग गुणसूत्रों पर स्थित होते हैं तथा वे जीन उसी लिंग गुणसूत्र के साथ वंशागत होते हैं। तथा वे जीन उसी लिंग गुणसूत्र के साथ वंशागत होते हैं इस जीन की इस प्रकार की सहलग्न प्रवृत्ति को 'लिंग-सहलग्नता' (Sex–Linkage) तथा इस प्रकार की वंशागति की 'लिंग सहलग्न वंशागति' (Sex – Linked Inheritance) कहते हैं।

मानव में लिंग सहलग्नता की अभिव्यक्ति करने वाले लक्षण को लिंग सहलग्न लक्षण कहते हैं। ये लिंग सहलग्न लक्षण जिनके लिए लिंग सहलग्न जीन उत्तरदायी होते हैं, वे कभी- 2 पूर्णतः व्यक्त नहीं होते तथा या तो वे किसी एक लिंग में सीमित रहते है अथवा किसी एक लिंग से प्रभावित रहते हैं। इसलिए इन सभी लक्षणों को निम्न तीन श्रेणियों में रखा जाता है:

1. लिंग-सहलग्न (Sex–Linked)
2. लिंग-सीमित (Sex–Limited)
3. लिंग-प्रभावित (Sex–Influenced)

1. लिंग-सहलग्न वंशागति (Sex Linked Inheritance)

लिग सहलग्नता, जिसमें लिंग-सहलग्न जीन पूर्णतः व्यक्त होते है। यह दो लिंग-गुणसूत्रों- XY के आधार पर दो भागों में विभक्त की जाती है:

(i) X– सहलग्नता (X–Linkage) (ii) Y– सहलग्नता (Y–Linkage)

(i) X– सहलग्नता (X– Linkage)

यदि किसी लक्षण के जीन X– गुणसूत्र पर स्थित होते हैं तथा वे एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक इसी गुणसूत्र पर सहलगन होकर वंशागत होते है तो उस लक्षण को 'X– सहलग्न लक्षण' कहते है तथा इस प्रकार की आनुवंशिक क्रियाविधि को 'X– सहलग्नता' कहते है। अध्ययनों से पता चला है कि मनुष्यों में 20% लक्षण लिंग

सहलग्न होते हैं। इन लक्षणों की वंशागति के आधार पर इस आनुवंशिक क्रियाविधि को अधिक समझा जा सकता है।

वर्णान्धता (Colour Blindness)

कुछ मनुष्यों में लाल एवं हरे रंग को इसके समकक्षीय रंगों से भेद स्थापित करने की सामर्थ्य नहीं होती, ऐसे पुरुष 'वर्णान्ध' (Colourblind) कहे जाते है। इनका यह लक्षण जिसकी अभिव्यक्ति एक विशेष जीन के कारण हुई इसे 'वर्णान्धता' (Colour blindness) कहते हैं। लाल रंग से सम्बन्धित वर्णान्धता को प्रोटोनोपिया (Protonopia) कहते हैं जबकि ड्यूटेरैनोपिया (Deuteranopia) उस वर्णान्धता को कहते है जो हरे रंग से सम्बन्धित होती है। प्रथम वर्णान्धता प्रकार में मनुष्य (रोगी) लाल रंग को नारंगी एवं इससे मिलते जुलते रंगो से पृथक नहीं कर पाता, जबकि द्वितीय प्रकार की वर्णान्धता से ग्रसित मनुष्य हरे रंग को नीले रंग से अलग करने में असमर्थ होता है।

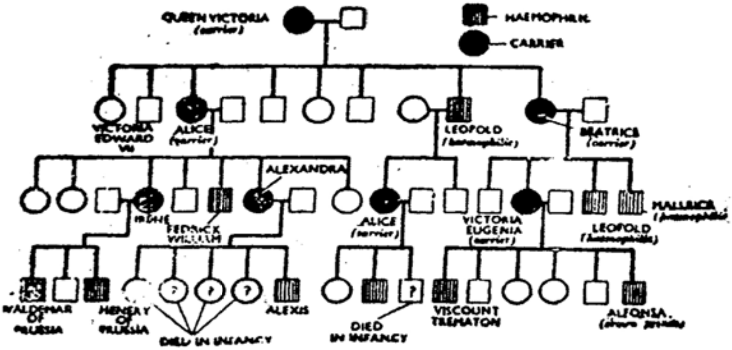
अध्ययनों से यह पता चला है कि वर्णान्धता के लिए उत्तरदायी जीन (विकल्पी) अप्रभावी होता है। यह समयुग्मजी (Homozygosity) की अवस्था में प्रकट नहीं होता, अपितु विद्यमान रहता है। चूंकि पुरूषों में X–गुणसूत्र एक ही होता है अतः यह अप्रभावी विकल्पी सदैव व्यक्त होता है। इस प्रकार की वंशागति को 'X–सहलग्न अप्रबल वंशागति' कहते है। इसे एक उदाहरण से समझ सकते हैं। एक दम्पति जिनमें स्त्री सामान्य (XX) एवं पुरूष वर्णान्ध (XY) है। पुरूष वर्णान्ध इसलिए है क्योंकि उसके इकलौते X–गुणसूत्र से वर्णान्धता का 'जीन' सहलग्न है। दोनों के सहवासों से उनके दोनों बच्चे (पुत्र एवं पुत्री) सामान्य हैं क्योंकि उनके पुत्र ने पिता से Y गुणसूत्र एवं मां से सामान्य X– गुणसूत्र प्राप्त किया। जबकि उनकी पुत्री जिसने पिता से वर्णान्ध जीन युक्त X–गुणसूत्र एवं मां से सामान्य X गुणसूत्र प्राप्त किया है। सामान्य एवं असामान्य X गुणसूत्र के संयोग से भी उनकी पुत्री वर्णान्ध नहीं है क्योंकि विषम युगमजी पुत्री जिसको सामान्य X गुणसूत्र मां से प्राप्त हुआ है वह 'वर्णान्धता जीन वाले X गुणसूत्र' के ऊपर प्रभावी है जिससे पिता से आया जीन व्यक्त नहीं हो सकता क्योंकि वह अप्रभावी (Recessive) है। उन दम्पत्तियों की यह पुत्री इस असामान्य जीन विकल्पी की केवल वाहक (Carrier) है जो अपने 50% बच्चों को यही असामान्य जीन विकल्पी प्रदान कर सकती है। यदि इसका विवाह

एक वर्णान्ध पुरूष से हो जाये तो इनकी आधी (50%) बेटिया एवं आधे (50%) बेटे वर्णान्ध होंगे तथा दूसरी ओर शेष आधी बेटियां (50%) जीन की वाहक (Carrier) तथा शेष आधे बेटे (Rest 50%) सामान्य होंगे। दूसरे शब्दों में कुल बेटों में आधे बेटे वर्णान्ध होंगे तथा कुल बेटियों में आधी बेटियां भी वर्णान्ध होंगी। ये बेटियां वर्णान्ध इसीलिए होंगी क्योंकि वह समयुग्मजी अवस्था में दोनों अप्रबल युग्मविकल्पियों को अपनी मां एवं पिता के असामान्य X–गुणसूत्रों (XX) को प्राप्त करती है। इसी प्रकार यदि एक वर्णान्ध एक सामान्य पुरूष से विवाह करती है तो उसके बेटे वर्णान्ध एवं सभी बेटियां वाहक होगी।

हीमोफीलिया (Haemophilia)

हीमोफीलिया उस विकृति को कहते है जब घाव या जख्म हो जाने पर रक्त स्राव तब तक सरलता से बन्द नहीं होता जब तक उस व्यक्ति के शरीर में रूधिर शेष रहता है। इसके फलस्वरूप उस रोगी की मृत्यु भी हो जाती है। सामान्य व्यक्तियों में जख्म हो जाने पर 2–8 मिनट में घाव पर रूधिर का थक्का (Clot) बन जाता है जिससे रक्त स्राव बन्द हो जाता है। रक्त का थक्का बनना इस व्यक्ति के रूधिर में स्थित प्लेटलेट एवं अन्य इसके अभिकारकों की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप होता है। इस क्रिया से उत्पन्न प्रोटीन को 'एण्टी होमोफीलिक ग्लोब्यूलिन' कहते हैं। दूसरे थ्रम्बोप्लास्टीन की कमी होने से भी हीमोफीलिया हो जाती है। हीमोफीलिया के इन दोनों रूपों को क्रमशः हीमोफीलिया A एवं B कहा जाता है। यह रोग उस समय आकर्षण का केन्द्र अधिक बना जब यूरोप के राजघरानों के कई सदस्य इससे प्रभावित हुए। आदिकाल से ही उसके अनेकों उदाहरण उपलब्ध है।

हीमोफीलिया एक लिंग सहलग्न अप्रभावी जीन के कारण होता है जो X–गुणसूत्र पर पाया जाता है। इसमें भी यदि स्त्रियों में दोनों गुणसूत्रों पर स्थित होता है तो स्त्रियों में यह लक्षण व्यक्त होता है अन्यथा एक X–गुणसूत्र पर हीमोफीलिया के लिए उत्तरदायी जीन स्थित होने से स्त्रियों में यह अव्यक्त रहता है। दूसरे शब्दों में यह कहें कि समयुग्मजी अवस्था में यह लक्षण व्यक्त होता है जबकि असमयुग्मजी अवस्था में अव्यक्त ही रहता है तथा अमसयुग्मजी स्त्रियाँ इस जीन की केवल वाहक होती है। पुरूषों में चूंकि X–गुणसूत्र एक ही होता है, अतः उनमें इस जीन के होने पर लक्षण प्रकट होता है।



चित्र: 7 लिंग-सहलग्न हीमोफिलिया को प्रदर्शित करते हुए रानी विक्टोरिया के कुटुम्ब का इतिहास

दांतो के भूरे एनैमेल (Brown Enamel of teeth)

एनैमेल (दन्त आवरंण) के विकृत होने से दाँतों का रंग भूरा पीला हो जाता हैं यह एक आनुवंशिक लक्षण है। इस लक्षण के लिए एक जीन उत्तरदायी होता है। अध्ययनों से यह विदित होता है कि यह जीन, वर्णान्धता एवं हीमोफीलिया से भिन्न एक प्रबल जीन है। यह जीन X– गुणसूत्र से सहलग्न होती है।

इस लक्षण की वंशागति को स्पष्ट करने के हाल्डेन (Haldane) ने 1937 में एक वंशावली (Pedigree) प्रकाशित किया। इस वंशावली में यह लक्षण प्रभावित व्यक्ति (पुरुष) के सभी पुत्रियों में देखा जाता है, जो यह संकेत करता है कि यह लक्षण विषमयुग्मजी अवस्था में भी व्यक्त होता है क्योंकि जो X – गुणसूत्र पिता से प्राप्त होता है वह विकृत दन्त आवरण (Enamel) से सहलग्न होता है तथा जो X–गुणसूत्र मां से प्राप्त करती है वह इस जीन से सहलग्न नहीं होता। मां से प्राप्त X गुणसूत्र इस जीन से युक्त नहीं है। यह इस बात से प्रमाणित हो जाता है क्योंकि इन दम्पतियों के सभी पुत्र बिना भूरे दांतों के है जो केवल मां से ही X– गुणसूत्र प्राप्त करते है।

इसी प्रकार X–सहलग्न प्रभावी वंशागति के अन्य उदाहरण भी प्रकाश में आये हैं, जैसे 'रूधिर में फास्फोरस का अभाव' (Phosphorus defeciency in Blood), पेशीय विकलांगता (Mascular destrophy) आदि। इनमें पेशीय विकलांगता प्रबल व अप्रबल दोनों प्रकार से वंशागत होता है।

(ii) Y–सहलग्नता (Y–Linkage)

वंशागत Y–सहलग्नता, उन जीन के द्वारा पीढ़ी दर पीढ़ी वंशागत देखी जाती है जो Y–गुणसूत्र से सहलग्न होते है। इनकी वंशागति सरल होती है क्योंकि Y गुणसूत्र पुरूषों में ही पाया जाता है। अतः Y–सहलग्न वंशागति पुरूषों में ही घटित होती है क्योंकि यह गुणसूत्र स्त्रियों में अनुपस्थित होता है। इसीलिए यह लक्षण पिता से पुत्र में तथा पुत्र से पौत्र में वंशानुगत होता है। Y–सहलग्न वंशागति को Y–सहलग्न लक्षणों के माध्यम से स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है।

हाइपरट्राइकोसिस (Hypertrichosis)

हाइपरट्राइकोसिस एक ऐसा लक्षण है जिसकी उपस्थिति से पुरूषों के कानों पर लम्बें बाल पाये जाते है। यह लक्षण सर्वप्रथम उस समय प्रकाश में आया जब टॉमैसी (Tommasi) ने 1907 में एक ऐसे इटली बासी परिवार का उल्लेख किया जिसमें पुरूषों के कान पर लम्बे बाल थे। कॉकायने (Cockayne, 1933) ने बताया कि इस लक्षण के लिए एक प्रबल जीन उत्तरदायी होता है जो Y–गुणसूत्र से सहलग्न होता है। इस विषय में कर्टस्टर्न (Curt Stern) एवं गेट्स (Gates) में मतभेद है। क्योंकि इस लक्षण के Y–सहलग्नता पर संदेह व्यक्त करते हैं जबकि गेट्स इसकी Y–सहलग्नता का समर्थन करके कुछ दृष्टान्त भी प्रस्तुत करते हैं।

पॉरक्यूपाइन मनुष्य (Porcupine Men)

इंग्लैण्ड वासी एक दम्पति के 1716 में एक ऐसा पुत्र हुआ जिसके 6 माह के अन्तर्गत शरीर में हथेली, तलवे, सिर व मुखमण्डल के अतिरिक्त शेष सभी त्वचीय भागों पर खुरदरे, शूकमय शल्क (Bristly Scales) एवं शूक (Bristle) के सदृश लगभग 1 इंच के बाल उत्पन्न हुए। कालान्तर में इस प्रकार के बच्चे को 'पॉरक्यूपाइन मनुष्य' नाम से जाना गया। जब इस प्रकार के मनुष्य का विवाह एक सामान्य स्त्री से हुआ तो इससे उत्पन्न सभी 6 बेटों में यह लक्षण उपस्थित थे। इस लक्षण का लगभग चार पीढ़ियों तक अध्ययन किया गया। तथा यह सामान्य रूप से देखा गया कि यह लक्षण पुरूषों में प्रकट होता है लेकिन स्त्रियों में नहीं। अतः यह लक्षण उस प्रभावी जीन से नियन्त्रित होता है जो Y गुणसूत्र से सहलग्न हैं। चूंकि इस लक्षण की आवृत्ति अत्यल्प है, इसलिए इसकी सहलग्न वंशागति अत्यधिक सरल एवं स्पष्ट नहीं है।

पादजाल (Webbed Toe)

अमेरिका में एक शोफील्ड (Schofield) कुटम्ब के 14 पुरूषों में एक लक्षण देखा गया। इसमें पैर की द्वितीय तथा तृतीय अंगूठे के मध्य एक जाल की आकृति पायी जाती है। इसे 'पादजाल' (Webbed Toe) कहते हैं। वंशावली अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि इस कुटुम्ब की स्त्रियों में यह रचना पूर्णतः अनुपस्थित होती है। यह लक्षण कुछ और परिवारों में भी अध्ययन किया गया है। लेकिन यह लक्षण स्त्री तथा पुरूष दोनों में व्यक्त देखा गया है। यद्यपि पुरूषों में इसकी आवृत्ति अधिक है।

अतः यह लक्षण अनुमानतः एक उस जीन के द्वारा नियन्त्रित होता है जो Y–गुणसूत्र से सहलग्न है लेकिन इसकी सत्यता की जाँच तभी हो सकती है जब इस लक्षण की आवृत्ति जनसमूहों में अत्यल्प न हो।

इस प्रकार उपरोक्त उदाहरणों के माध्यम से सहलग्नता दोनों लिंग गुणसूत्रों में उद्धृत की गयी। लेकिन Y सहलगनता के प्रामाणिक दृष्टान्तों के अभाव से यह कह पाना कि जीन दोनों लिंग सूत्रों से X एवं Y सहलग्न जीनों की X–गुणसूत्र में उपस्थिति के अनेकों साक्ष्य उपलब्ध हैं, जिनकी चर्चा पूर्व पृष्ठों में भी की गयी।

2. लिंग सीमित लक्षण (Sex Limited Traits)

कुछ लक्षण ऐसे होते है जिनके जीन लिंग एवं अलिंगसूत्र (Sex chromosomes and Autosomes) दोनों पर स्थित होते हैं लेकिन वे किसी एक लिंग (स्त्री अथवा पुरूष) में ही व्यक्त होते है, ऐसे लक्षणों को लिंग सीमित लक्षण कहा जाता है। इन लक्षणों की वंशागति विविध प्रकार की होती है। इनकी अभिव्यक्ति काफी सीमा तक उस व्यक्ति में पाये जाने वाले 'लिंग हारमोन' (Sex Harmone) पर निर्भर करती है। यह मानना कि यह लक्षण पूर्णरूपेण लिंग सीमित होते हैं, सत्य प्रतीत नहीं होता, यद्यपि पूर्ण लिंग सीमितता के कुछ दृष्टान्त हैं।

स्त्रियों में **'रजोधर्मता' (Menstruation)** पूर्ण लिंग सीमितता का उदाहरण है, क्योकि यह लक्षण पुरूषों में पूर्णतः अनुपस्थित होता है। इसीप्रकार स्त्रियों में 'स्तनों का विकास, मधुर एवं पतली आवाज (Voice), दुग्ध ग्रंथियों की उपस्थिति आदि लक्षण लिंग सीमित हैं जिनकी उपस्थिति पुरूषों में कदापि नहीं होती। कुछ ऐसे भी लक्षण है जो पुरूषों में तो पाये जाते हैं लेकिन वे स्त्रियों में पूर्णतः प्रकट नहीं होते। यदा कदा अपूर्ण एवं आंशिक रूप में स्त्रियों में यह प्रकट होते हैं। इस प्रकार के

लक्षणों को अपूर्ण लिंग सीमित लक्षणों की कोटि में सम्मिलित करते है। उदाहरणस्वरूप, पुरूषों में दाढ़ी तथा मूंछे पायी जाती है जबकि स्त्रियों में नही। लेकिन यदा कदा ये अपूर्ण एवं अंशतः कुछ स्त्रियों में पायी जाती हैं लेकिन वे अल्पविकसित होती हैं।

गंजापन (Baldness) भी लिंग समितता को व्यक्त करता है। यह लक्षण पुरूषों में तो पूर्णतः व्यक्त होता है लेकिन स्त्रियों में नहीं। स्त्रियों में यह आंशिक रूप से तो देखा जाता है लेकिन स्त्रियों में पूर्ण गंजापन किसी विकृति या अन्य रोग के फलस्वरूप ही होता है। अनुसंधानों से यह पता चला है कि कुछ पुरूषों में भी रोम कूप अथवा बालों की जड़ो (Hair Folicle) से सम्बन्धित किसी विकार के फलस्वरूप भी गंजापन का लक्षण उत्पन्न हो जाता है अन्यथा पुरूषों में गंजेपन का लक्षण उसी समय प्रकट होता है जब इसके लिए उत्तरदायी जीन उसके लिंग अथवा अलिंग सूत्रों पर विद्यमान हो। गंजे पुरूष दम्पतियों के अध्ययनों से भी स्पष्ट होता है कि गंजापन पुरूषों में ही पूर्णतः प्रकट होता है।

3. लिंग प्रभावी लक्षण (Sex– Influenced Traits)

लिंग प्रभावी लक्षण, लिंग सीमित तथा लिंग सहलग्न लक्षणों से भिन्न होते हैं। ये वे लक्षण है जिनके उत्तरदायी जीन किसी अलिंग सूत्र (Autosome) पर स्थित होते हैं। लेकिन इनकी अभिव्यक्ति एक लिंग के मनुष्यों में तो 'प्रबल' रूप में होती है जबकि दूसरे लिंग के मनुष्यों में यह अप्रबल जीन के कारण व्यक्त होता है।

लिंग प्रभावी लक्षणों की लिंग सीमित लक्षणों से भिन्नता इस तथ्य से स्पष्ट हो जाती है कि लिंग प्रभावी लक्षण के लिए उत्तरदायी जीन एक 'अलिंग सूत्र' पर पाया जाता है जबकि लिंग सीमित लक्षणों के लिए उत्तरदायी जीन 'लिंग तथा अलिंग सूत्र' अर्थात् दोनों प्रकार के गुणसूत्रों पर पाया जाता है। लिंग सीमित लक्षण मनुष्य के एक ही लिंग में सीमित होता है जबकि विरोधी लिंग में अप्रकट। दूसरी ओर लिंग प्रभावी लक्षण दोनों लिंगों में प्रकट होता है। एक में प्रभावी रूप में तथा दूसरे में अप्रभावी रूप से व्यक्त होता है। इसी प्रकार लिंग प्रभावी तथा लिंग सीमित लक्षण, लिंग-सहलग्न लक्षणों से भिन्न होते हैं क्योंकि लिंग सहलग्न लक्षण केवल लिंग गुणसूत्र (X अथवा Y) पर ही पाये जाते है तथा उक्त दोनों लक्षणों के समान अलिंग सूत्रों पर ये लिंग सहलग्न लक्षण कदापि उपस्थित नहीं होते।

लिंग प्रभावी लक्षण पुरूष तथा स्त्रियों में समान रूप से वंशानुगत होते हैं। प्रायः ये लक्षण मनुष्यों में अधिक पाये जाते हैं। इसका एक दृष्टान्त 1917 में होम्स तथा शोफील्ड (Holms and Schofiedl) ने प्रकाशित किया। इस लक्षण को इन वैज्ञानिकों ने **'श्वेत अग्रकोश' (White ForeLock)** कहा। इसमें सिर के केशों में एक सफेद 'बालों का गुच्छा' होता है। इस लक्षण की एक वंशावली 'जनरल ऑफ हरेडिटी' (Journal of Heredity) के 28 वें अंक में 1937 छपी। इसके विश्लेषण से यह पता चलता है कि यह अग्रकेश लक्षण पुत्र में तथा पौत्रों में समान रूप से व्यक्त होता है लेकिन स्त्रियों में यह लक्षण तीसरी एवं चौथी पीढ़ी में व्यक्त हो पाता है। यह घटना यह इंगित करती है कि अग्रकोश लक्षण पुरूषों में प्रबल एवं स्त्रियों में अप्रबल रूप व्यक्त होता है।

इसके अतिरिक्त अन्य लक्षण जैसे- उच्च एवं बाहरी कृंतक दांत की अनुपस्थिति, इक्थियॉसिस या त्वचा का शल्कीकरण (Ichthyosis or Skin scaling), हबर्डन की ग्रंथि (Hberden's nodes) आदि लिंग प्रभावी लक्षणों की श्रेणी में माने जाते हैं। इन लक्षणों की अभिव्यक्ति पुरूषों में ही प्रबल रूप से हो, यह आवश्यक नहीं है।

❑❑❑

3

आनुवंशिकी के भौतिक आधार
(Physical Bases of Genetics)

मानव अथवा किसी जीव के लक्षण उसके माता-पिता से वंशागत होने वाले लक्षणों या जीन पर निर्भर करते हैं। ये हजारों लक्षण रेखीय क्रम में गुणसूत्रों (Chromosomes) पर स्थित होते है। ये गुणं मानव अथवा उस जीव की कोशिका (Cell) में पाये जाते हैं। ये लक्षण कोशिका विभाजन एवं जनन द्वारा माता-पिता से उसकी संतति में पारगमित होते हैं।

कोशिका (Cell)

कोशिका जीव संरचना की एक मौलिक इकाई है। यह प्रोटोप्लास्म का अर्धतरल, चिपचिपा तथा अनियमित पिण्ड है। इसके अन्तः भाग में (लाल रक्त कणिकाओं को अतिरिक्त) केन्द्रक पाया जाता है। इसके अध्ययन का प्रारम्भ सत्रहवीं शताब्दी में हुआ। इसकी खोज अंग्रेजी जीव वैज्ञानिक राबर्ट हुक (Robert Hooke) ने 1665 में की। हुक ने कार्न (Corn) की पतले काट (Section) के खण्ड में मधुमक्खी के छत्ते जैसी रचना को देखा जो छोटे-छोटे कोष्ठकों में (Chambers) में विभक्त थी। प्रत्येक कोष्ठक के चारों ओर दीवार थी। इन्हीं कोष्ठकों को

कालान्तर में कोशिका के नाम से पुकारा जाने लगा। इन कोशिकाओं में सर्वप्रथम राबर्ट ब्राउन (Robers Brown) ने एक बड़ा गोलाकार सघन पिण्ड देखा। इन्होंने इसका नाम 'केन्द्रक' रखा। फ्लेमिंग (Fleming) ने 1882 में कोशिका विभाजन के दौरान एक रेखीय क्रम से नियाजित रचना को देखा जो आनुवंशिक पदार्थ को रखती है। इन्होंने इसका नाम क्रोमैटिन (Chromatin) रखा। वाल्डेयर (Waldeyer, 1888) ने इस रचना के लिए 'क्रोमोसोम' (Chromosome) या 'गुणसूत्र' शब्द प्रस्तावित किया। वान बेनेडन (Von Beneden) एवं ह्यूसर (Heuser) ने एक कोशिका के आधे गुणसूत्रों को संतति कोशिका (Daughter Cell) में जाते हुए सर्वप्रथम देखा। बॉन बेनेडन (1884) ने यह भी पता लगाया कि किस प्रकार एक युग्मनज (Zygote) माता एवं पिता से गुणसूत्रों की समान संख्या प्राप्त करती है। इस प्रकार आज यही अध्ययन आनुवंशिकी में मील के पत्थर साबित हुए हैं। आज यह ज्ञात है कि एक कोशिका (Zygote) से जीवन यात्रा आरम्भ करने वाला मानव जन्म के समय लगभग 200 करोड़ कोशिकाओं का स्वामी बन जाता है तथा प्रौढ़ावस्था में यह कोशिकायें बढ़कर लगभग 65,000 करोड़ हो जाती है।

कोशिका-आकार (Size of Cell)

कोशिका का आकार अनियमित होता है। यह त्रिकोणात्मक, बेलनाकार, अण्डाकार, गोल, घनाकार, रेखाकार एवं लम्बी तथा बहुआयामी होती है। इसका आकार क्रिया, अनुकूलन, सतही तनाव, कोशिका भित्ति की दृढ़ता एवं प्रोटोप्लाज्म के चिपचिपाहट के द्वारा प्रभावित होता है। अलग-अलग जीवों में इसके आकार भिन्न होते हैं। यह भिन्नता जीव के अंगों के अनुसार भी पायी जाती है। एक ही अंग की कोशिाकाओं में भी विविधतायें पायी जाती हैं। साधारणतया इसके आकार तथा आकृति उसके कार्यों से सम्बद्ध पायी गयी है। इसीलिए मांसपेशियों की कोशिकायें लम्बी तथा शरीर के भीतरी भाग की कोशिकायें चपटी एवं गोल होती है।

कोशिका की आकृति 1 μ से लेकर 5 सेमी० तक भिन्न- 2 हो सकती है। व्यास में सबसे बड़ी कोशिका शुतुरमुर्ग (Ostrich) का अण्डा होता है। तन्त्रिका कोशिकायें 3.0 से लेकर 3.5 फिट तक लम्बी होती है, जो सबसे अधिक लम्बी कोशिकायें हैं।

कोशिका के प्रकार (Type of Cell)

कोशिकायें दो प्रकार की होती है: प्रोकैरियाटेक, युकैरियाटिक। इनकी

आन्तरिक संरचना अत्यन्त सरल होती है। ये जीवाणुओं एवं नील हरित शैवालों (Blue green algae) में पायी जाती हैं। अन्य कोशिकाओं की भांति इनमें कोशिकांग नहीं होते। इसलिए इस आदिम रचना वाली कोशिका को 'प्रोकैरियटिक (Prokaryotic) कहते हैं। इसके विपरीत 'यूकैरियाटिक (Eukaryotic) कोशिका विकसित प्रकार की होती है जो अन्य समस्त वनस्पति एवं जीवों में पायी जाती है। इसमें केन्द्रक सुस्पष्ट एवं कलाबद्ध होता है। इसके चयापचयी कार्य कोशिकांगों द्वारा सम्पन्न होते हैं। इन कोशिकओं में अर्धसूत्री कोशिका विभाजन भी घटित होता है। इन दोनों प्रकार की कोशिकाओं में प्रमुख अन्तर निम्न तालिका में दर्शाया गया है:

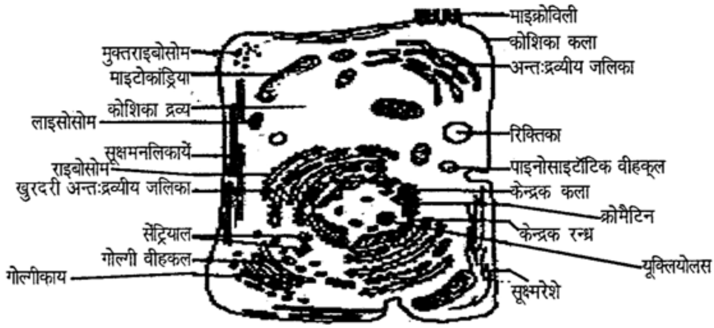
लक्षण (Character)	प्रोकैरियाट (Prokaryote)	यूकैरियाट (Eukaryote)
विस्तार	वैक्टीरिया एवं नील हरित शैवाल में	सभी उच्च जीवों एवं पौधों में
औसत ब्याज	1 μ	20 μ
केन्द्रक पदार्थ	साइटोप्लास्म से केन्द्रक-कला के द्वारा अपृथक	कलाबद्ध एवं सुस्पष्ट
डी०एन०ए०	वृत्ताकार एवं एक सहलग्न समूह वाला	रेखीय एवं कई गुणसूत्रों में विभक्त
न्यूक्लियोलस	अनुपस्थित	उपस्थित
कोशिका विभाजन	एमियाटिक	सामान्यतया माइटॉसिस एवं मीयॉसिस
लैंफिगकता	अनुपस्थित	स्त्री एवं पुरूष प्रति रूप
रिक्तिकायें	अनुपस्थित	उपस्थित
प्लैस्टिड	अनुपस्थित	उपस्थित
राइबोसोम	छोटा (70S)	बड़ा (80S)
इण्डोप्लाजमिक जालिका	अनुपस्थित	उपस्थित
गोल्की काय	अनुपस्थित	उपस्थित

युकैरियाटिक कोशिकायें दो प्रकार की होती है: प्राणि एवं वनस्पति कोशिकायें। प्राणी कोशिकायें (Animal Cell) रचना में वनस्पति कोशिकाओं (Plant cell) से भिन्न होती है। प्राणि कोशिका की बाहरी झिल्ली (Plasma membrane) सूक्ष्म महीन तन्तुओं (microvilli) से पड़ोसी कोशिका के सम्पर्क में रहती है जबकि वनस्पति कोशिका कोशिका भित्ति (Cell wall) से घिरी हुई होती है। चूंकि पड़ोसी कोशिका भी भित्ति से घिरी होती है इसलिए दो कोशिकाओं के मध्य दो भित्तियां होती है। इन भित्तियों के मध्य 'लैमेला' (Lamella) स्थित होता है। प्राणि कोशिकाओं में रिक्तिकायें छोटी

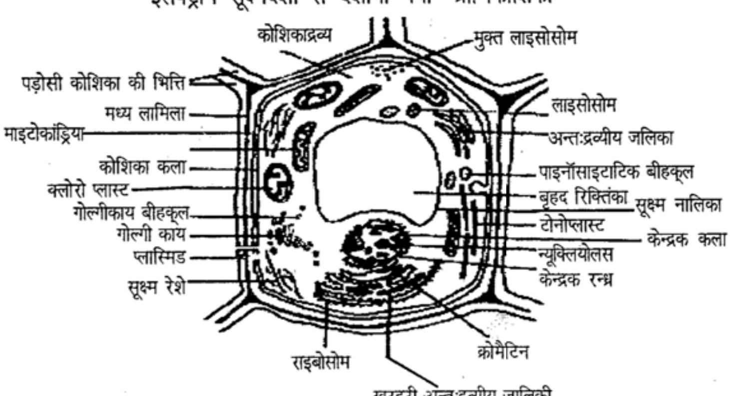
एवं खोखली पायी जाती है जबकि वनस्पति कोशिकाओं में ये अपेक्षाकृत बड़े आकार की होती है। वनस्पति कोशिका की रिक्तिकायें प्रायः केन्द्रीय भाग के पास होती है जबकि प्राणिकोशिकायें केन्द्रीय क्षेत्र (केन्द्रक) से कुछ हटकर कोशिका झिल्ली (Membrane) के निकट होती है।

प्राणि-कोशिका रचना (Animal Cell Structure)

प्राणि कोशिका कई सुपरिभाषित कोशिकांगों एवं उपभागों से मिल करके बनी हुई होती है। ये सभी कोशिकों एवं उपभाग परस्पर अन्तर्सम्बन्धित होते है। एक कोशिका दो भागों में विभक्त होती है: केन्द्रक एवं साइटोप्लाज्म। केन्द्रक कोशिका के केन्द्रीय भाग में होता है जबकि साइटोप्लाज्म कोशिका के बाहरी भाग में होता है।



इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी से दर्शायी गयी- प्राणिकोशिका



चित्र-8 : इलेक्ट्रॉन सूक्षमदर्शी से दर्शायी गयी पादप कोशिका

1. केन्द्रक (Nucleus)

केन्द्रक एक कोशिका के वंशागत गुणों (DNA) का केन्द्र है। यह केन्द्रक की द्विसतही कला से घिरा हुआ होता है। यह प्रोटोप्लाज्म का एक सघन पिण्ड सामान्यतः 5–10 μ के ब्यास वाला है। यह कोशिका के विकास का मार्गदर्शन एवं नियन्त्रण करता है। कोशिका की समस्त चयापचयी कार्यों का प्रेरक एवं नियन्त्रक यही केन्द्रक होता है। इसकी आकृति प्रत्येक कोशिकाओं में एक जैसी नहीं होती। यह गुणसूत्रों की संख्या एवं मात्रा तथा साइटोप्लाज्म पर निर्भर करती है। केन्द्रक सामान्यतः गोलाकार होता है लेकिन इपीथीलिमय कोशिका में लम्बा तथा मांसपेशीय कोशिकाओं में तश्तरी के आकार जैसा होता है। इसके मुख्य अंगक निम्न है:

(i) केन्द्रक-कला (Nuclear Membrane)

(ii) केन्द्रकद्रव्य (Nuclear Sap or Nucleoplasm)

(iii) न्यूक्लियोलस (Nucleolus)

(iv) क्रोमैटिन तन्तु (Chromatin Fibres)

(i) केन्द्रक-कला

केन्द्रक के चारों ओर द्विसतही झिल्ली या कला होती है। इन कलाओं के मध्य एक अन्तर कला अवकाश पाया जाता है इसे 'परि केन्द्रक अवकाश' (Peri nuclear space) कहते है। बाहरी केन्द्रक कला खुरदरी होती है क्योंकि यह साइटोप्लाज्म के अन्तःद्रव्यीय जालिका, गोल्की काय, माइटोकाण्ड्रिया के सम्पर्क में होती हैं यह एक निश्चित बिन्दु पर अन्तः एवं वाह्य कला एक में मिल जाती है जिससे छोटा रन्ध्र उत्पन्न होता है। प्रत्येक छोटे रन्ध्र पर 'डायाफ्राम' जैसी आकृति ऐनुलस (Annulus) स्थित होता है जिससे केन्द्रक के पदार्थो का स्वतंत्र आवागमन नहीं हो पाता। इस प्रकार केन्द्रक कला केन्द्रक को घेर करके इसे एक निश्चित आकृति प्रदान करता है तथा इसके पदार्थ के आवागमन का नियन्त्रण करता है। यह माइटोकान्ड्रिया के निर्माण में भी सहायक होता है।

(ii) केन्द्रक द्रव्य

इसे 'न्यूक्लियोप्लाज्म' भी कहते है। यह केन्द्रक का तरल भाग है। इसे 'कैरयोम्फि' (Karyolymph) भी कहते हैं। यह केन्द्रक कला एवं न्यूक्लियस (केन्द्रक)

के खाली भाग को भरता है। यह पारदर्शी अर्धतरल दानेदार एवं हल्का एसिडोफिलिक भाग होता है। इसमें न्यूक्लियो प्रोटीन, न्यूक्लियो हिस्टोन, न्यूक्लिक अम्ल, एंजाइम, लिपिड तथा विभिन्न खनिज होते हैं।

(iii) न्यूक्लियोलाई

न्यूक्लियोलाई केन्द्रक के अन्दर विद्यमान एक प्रकार के पिण्ड (bodies) है जो एक या एक से अधिक होते हैं। इनकी आकृति गोल गुम्बद जैसी (Spherical) होती है। ये प्रोटीन, आर एन ए (RNA) लिपिड तथा अल्प मात्रा में स्थित डी एन ए से बने होते हैं। यह किसी झिल्ली से घिरे नहीं होते। ऐसा माना जाता है कि ये RNA (राइबोसोमल आर एन ए) के संश्लेषण के लिए एक स्थल प्रदान करता है। यह प्रोटीन से मिलकर केन्द्रक से साइटोप्लाज्म में चले जाते हैं जहां पर राइबोसोम से संघठित होते हैं।

(iv) क्रोमैटिन तन्तु

यह आनुवंशिक पदार्थ है जो कोशिका-विभाजन के समय सुस्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। कोशिका विभाजन के दौरान यह आनुवंशिक पदार्थ क्रोमैटिन तन्तुओं एवं कणों जिसमें डी.एन.ए. एवं प्रोटीन होता हैं के रूप में प्रकट होता है। विभाजन के सक्रिय अवधि में जो क्रोमैटिन के तन्तु द्विगुणित हो कुण्डलित हो जाते हैं इन्हें 'क्रोमोसोम' या 'गुणसूत्र' के नाम से जाना जाता है। प्रत्येक क्रोमैटिन तन्तु हल्के एवं गहरे रंजक क्षेत्र को प्रदर्शित करते हैं इन्हें 'युक्रोमैटिन' (Euchromatin) एवं 'हेट्रोक्रोमैटिन' (Hetrochromatin) कहते हैं। हेट्रोक्रोमैटिन डी०एन०ए० की मात्रा कम रखते हैं।

प्रत्येक क्रोमोसोम या गुणसूत्र में मैट्रिक्स से घिरे दो पतले एवं कुण्डलित अक्षीय सूत्र (filament) दिखाई देते हैं जिन्हें 'क्रोमोनिमाटा' (Chromonemata) कहते हैं। इन सूत्रों पर युग्मों में सुव्यस्थित सूक्ष्म कण उभरे होते है इन्हे 'क्रोमोमियर' (Chromomeres) कहते हैं। विभाजन की अवस्था में गुणसूत्र एक स्थान पर अत्यन्त पतला होकर दो भुजाओं को प्रकट करता है। ये दोनों इसी स्थान पर जुड़ते प्रतीत होते है। इस कणीय बिन्दु को सेंट्रोमियर कहते हैं। इस समय इनकी लम्बाई 25 μ से 50μ तक होती है। मनुष्य में इनकी संख्या 46 होती हैं। इसमें 22 जोड़े अलिंग

गुणसूत्र एवं 1 जोड़ी लिंग गुणसूत्र होते हैं। ये गुणसूत्र डी०एन०ए० एवं विशेष प्रकार की प्रोटीन-हिस्टोन से बने हुए हैं। चूंकि ये गुणसूत्र एवं डी०एन०ए० वंशागति के नियामक है, अतः इनका विस्तृत वर्णन इसके आगे किया जायेगा।

2. साइटोप्लाज्म या कोशिका द्रव्य (Cytoplasm)

कोशिका द्रव्य कोशिका के बाहरी भाग को कहते हैं। यह केन्द्रक कला एवं कोशिका कला के मध्य स्थित होता है। इस भाग का अर्ध सरल भाग केन्द्रक की अपेक्षा अधिक तरल होता है। गुणों के अधार पर यह कहा जा सकता है कि लगभग सभी चयापचयी क्रियायें (न्यूक्लिक अम्ल संश्लेषण के अतिरिक्त) जैसे- प्रोटीन, लिपिड, कार्बोहाइड्रेट, संश्लेषण, ऊर्जा चयापचयी कार्य आदि इसी के अन्तर्गत सम्पन्न होती हैं। इस भाग के निम्नलिखित अंगक हैं:

(i) कोशिका कला (Plasma Membrane)
(ii) कोशिका द्रव्यीय मैट्रिक्स (Cytoplasmic Matrix)
(iii) माइटोकांड्रिया (Mitochondria)
(iv) गॉल्गी काय (Golgi Bodies)
(v) अन्तःद्रव्यीय जालिका (Endoplasmic Reticulum)
(vi) राइबोसोम (Ribosome)
(vii) लाइसोसोम (Lysosome)
(viii) सूक्ष्म नलिकायें (Microtubules)
(ix) रिक्तिकायें (Vacuoles)
(x) सेन्ट्रोसोम (Centrosomes)

(i) कोशिका कला (Plasma Membrane)

प्रत्येक कोशिका बाहरी वातावरण से एक कला (Membrane) के द्वारा पृथक होती है जो मुख्यतः फास्फोलिपिड एवं प्रोटीन से बनी होती है। इस जटिल कला की मोटाई 70 से 75A° के मध्य होती है। यह अत्यधिक पतली, लचीली, रन्ध्रयुक्त एवं अर्ध पारभासी होती है। इससे होकर जल एवं इसमें घुले पदार्थ कोशिका में प्रवेश करते रहते हैं। इलेक्ट्रान सूक्ष्मदर्शी से देखने पर यह त्रिपटलीय प्रतीत होती है (Denielli and Davson 1935) । बाहरी परत फास्फोलिपिड एंव आन्तरिक परत प्रोटीन की होती है।

इसके मुख्य कार्य कोशिका द्रव्य को पड़ोसी कोशिका में जाने से रोकना, बाहरी क्षति से बचाना, बृद्धि में लचीलेपन के कारण बाधक न होना, कोशिका द्रव्यों के मध्य नियमित रासायनिक विनिमय को बनाये रखना आदि है।

(ii) कोशिका द्रव्यीय मैट्रिक्स (Cyto plasmic Membrane)

कोशिका कला एवं केन्द्रक के मध्य एवं आकृतिहीन पारदर्शी तथा समांग तरल भरा होता है इस पदार्थ को 'मैट्रिक्स' कहते है। इसमें प्रमुखतः तल पाया जाता है। इसके अतिरिक्त सोडियम, पोटैशियम, धातु लवण, विभिन्न कार्बनिक यौगिक जैसे लिपिड, न्यूक्लियो प्रोटीन, प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, न्युक्लिक अम्ल, एन्जाइम आदि। यह मैट्रिक्स के मुख्य संगठक है।

(iii) माइटोकांड्रिया (Mitochondria)

कोशिकीय रासायनिक क्रियाओं का नियन्त्रण करने वाला, यह कोशिकांगक एक अथवा एक से अधिक संख्या में तैरते रहते हैं। इनका आकार एवं रचना भिन्नता प्रदर्शित करता है। इसका ब्यास $0.2\mu - 2.0\,\mu$ तक तथा लम्बाई $0.3\,\mu$ से $4.0\,\mu$ तक होता हैं। यह लाइपोप्रोटीन की दो कलाओ द्वारा चारों ओर से घिरी होती है। इन कलाओं के मध्य $60–80\text{A}^0$ की मोटाई का खाली स्थान पाया जाता है। आन्तरिक कला खुरदरी एवं अनेक प्रकार से मुड़कर क्रिस्टी (Cristae) को विनिर्मित करती है। आन्तरिक कला के मध्य के भाग को 'मैट्रिक्स' कहते है। 'क्रिस्टी' पर विभिन्न प्रकार के एंजाइम पाये जाते है। मैट्रिक्स में क्रिस्टी के निकट डीएनए के अणु रेखाबद्ध होकर स्थित होते है। माइटोकांड्रिया कार्यानुसार फूलती एवं संकुचित होती रहती हैं। यह कोशिका के श्वसन का केन्द्र है जहां शर्करा एवं वसा के अणुओं का विखण्डन होता है जिससे आणविक ऊर्जा उत्पन्न होती हैं। ये अन्ततः ATP के अणुओं में संग्रहीत होती है। इसे कोशिका के लिए 'ऊर्जा का घर' (Power House) भी कहते है।

(iv) गॉल्गी काय (Golgi Bodies)

कैमिलों गॉल्गी (Camilo golgi 1898) ने इस कोशिकांगक को सर्वप्रथम देखा था, इसीलिए इसका नाम 'गॉल्गी काय' पड़ा। गॉल्गी काय नलिकाओं का एक समूह होता है जो प्रायः केन्द्रक के पास स्थित होता है। इन नलिकाओं को सिस्टर्नी

(Cisternae) कहा जाता है। इनकी आकृति परिवर्तनशील होती है। इनकी रचनाओं में वसा (Lipid) की मात्रा अधिक होती है, इस कारण से इन्हें लिपोकांड्रिया (Lipochondria) भी कहा जाता है।

इनका मुख्य कार्य कोशिका के बाहर पदार्थो के आवागमन में तथा लिपिड संश्लेषण में सहायता करना है।

(v) अन्तःद्रव्यीय जालिका (Endoplasmic Reticulum)

समस्त कोशिका द्रव्य में कुण्डिकान्वित, पुटिकान्वित, शाखान्वित तथा पतली दोहरी कलायुक्त नलिकाओं का समूह होता है, इन्हें अन्तःद्रव्यीय जालिका कहा जाता है। इस जाल की नलिकाओं में प्रायः तरल द्रव्य भरा रहता है। इससे यह प्रतीत होता है कि ये जालिका केन्द्रक एवं कोशिका द्रव्य के मध्य, तथा कोशिका द्रव्य एवं बाहरी द्रव्यों के मध्य पदार्थो के परिसंचरण (Circulation) एवं परिवहन (Transportation) का कार्य करती है। इस कोशिकांगक में तीन उपांग-कुण्डिका, पुटिका तथा नलिका होती हैं। कुण्डिकायें बड़ी चपटी व 40–50 mμ मोटी, पुटिकायें गोलाकार जिनका व्यास 25–500 mμ तथा नलिकायें अनियमित आकार की होती है। नलिकाओं का व्यास 50–100 mμ होता है। जालिकाओं की दो कलाओं में एक कला जो खुरदरी होती है, इस पर राइबोसोम चिपके रहते हैं।

(vi) राइबोसोम (Ribosome)

यह 60% राइबोन्युक्लिक अम्ल (RNA) एवं 40% प्रोटीन से बनी संरचना है। इनका आकार गोल होता है। ये प्रायः अन्तर्द्रब्यीय जालिका की खुरदरी कला पर स्थित होता हैं। इसके अतिरिक्त ये कोशिकाद्रव्य में स्वतंत्र रूप से तैरते रहते हैं। कभी-2 इनके विखण्डित टुकड़े दिखाई देते हैं जिन्हें 'माइक्रोसोम' कहा जाता है।

इनका प्रमुख कार्य केन्द्रक से आये हुए आर०एन०ए० से मिलकर तथा पुनः कोशिका द्रव्य से अमीनों अम्लों को संयोजित करके 'आर०एन०ए०' के अनुरूप प्रोटीन का संश्लेषण करना है। प्रोटीन संश्लेषण के कार्य में अन्तर्द्रव्यीय जालिका भी सहायता करती है।

(vii) लाइसोसोम (Lysosome)

ये गोल तथा अण्डाकार कोशिकांग हैं। ये माइटोकाण्ड्रिया से कुछ छोटी

कलाबद्ध थैलियां होती हैं। इनमें उपस्थित एन्जाइम मुख्य रूप से वसा, प्रोटीन, न्यूक्लिक अम्लों के बड़े अणुओं को छोटे अणुओं में तोड़ने का कार्य करते है। इसके अतिरिक्त जो बाहरी पदार्थ किसी कार्यों के उपयोग में नहीं आता, उसे ये अंगक गला देते हैं।

(viii) सूक्ष्म नालिकायें (Microtubules)

ये सीधी एवं लम्बी नलिकायें एक गुच्छे के समान समूह में एकत्रित होती है। ये अत्यन्त बारीक एवं महीन होती है। इनका मुख्य कार्य जल आयनों तथा छोटे अणुओं के आवागमन में सहायता करना है। इसके अतिरिक्त कोशिका विभाजन के दौरान तन्तुओं (Spindles) एवं एस्टरों का निर्माण करना है।

(ix) रिक्तिकायें (Vacuoles)

इनका आकार गोल होता है। रिक्तिका का द्रव्य जल के सदृश होता है। इनमें लवण वर्णक, शर्करा एवं विभिन्न रासायनिक पदार्थ में घुले रहते हैं। इनका मुख्य कार्य जल के दबाव को नियन्त्रित करना है। इसके अतिरिक्त ये कोशिका के अनावश्यक पदार्थ के एकत्रित होने का स्थान प्रदान करना है।

(x) सेंट्रोसोम (Centrosome)

ये केन्द्रक के पास स्थित होते हैं। इनके अन्दर का द्रव्य पदार्थ कोशिका द्रव्य से गाढ़ा होता है। कोशिका विभाजन के समय इनमें दो शलाकायें उत्पन्न हो जाती हैं। इन्हें सेंट्रियोल' (Centriole) कहते हैं। प्रत्येक सेंट्रियोल में नौ तन्तु होते हैं तथा इन प्रत्येक तन्तु में तीन सूक्ष्म नलिकायें होती हैं। इन्हीं सूक्ष्म नलिकाओं के 'स्पिंडल' (Spindle) बनते हैं।

इन कोशिकांगो का मुख्य कार्य कोशिका विभाजन की शुरुवात करना तथा इसका नियन्त्रण करना है। ये विभाजन के अन्तिम अवस्थाओं के समय गुणसूत्रों का पृथक्करण एवं इसकी गति में सहायता करते हैं।

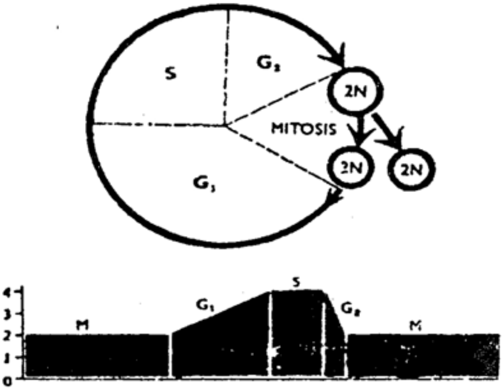
(xi) प्रोटीन रेशे या फिलामेंट (Protien Fibres or Filament)

ये रचनायें प्रोटीन के अणुओं की बनी होती हैं। इनकी लम्बाई अनियमित होती है। ये लम्बे धागे के सदृश होती हैं। अभी तक इनके कार्यों का निश्चित ज्ञान नहीं हो सका है। सम्भवतः ये कोशिका द्रव्य को मजबूती प्रदान करते हैं।

इस प्रकार कोशिका की उपरोक्त रचनायें कार्य एवं परिस्थिति के अनुसार यदाकदा विविधतायें प्रदर्शित करती हैं। केन्द्रक कोशिका द्रव्य से व सम्पूर्ण कोशिका के बाहरी परिवेश से सम्बन्ध स्थापित करने में सहायक होते हैं। m RNA के द्वारा केन्द्रक कोशिका द्रव्य प्रत्यक्ष रूप से अन्तःसम्बन्धित होते हैं। जब आनुवंशिक सूचना पारगमन हो इस पर अंकित (Transcribed) होती है उसे यह केन्द्रक से कोशिका द्रव्य में लाता है जहां पर प्रोटीन संश्लेषण के रूप में ये अनूदित होती है। इसके बाद ही उस आनुवंशिक पदार्थ का अनुलिपीकरण हो पाता है। कोशिका अपने विकास एवं संवृद्धि के लिए आवश्यक जैविकी पदार्थों को बाहरी परिवेश से ग्रहण करती है। इससे इसके द्रव्य में वृद्धि हो जाती है। फलस्वरूप केन्द्र/द्रव्य सूचकांक अथवा केरियोप्लाज्मिक सूचकांक (Karyoplasmic Index) में सन्तुलन बिगड़ जाता है। केन्द्रक के परिणाम एवं कोशिका द्रव्य की मात्रा का पूर्ववत अनुपात बनाये रखने हेतु उस कोशिका में विभाजन आवश्यक हो जाता है।

कोशिकीय जीवन चक्र (Cell Life Cycle)

कोशिकाओं की संवृद्धि एवं विकास गतिमान चक्र की भांति सदैव होती रहती है। जब कोई कोशिका अत्यधिक संबर्धित हो जाती है तो उसमें विभाजन की क्रिया आरम्भ हो जाती है। इसे कोशिका चक्र (Cell Cycle) कहते हैं। इस प्रकार कोशिका संवृद्धि कोशिका विभाजनों के मध्य की अवस्था है जिसे अन्तरावस्था कहते है। इसी अवस्था अर्थात् कोशिका संवृद्धि काल में कोशिकांगकों की अनुलिपियां विकसित हो जाती है। जीनों का अनुलिपिकरण होता है। गुणसूत्र जो कोशिका केन्द्रक भाग में स्थित होते है। उनमें धागे के समान एक 'क्रोमोनेमाटा' होता है जिस पर रेखिक क्रम में जीन लगे रहते हैं। प्रत्येक जीन एक अति जटिल दुहरे रज्जुकी पदार्थ 'डी०एन०ए०' का बना होता है। 'जीन' की अनुलिपि बनते समय इसी डी०एन०ए० के दोनों रज्जुक पृथक हो जाते हैं। प्रत्येक रज्जुक 'न्यूक्लियोप्लाज्म' में से न्यूक्लियोटिडो का चुनाव करके अपने सम्पूरक रज्जुक का निर्माण कर लेता है। इस प्रकार एक जीन की दो अनुलिपियां बनती है तथा एक जीन से दो पृथक जीन बनते हैं। प्राणियों में शरीर कोशिका जीवन चक्र निम्न चार चरणों में पूर्ण होता है:



चित्रः 9 इन्टरफेज की G_1 S तथा G_2 एवं विभाजन के प्रदर्शन हेतु कोशिका के कोशिका-चक्र (Cell Cycle) का प्रदर्शन

(i) G_1 अवस्था (G_1 Period)

(ii) S अवस्था (S Period)

(iii) G_2 अवस्था (G_2 Period)

(iv) M अवस्था (M. Peroid)

G_1 अवस्था : G_1 अवस्था कोशिका का प्रारम्भिक बृध्दि काल है। इस काल में कोशिक DNA संश्लेषण के लिए आवश्यक पदार्थो का संग्रह करती है तथा प्रारम्भिक कणों जैसे- प्रोटीन का संश्लेषण करती है। इसमें कोशिका के जीवन चक्र का लगभग 8 घंटे का समय व्यतीत होता है। कोशिका में घटित होने वाले सूक्ष्म विभेदन इसी काल में प्रस्फुटित होते हैं।

S अवस्था : इस अवस्था को 'DNA संश्लेषण काल' भी कहते है। यह लम्बी अवधि वाली कोशिका अवस्था है जिसमें लगभग 6 घंटे का समय लगता है। इस काल में गुणसूत्रों की अनुलिपियां DNA संश्लेषण के उपरान्त बनती हैं।

G_2 अवस्था : यह द्वितीय वृध्दिकाल है। इस समय कोशिका आवश्यक प्रोटीन एवं RNA का संश्लेषण कर स्वयं को विभाजित करने हेतु तैयार करती है। इस कार्य में कोशिका अपने जीवन चक्र का लगभग 4 या 5 घंटे लेती है।

M अवस्था या कोशिका विभाजन : इस अवस्था में कोशिका दो सन्तति कोशिकाओं में विभाजित हो जाती है। इन दोनों सन्तति कोशिकाओं (Daughter Cells) में गुणसूत्रों, जीनों, डी०एन०ए० आदि की मात्रा इनके पूर्वज कोशिकाओं के समान ही होती है। कोशिका के इस विभाजन को सूत्री विभाजन या माइटोसिस कोशिका विभाजन कहते हैं। इस कारण से इस काल को M अवस्था या (M Period) कहा जाता है। इस अवस्था में कोशिका के जीवन चक्र का न्यूनाधिक समय लगता है तथा जिसे कोशिका की संवृद्धि में लगभग 19 घंटे लगते है। उसका विभाजन मात्र 60 मिनट में सम्पन्न हो जाता हैं और विभाजित हुई कोशिका पुनः अपनी जीवन यात्रा आरम्भ कर देती है जो कुल 20 घंटे की होती है।

उपरोक्त कोशिका विभाजन मानव शरीर की समस्त कोशिकाओं में घटित नहीं होता। यह विभाजन केवल दैहिक कोशिकाओं (Somatic Cell) में होता है। ज्ञातब्य हो कि अंग एवं स्थान वितरण के आधार पर कोशिका दो प्रकार की होती है: दैहिक एवं जनन। दैहिक कोशिकायें सम्पूर्ण शरीर के विकास एवं वृद्धि के लिए उत्तरदायी होती हैं। ये पूरे शरीर में होती है इनका विभाजन मुख्यतः अप्रत्यक्ष रूप से (माइटोसिस या सूत्री विभाजन) एवं प्रत्यक्ष रूप से (अमाइटोसिस) होता है। मानव शरीर कोशिकाओं का विभाजन मुख्यतः माइटोसिस प्रक्रिया से होता है। दूसरी ओर जनदों (Genital Organs) में जनन कोशिकायें (Germ Cells) होती है जिनमें विभाजन में अर्धसूत्री या मीयोसिस प्रक्रिया घटित होती है। इससे युग्मों– शुक्राणु एवं अण्डाणु का निर्माण होता है जिनसे एक युग्मनज (Zygote) उत्पन्न होता है। इस युग्मनज की संवृद्धि एवं विकास पुनः सूत्री विभाजन प्रक्रिया से होता है जिसके फलस्वरूप मानव-भ्रूण जन्म लेता है।

इस प्रकार मानव कोशिकाओं का विभाजन मुख्यतः दो भिन्न प्रक्रियाओं से होता है:

(i) क्षैतिज प्रक्रिया सामान्यतया माइटोसिस या सूत्री विभाजन कहते हैं।

(ii) रेखीय प्रक्रिया इसे मीटोसिस या अर्धसूत्री विभाजन कहा जाता है।

माइटॉसिस या सूत्री विभाजन
(Mitosis)

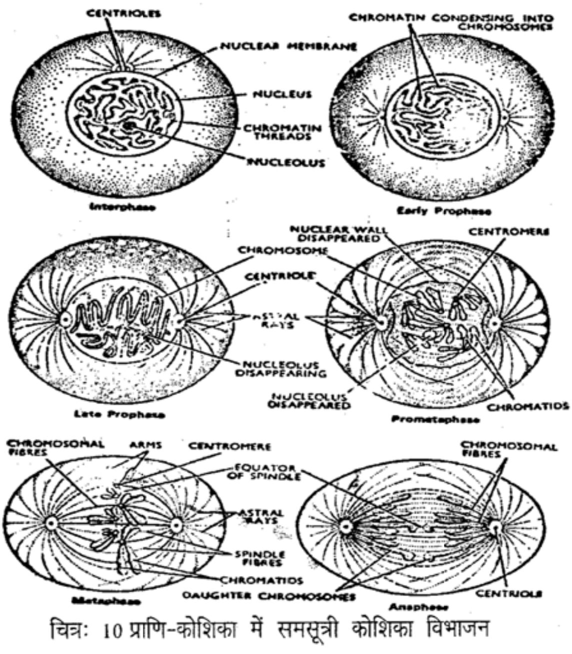
सूत्री कोशिका विभाजन (Mitosis) समस्त यूकैरियाट दैहिक कोशिकाओं में होता है। इसके परिणामस्वरूप एक पूर्वज कोशिका दो सन्तति कोशिकाओं में विभक्त हो जाती है। ये आकार एवं संरचना में अपने जनक कोशिका के समान होती है।

इनमें डी०एन०ए० जीन एवं गुणसूत्र संख्या एवं रूप में भी अपनी पितृ कोशिका के सदृश होते हैं। सूत्री कोशिक विभाजन घटनाक्रमों की एक अविरल प्रक्रिया है जिसके कारण ही ऊतकों, अंगो का निरन्तर विकास व इनकी क्षतिपूर्ति होती रहती हैं इसीलिए इसे क्षैतिज प्रक्रिया भी कहते हैं यह प्रक्रिया निम्न अवस्थाओं में पूर्ण होती है:

1. कैरियोकाइनेसिस या केन्द्रक विभाजन
2. साइटोकाइनेसिस या कोशिका द्रव्य विभाजन

1. कैरियोकाइनेसिस या केन्द्रक विभाजन (Karyokinesis)

प्रत्येक दैहिक कोशिका के सूत्री विभाजन की प्रक्रिया मुख्यतः दो चरणों में पूर्ण होती है। प्रथम चरण में कोशिका के केन्द्रक के अन्दर विभाजन की कई क्रियायें तेजी से होती हैं। यह दूसरे चरण के विभाजन से जटिल है। केन्द्रक का विभाजन जब हो चुका है तो कोशिका विभाजन का द्वितीय एवं अन्तिम चरण आरम्भ होता है। इसमें कोशिका द्रव्य विभाजित होता है। केन्द्रक विभाजन की प्रक्रिया निम्न अवस्थाओं में परिपूर्ण होती है:



चित्रः 10 प्राणि-कोशिका में समसूत्री कोशिका विभाजन

(i) पूर्वावस्था या प्रॉफेज (Prophase)
(ii) मध्यावस्था या मेटाफेज (Metaphase)
(iii) पश्चावस्था या एनॉफेज (Anaphase)
(iv) अन्त्यावस्था या टीलॉफेज (Telophase)

(i) पूर्वावस्था (Prophase)

इस अवस्था में जल का क्षरण होता है जिसके स्पष्ट धागों के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। शनैः इनकी लम्बाई सीमित होती है तथा मोटाई बढ़ती जाती है। ये तन्तु स्प्रिंग की भांति कुण्डलित होकर लम्बाई घटाते हैं तथा मोटाई में बृद्धि करते हैं। इस अवस्था के अर्धकाल तक एक गुणसूत्र की आधी संरचना स्पष्ट हो जाती है। प्रत्येक गुणसूत्र में डी०एन०ए० के अनुलिपीकृत होने से दो क्रोमैटिड (Chromatid) दिखाई पड़ने लगते हैं। तारक केन्द्रक या सेंट्रियाल अपने विभाजन के लिए उद्यत हो जाते है। यह सभी घटनायें पूर्वावस्था के प्रथम काल में सम्पूर्ण होती हैं।

पूर्वावस्था के अन्तिम उपावस्था में सेंट्रियाल दो सन्तति सेंट्रियालों में विभक्त हो जाते हैं। इसके पश्चात् दो सन्तति सेंट्रियाल विरोधी ध्रुवों में दूर खिसकने लगते है तथा इनसे एस्ट्रल रश्मियां विकसित हो जाती हैं। इन सन्तति संट्रियालों (ये सेंट्रोसोम के रूप हैं) की सहायता के लिए सूक्ष्म नलिकायें (Microtubules) आ जाती हैं जो इन ऐस्ट्रल रश्मियों के विकास में सहायता करती हैं। विरोधी ध्रुवों में स्थित सन्तति सेंट्रियालों के मध्य ये सूक्ष्म नलिकायें तर्कु (Spindle) बनाती है। केन्द्रक कला का विलोपीकरण धीरे-धीरे आरम्भ हो जाता है। गुणसूत्र तर्कु के मध्य रेखाओं पर खिसकने लगते हैं। अन्त में न्यूक्लिोलस पूर्णतः विलुप्त हो जाता है।

(ii) मध्यावस्था (Metaphase)

प्रारम्भ में तर्कु पूर्ण रूप से स्पष्ट हो जाते है। केन्द्रक कला लगभग विलुप्त होने लगती हैं। गुणसूत्र तर्कु के इक्वेटर या विषुवत रेखीय तल (Equator) पर पहुँच जाती हैं। वहां इनके सेन्ट्रोमियर (Centromere) तर्कु के इक्वेटर पर स्थित हो जाते है तथा गुणसूत्र की भुजायें (Chromatids) ध्रुवों की ओर उन्मुख हो जाते हैं जो तर्कु इक्वेटर से बाहर जाती हुई प्रतीत होती हैं। इस अवस्था के अन्तिम चरण में केन्द्रक कला पूर्णतः विलुप्त हो जाती हैं। गुणसूत्र और अधिक कुण्डलित, सघन व छोटे हो जाते हैं।

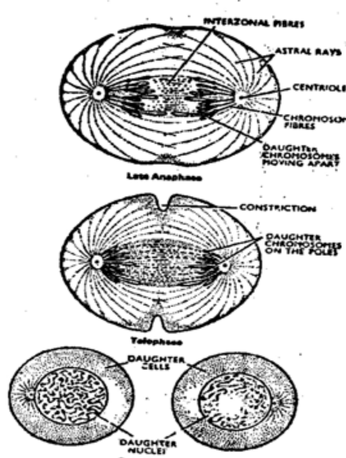
(iii) पश्चावस्था (Anaphase)

यह एक निर्णायक अवस्था है क्योंकि इसी अवस्था में एक गुणसूत्र दो सन्तति

गुणसूत्रों में विभाजित होते हैं। प्रारम्भ में तर्कु-तन्तुओं में तनाव उत्पन्न होता है जिसके फलस्वरूप गुणसूत्रों पर विरोधी तनाव पड़ता है और इसका सेंट्रोमियर दो भागों में विखण्डित हो जाता है जिससे गुणसूत्र के दोनों क्रोमैटिड (सन्तति गुणसूत्र) पृथक हो जाते हैं। इससे ये दोनों पृथक सन्तति गुणसूत्र एक स्वतंत्र गुणसूत्र के रूप में तर्कु के विपरीत ध्रुवों की ओर गतिमान होते हैं। इस क्रिया में सर्वप्रथम तर्कु तन्तुओं से सम्बद्ध सन्तति कोशिका के सेंट्रोमियर विरोधी ध्रुवों की ओर अग्रसरित हो जाते हैं। साथ ही क्रोमैटिड भी खिसकने लगते हैं। इस अवस्था के अन्तिम क्षणों में सन्तति गुणसूत्र ध्रुवों के निकट स्थित हो जाते हैं। ये गुणसूत्र जो एकहरे गुच्छे के समान प्रतीत होते हैं। इनका आकार सेंट्रोमियर की स्थिति के अनुरूप V, L अथवा L अक्षरों के सदृश हो जाते हैं।

(iv) अन्त्यावस्था (Telophase)

यह केन्द्रक विभाजन की अन्तिम अवस्था है। इसमें गुणसूत्र (संतति) लम्बे एवं पतले हो जाते हैं तथा ये क्रोमैटिन जाल का रूप ग्रहण करने लगते हैं। इनके चारों ओर केन्द्रक कला (Membrane) विकसित होने लगती है। तर्कु के प्रत्येक ध्रुव पर एक सन्तति केन्द्रक उत्पन्न हो जाता है जिनमें गुणसूत्रों की संख्या पितृ केन्द्रक के बराबर होती है। गुणसूत्रों के तर्कुध्रुवों पर स्थित होने तथा सन्तति केन्द्रक के बनने खांच (Furrow) विकसित होने लगते हैं जो कोशिका द्रव्य विभाजन (Cytokinesis) का संकेत देते हैं।



चित्र 11 प्राणि-कोशिका में टेलोफेज एवं कोशिकाद्रव्य-विभाजन

2. कोशिका द्रव्य विभाजन (Cytokinesis)

केन्द्रक विभाजन के पश्चात् कोशिका के बाहरी भाग कोशिका द्रव्य में तनाव प्रारम्भ हो जाता है। कोशिका द्रव्य में यह तनाव मध्य में आता है जहां केन्द्रक विभाजन में तर्कु तन्तुओं का इक्वेटर होता है। कोशिका का यह मध्यवृत्त रेखीय भाग गुणसूत्रों के न रहने से जब खाली होने लगता है तब कोशिका द्रव्य में इस सीमा पर विरोधी ध्रुवों पर स्थित सन्तति केन्द्रकों का विरोधी बल लगता है। इस विरोधी बल के फलस्वरूप कोशिका के इस भाग पर संकीर्णन आरम्भ हो जाता है। इससे कोशिका द्रव्य की बाहरी कला तेजी से फैलती एवं संकुचित होती जाती है। इसके फलस्वरूप अन्ततः दो सन्तति कोशिकाओं में यह कोशिका द्रव्य विभक्त हो जाता है। ये सन्तति कोशिकायें जो जनक या पूर्वज कोशिकाओं के समान रूप और रचना में होती है इनमें गुणसूत्रों की संख्या एवं कोशिकांगों की मात्रा बराबर-बराबर होती है।

सूत्री विभाजन का महत्व
(Significance of Mitosis)

बहुकोशीय प्राणियों में सूत्री कोशा विभाजन का विशेष महत्व है। इस विभाजन के फलस्वरूप इसके शरीर की प्रत्येक•कोशिकायें (सन्तति) अपने पूर्वज या पितृ कोशिकाओं के समान रहती है। कोशाओं के संख्या (मात्रा) एवं आकार गुण की इस समानता के फलस्वरूप शरीर के लक्षण वंशागत हो पाते है। उस जीव के प्रत्येक ऊतक एवं अंग अपने जनक के गुणों एवं आकार के समान होता है। चूंकि इन कोशाओं के आकार में र्य एवं परिस्थितियों के अनुसार विभेद उत्पन्न होते है इसलिए इन सूक्ष्म विभेदों के एकल हो जाने से इनके सन्तति ऊतकों में भी विभेद परिलक्षित होते हैं। इन नवीन ऊतकों के निर्माण से शरीर का विकास एवं वृद्धि होती रहती है। इस काल में उत्पन्न क्षति की पूर्ति यहीं सन्तति कोशिकायें करती रहती हैं जिससे शरीर की संवृद्धि एवं विकास युवावस्था तक चिरन्तन होता रहता है। इस समय यह विभाजन तेजी से होता है। युवावस्था के बाद यह विभाजन मंद होता है लेकिन जीवन पर्यन्त यह विभाजन घटित होता रहता है क्योंकि इस समय कार्य एवं पर्यावरण के प्रभाव से ऊतकों की क्षति होती रहती है जिनका तुरन्त निर्माण यही नवीन कोशिकायें करती हैं।

बहुकोशीय जीवों के युग्मनज (Zygote) इसी कोशा विभाजन के फलस्वरूप भ्रूण में विकसित हो पता है। इस भ्रूण का परिपक्वता तथा संवृद्धि इसी विभाजन पर निर्भर करती है। इसके समस्त तन्त्रों (मांसपेशी, अस्थि, तंन्त्रिका, रूधिर संचरण, श्वसन आदि) का विकास सम्भव हो पाता है। विकास एवं संवृद्धि से सम्बन्धित विसंगतियां इनके विभाजन की घटनाओं एव पर्यावरण की विसंगतियों के परिणाम स्वरूप उत्पन्न होती है। अनेकों शारीरिक विकार भी इन विभाजनों से वंशागत हो जाते है। यह सूत्री विभाजन जीवनदायिनी होते है जो अन्तिम क्षणों तक उस जीव के विशिष्ट लक्षण 46 गुणसूत्र की संख्या बनाये रखने के साथ-साथ सूक्ष्म विभेद भी उत्पन्न करते रहते हैं जिससे उस जीव को अनुकूलन क्षमता प्राप्त होती है।

मीयॉसिस या अर्धसूत्री कोशा विभाजन (Meiosis)

अर्धसूत्री कोशा विभाजन एक अत्यन्त जटिल व विशिष्ट आनुवंशिक प्रक्रिया है जिससे मानव में प्रजनन (Coupulation) के समय जनदों (genitals) में जनन कोशिकायें शुक्राणु एवं अण्डाणु उत्पन्न होते हैं। इन जनन कोशाओं के अगुणित युग्म (Gamete) उत्पन्न होते हैं। जिनके संयुक्त होने से एक युग्मनज (Zygote) का निर्माण होता है। इन जनन कोशिकाओं का अगुणन अथवा अर्धसूत्री विभाजन दो चरणों-मीयॉसिस- I एवं मीयॉसिस- II में पूर्ण होता है।

(A) मीयासिस I

(B) मीयासिस II

A. मीयासिस- I

यह न्यूनकारी विभाजन होता है। इस चरण में जनन कोशिकाओं के गुणसूत्र की संख्या आधी हो जाती है। यह निम्न अवस्थाओं में पूर्ण होती है:

(i) पूर्वावस्था I (Prophase I)

(ii) मध्यावस्था I (Metaphase I)

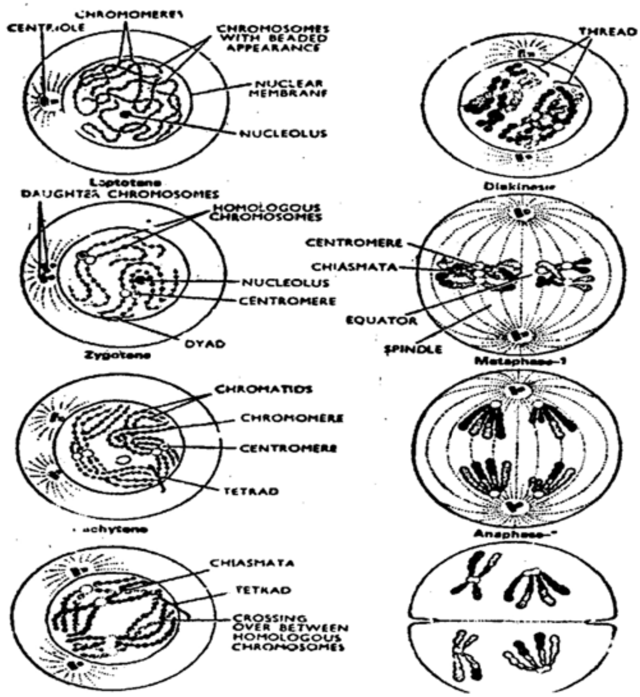
(iii) पश्चावस्था- I (Anaphase–I)

(iv) अन्त्यावस्था-I (Telophase--I)

1. **पूर्वावस्था- I :** मीयोसिस- I की यह प्रावस्था सर्वाधिक जटिल एवं लम्बी अवधि

की होती है। यह अवस्था स्त्रियों में और अधिक लम्बी होती है। इनमें जन्म के समय अण्डाशय का प्रत्येक अण्डक (oocyte) इस अवस्था में प्रवेश कर लेता है। ये अण्डक लगभग 12–15 वर्षों तक इसी अवस्था में रहते हैं। इनमें से कुछ अण्डक तो कई वर्षों तक इसी अवस्था में आसन्न रहते हैं। इसमें प्रमुख घटनायें गुणसूत्रों का संघनन, विनिमय, केयाज्मा का अवतरण तथा गुणसूत्रों का युग्मन आदि हैं। यह निम्न उपावस्थाओं में विभक्त की गयी हैं:

(i) लेप्टीन (Leptene)
(ii) जाइगोटीन (Zygotene)
(iii) पैकीटीन (Pachytene)
(iv) डिप्लोटीन (Diplotene)
(v) डाइकाइनेसिस (Diakinesis)



चित्र: 12 प्राणि-कोशिका में प्रथम न्यूनकारी विभाजन की विभिन्न प्रावस्थाएँ

(i) लेप्टीन (Leptene)

इसे लेप्टोनीमा (Leptonema) भी कहते हैं। यह उपावस्था अर्धसूत्री कोशा विभाजन का प्रारम्भ है। इसमें केन्द्रक के क्रोमैटिन संघनित होकर पतले,लम्बे वे कुण्डलित तन्तुओं के समकक्ष गुणसूत्र बन जाते है। इन गुणसूत्रों की अनुलिपियां उत्पन्न हो जाते है। इनके क्रोमैटिड इतने अधिक संघनित होते हैं तथा एक दूसरे के चारों ओर घनिष्ठ होकर इस प्रकार लिपटे होते है कि उन्हें पृथक-पृथक पहचाना नहीं जा सकता। प्रत्येक गुणसूत्रों में सूक्ष्म क्रोमेमियर होते है। RNA संश्लेषण से केन्द्रक के आयतन में वृद्धि होती है तथा सेंट्रियाल टूटकर विपरीत ध्रुवों की ओर अग्रसरित हो जाते हैं।

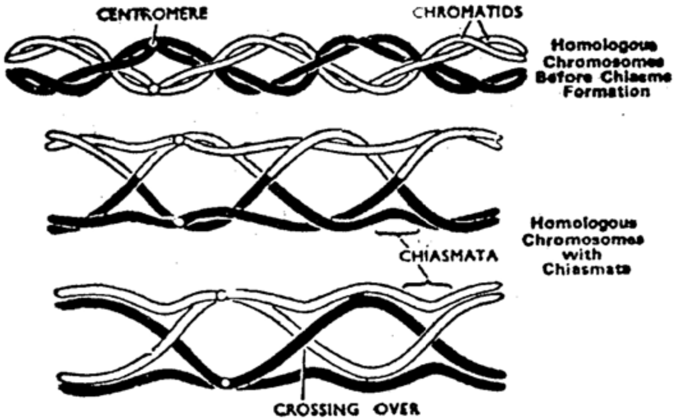
(ii) जाइगोटीन (Zygotene)

इसे जाइगोनीमा (Zygonema) भी कहते है। इसमें समजात गुणसूत्रों का युग्मन प्रारम्भ हो जाता है अर्थात् समजात गुणसूत्रों के मध्य उत्पन्न हुई आकर्षण शक्ति के फलस्वरूप गुणसूत्र अपने समजात के साथ लिपट जाता है तथा कही–2 ये संयोजित भी हो जाते हैं। इस स्थिति को साइनैप्सिस (Synapsis) कहते है तथा इस क्रिया को युग्मन (Bivalent) कहते हैं।

(iii) पैकीटीन (Pachytene)

इसे पैकीनीमा (Pachynema) भी कहा जाता है। समजात गुणसूत्रों के युग्मन अथवा साइप्नैसिस के पश्चात् प्रत्येक युगल संकुचित एवं कुण्डलित होकर छोटे एवं मोटे हो जाते है। प्रत्येक गुणसूत्र दो क्रोमैटिडों में विभक्त हो जाता है। इससे युगल (Bivalent) चार स्पष्ट अर्धसूत्री अथवा क्रोमैटिड में विकसित हो जाता है। इसे टेट्राड अथवा टेट्रावैलेंट (Tetrod or Tetravalent) कहते हैं।

समजात गुणसूत्रों के दोनों क्रोमैटिड आपस में और अधिक लिपटकर, कुण्डलित हो जाते हैं। फलस्वरूप समजात गुणसूत्रों में तनाव उत्पन्न होता है जिससे दुर्बल क्रोमैटिड अनेक स्थानों पर खण्डित हो जाते है और विजातीय (Non–sister) क्रोमैटिडों में टूटे हुए खण्डों का विनिमय हो जाता है। विनिमय एवं विसंयोजन की इस प्रक्रिया को 'क्रांसिंग ओवर' (Crossing Over) कहते हैं। न्यूक्लियोलस इस उपावस्था तक बने रहते हैं।



चित्रः 13 क्रासिंग ओवर की क्रिया विधि (Machanism of crossing-over)

(iv) डिप्लोटीन (Diplotene)

इस उपावस्था में क्रोमैटिडों के टूट जाने से समजात गुणसूत्रों के मध्य आकर्षण बल के स्थान पर प्रतिकर्षण या गुणसूत्र पृथक हो जाते है। विनिमय अथवा 'क्रासिंग ओवर' वाले स्थल पर ये एक दूसरे के सम्पर्क में रहते हैं। इन स्थलों को 'कियाज्मैटा' (Chiasmata) कहते हैं। इन स्थल बिन्दुओं पर गुणसूत्र कुण्डलित होकर मोटा हो जाता है। अन्त में भुजाओं के मध्य में स्थित 'कियाज्मैटा' शनैः -2 गुणसूत्र के सिरे (Terminus) की ओर अग्रसरित हो जाता है। इस क्रिया को 'टर्मिनलाइजेशन' (Terminalization) कहते हैं।

(v) डाइकाइनेसिस (Diakinesis)

यह पूर्वावस्था I की अन्तिम उपावस्था है। इसमें सेंट्रियाल विपरीत ध्रुवों में स्थित हो जाते हैं। केन्द्रक कला भंग हो जाती है। तर्कुतन्तु स्पष्ट होने लगते हैं। बाइवैलेंट आकुंचित होकर और अधिक मोटे हो जाते हैं। गुणसूत्र गहरे रंजित कार्यो में दृष्टिगत होता है।

2. मध्यावस्था- I (Mataphase I)

इस अवस्था में केन्द्रक कला पूर्णतः विलुप्त हो जाती है। विपरीत ध्रुवों में स्थित सेंट्रियालों के मध्य तर्कुतंन्तु अधिक स्पष्ट हो जाते हैं। इनके मध्य वृत्तीय रेखा या

इक्वेटर पर गुणसूत्र इस प्रकार से स्थित हो जाते है जिससे इनका सेन्ट्रोमियर तर्कु-तुन्तु से जुड़ कर ध्रुवों की ओर अभिमुख हो जाते हैं तथा गुणसूत्रों की भुजायें तर्कुतन्तु (Spindle) के बाहर होती हैं।

3. पश्चावस्था I (Anaphase I)

इसमें गुणसूत्रों के सेंट्रोमियर ध्रुवों की ओर खिसक जाते हैं। समजात गुणसूत्रों (Bivalent) जो जाइगोटीन अवस्था में उत्पन्न हुए थे, वे पृथक होकर, विरोधी ध्रुवों में चले जाते है। पृथक हुए आधे गुंणसूत्रों के दोनों क्रोमैटिड (भुजायें) सेंट्रोमियर से जुड़े रहते हैं।

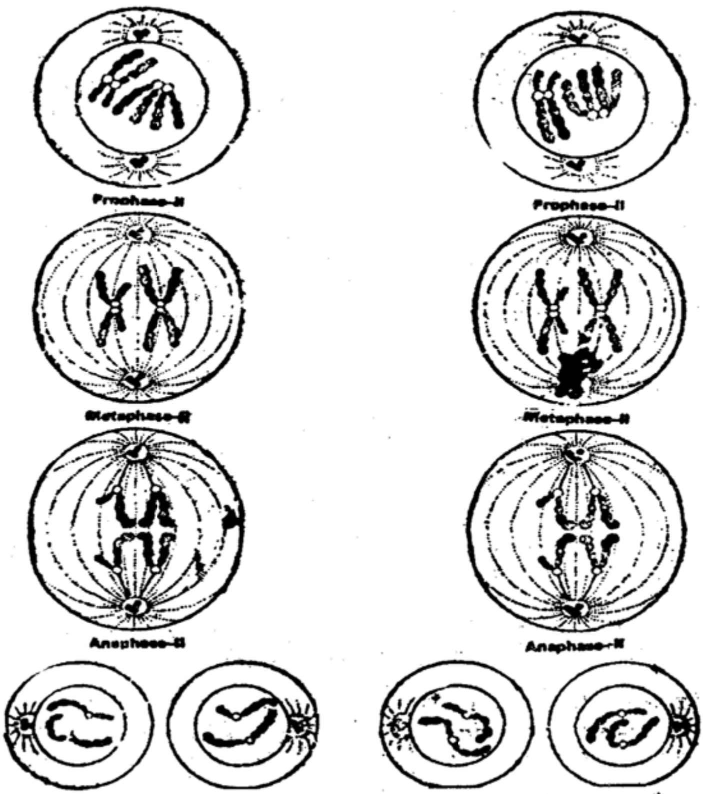
4. अन्त्यावस्था I (Telophase I)

यह मियॉसिस I की अन्तिम अवस्था है। इसमें गुणसूत्रों के विरोधी ध्रुवों में होने से तर्कुतन्तु प्रत्येक ध्रुवों पर चारों ओर से घेरे रहते हैं। इससे केन्द्रक कला उत्पन्न होती है तथा न्यूक्लियोलस स्पष्टतः दृष्टिगोचर होने लगता है। केन्द्रक कला के अन्दर स्थित गुणसूत्र पतले एवं लम्बे होने लगते हैं इनमें गुणसूत्रों की संख्या मातृजअथवा पितृज जनन कोशिकायें आधी (Haploid) हो जाती हैं। इसके पश्चात कोशिका द्रव्य का विभाजन (Cytokinasis) होने से दो युग्मक विकसित हो जाती हैं।

B. मीयॉसिस II

मियॉसिस II कोशा विभाजन समसूत्री विभाजन है। इसके अन्तर्गत दोनों अगुणित कोशिकायें (युग्मक) स्वतंत्र रूप से साथ-2 विभाजित होती हैं जिसके फलस्वरूप प्रत्येक अगुणित सन्तति कोशिकाओं के पुनः दो-दो युग्मक उत्पन्न होते हैं। इन युग्मकों में गुणसूत्रों की संख्या अगुणित कोशिकाओं के समान ही रहती है। यह द्वितीय अर्धसूत्री विभाजन निम्न अवस्थाओं में घटित होता है:

1. पूर्वावस्था II (Prophase II)
2. मध्यावस्था II (Metaphase II)
3. पश्चावस्था II (Anaphase II)
4. अन्त्यावस्था II (Telophase II)



चित्र: 14 प्राणि-कोशिका में द्वितीय अर्धसूत्री-विभाजन की विभिन्न प्रावस्थाएँ

1. पूर्वावस्था II (Prophase II)

इस अवस्था में सेंट्रियॉल विभजित होकर के विपरीत ध्रुवों में खिसक जाता है। इनके चारों ओर एस्टरिक रश्मियां स्पष्ट होने लगते है। न्यूक्लियोलस विलुप्त हो जाता है। गुणसूत्र कुण्डलित होकर के स्थूलित होने लगते हैं। केन्द्रक कला का विलोपन प्रारम्भ हो जाता है।

2. मध्यावस्था II (Metaphase II)

इस अवस्था में तर्कतन्तु विकसित हो जाते हैं। तर्कु तन्तु की मध्यवृत्त रेखा (Equator) पर गुणसूत्र इस प्रकार स्थित होते हैं, जिससे इनके सेंट्रोमियर तर्कु पर

एवं गुणसूत्रों की भुजायें इनके बाहर होती हैं। गुणसूत्रों का सेंट्रोमियर विरोधी ध्रुवों की ओर अभिमुख होता है।

3. पश्चावस्था II (Anaphase II)

इस समय गुणसूत्र का सेंट्रोमियर विभक्त होकर विरोधी ध्रुवों की ओर चला जाता है। इसके साथ क्रोमैटिड भी पृथक होकर सन्तति गुणसूत्र (अर्ध) विरोधी ध्रुवों पर स्थित हो जाते हैं। इस स्थित में सेंट्रोमियर लगभग ध्रुवों पर स्थित होता है जबकि सन्तति गुणसूत्र (अर्ध) के क्रोमैटिड इक्वेटर की ओर अभिमुख होते हैं।

4. अन्त्यावस्था II (Telophase II)

मीयॉसिस या अर्ध कोशा विभाजन की यह अन्तिम अवस्था है। इस अवस्था में प्रत्येक गुणसूत्र अर्ध कुण्डिलित होकर लम्बे हो जाते है। इनके चारों ओर तुर्क तन्तुओं का आवरण होता हैं। इसके पश्चात् केन्द्रक कला विकसित हो जाती है। केन्द्रक विभाजन के पश्चात् कोशिका विभाजन (Cytokinesis) की प्रक्रिया आरम्भ होती है जिसके फलस्वरूप पुनः दो सन्तति जनन कोशिकायें उत्पन्न होती हैं। इन चारों कोशिकाओं में गुणसूत्रों की संख्या अगुणित होती है अर्थात् मानव की इन प्रत्येक अगुणित कोशिकाओं में गुणसूत्रों की संख्या 23 होती है।

मीयॉसिस का महत्व
(Significance of Meiosis)

लैंगिक जनन वाले स्तनियों मनुष्यों में यह विभाजन अद्वितीय है क्योंकि इसके फलस्वरूप सन्ततियों में पीढ़ी दर पीढ़ी गुणसूत्रों की संख्या बराबर रहती है। जिससे उस जीव के विशिष्ट जैविक लक्षण उस जीव के वंशजों में वंशागत होते रहते हैं। उदाहरणस्वरूप मानव की कोशिकाओं में 46 गुणसूत्र उपस्थित होते हैं। इन गुणसूत्रों पर असंख्यों जीन रेखीय क्रम में स्थित होते हैं जो मानव के समस्त जैविक लक्षणों के लिए उत्तरदायी होते हैं। सन्तानों की कोशिकाओं में भी गुणसूत्रों एवं जीनों की संख्या माता पिता के समान हीं रहती है क्योंकि इनके जनदों में स्थित जनन कोशाओं का विभाजन इसी के द्वारा होता है जिसके फलस्वरूप इनकी सन्तति कोशिकाओं (युग्मकों) में गुणसूत्रों एवं जीनों की संख्या आधी हो जाती है अर्थात् एक अगुणित सन्तति कोशिका के अन्तर्गत केवल 23 गुणसूत्र रह जाते हैं। वे (पिता

युग्मक के 23 एवं माता युग्मक के 23 गुणसूत्र) जब परस्पर संलयित अथवा निषेचित होते है तो पुनः युग्मनज (Zygote) में गुणसूत्रों की संख्या 46 हो जाती है। इस प्रकार मानवजाति के जैविक लक्षण अपने वंशजों में चिरन्तन बने रहते है। यदि यह प्रक्रिया घटित न होती तो सन्ततियों की कोशिकाओं में गुणसूत्रों की संख्या माता पिता के दो गुनी हो जाती। अतः यह विभाजन गुणसूत्रों की संख्या वृद्धि को रोकता है तथा मानव के जैविक लक्षणों को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में पारगमित करता है।

इस विभाजन के फलस्वरूप जीनों के नये-नये संयोग उत्पन्न होते है। क्रासिंग ओवर एवं पुनः संयोजन प्रक्रियाओं के फलस्वरूप गुणसूत्रों के क्रोमैटिडों में विनिमय एवं विस्थापन होता है। इससे माता एवं पिता के जैविक लक्षणों के परिष्कृत रूप अर्थात् नये संयोग घटित होते हैं। फलस्वरूप सूक्ष्म विभेद उत्पन्न होते हैं जो मानव जाति के सूक्ष्म उद्विकास का नेतृत्व करते हैं।

माइटॉसिस एवं मीयॉसिस विभाजनों में भेद
(Distinction Between Mitosis & Meiosis Division)

पूर्वोक्त वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि ये दोनों कोशा विभाजन की प्रक्रियायें विविधतायें प्रदर्शित करती हैं। इसके बावजूद कि दोनों ही कोशिका विभाजन की जटिल प्रक्रियायें है, दोनों ही कई अवस्थाओं में पूर्ण होती हैं, इनकी प्रमुख विविधतायें निम्न हैं:

1. माइटॉसिस विभाजन समस्त दैहिक कोशिकाओं में घटित होता है जबकि मीयॉसिस विभाजन जनन कोशिकाओं में होता है।
2. प्रथम विभाजन प्रक्रिया में गुणसूत्रों की संख्या द्विगुणित (deploid) हो करके दो सन्तति कोशाओं में इनकी संख्या समान रहती है जबकि द्वितीय में, न्यूनकारी (Deduction) विभाजन होता है जिससे सन्तति कोशाओं में गुणसूत्रों की संख्या अगुणित (Haploid) होकर पूर्वज कोशाओं की तुलना में आधी हो जाती है।
3. विभाजन की सम्पूर्ण क्रिया, प्रथम विभाजन प्रक्रिया में, क्रमवार सम्पन्न होती है जबकि द्वितीय प्रक्रिया और अधिक जटिल है क्योंकि ये दो चरणों- मीयॉसिस I एवं मीयॉसिस II में सम्पन्न होती है। पहले चरण में न्यूनकारी विभाजन होता है तथा दूसरे चरण में समसूत्री विभाजन होता है।

4. पूर्व विभाजन प्रक्रिया मुख्यतः चार अवस्थाओं में पूर्ण होती है जब कि पश्च विभाजन (मीयॉसिस) आठ अवस्थाओं में घटित होती है।

माइटासिस	मीयासिस
पूर्वावस्था	पूर्वावस्था I पूर्वावस्था II
मध्यावस्था	मध्यावस्था I मध्यावस्था II
पश्चावस्था	पश्चावस्था I पश्चावस्था II
अन्त्यावस्था	अन्त्यावस्था I अन्त्यावस्था II

5. माइटॉसिस में पूर्वावस्था अपेक्षाकृत अल्प अवधि में घटित हो जाता है तथा इनमें उपावस्थायें नहीं पायी जाती, जबकि दूसरी ओर मीयॉसिस एक लम्बी अवधि वाली अवस्था है जो स्त्रियां में तो कई वर्षों तक चलती है। यह पांच उपावस्थाओं- लेप्टोटीन, जाइगोटीन, पैकीटीन, डिप्लोटीन एवं डाइकाइनेसिस में पूर्ण होती है।

6. माइटॉसिस में पूर्वावस्था के प्रारम्भ में ही गुणसूत्रों के क्रोमैटिड पतले धागों के समान दृष्टिगत होने लगते हैं जबकि मीयॉसिस में यह प्राफेज I के प्रारम्भ में दिखाई नहीं पड़ते।

7. प्रथम विभाजन प्रक्रिया के पूर्वावस्था में गुणसूत्र युग्मज या जोड़े नहीं बनाते, जबकि मीयासिस में समजात गुणसूत्र निकटस्थ हो करके युग्म (Bivalent) बना लेते हैं।

8. क्रोमैटिड के मध्य विनिमय (Crossing Over) माइटॉसिस में घटित नहीं होता जबकि मीयॉसिस में यह प्राफेज-I की पैकीटनी उपावस्था की एक प्रमुख घटना है।

9. माइटासिस की पूर्वावस्था में 'साइनाप्सिस' (Synopsis) की स्थिति नहीं पायी जाती जबकि मीयॉसिस में पूर्वावस्था I के जाइगोटीन उपावस्था में घटित होती है।

10. माइटॉसिस में 'कियाज्मैटा' स्थल इसकी किसी भी अवस्था में नहीं दिखता और न ही इसका उपान्तीकरण (Terminalization) होता जबकि दूसरी ओर, मीयॉसिस की पूर्वावस्था I के डिप्लोटीन उपावस्था में 'कियाज्माटा' दृष्टिगोचर होता है जो कालान्तर में उपान्तीकृत (Terminalized) हो जाते हैं।

11. माइटॉसिस की मध्यावस्था में दो क्रोमैटिड होते हैं जिससे गुणसूत्र द्वयी होते है जबकि मीयॉसिस की मध्यावस्था I में चार क्रोमैटिड विकसित होते है जिन्हें टेट्राड (Tetrod) कहते हैं।

12. प्रथम कोशिका विभाजन की मध्यावस्था में सेंट्रोमियर इक्वेटर पर स्थित होते हैं और भुजायें बाहर की ओर होती है जबकि द्वितीय कोशिका विभाजन अर्थात् मीयॉसिस की मध्यावस्था I में सेंट्रोमियर ध्रुवों की ओर उन्मुख होते हैं तथा क्रोमैटिड इक्वेटर पर होते हैं।

13. माइटॉसिस की इस अवस्था में सेंट्रोमियर दो खण्डों में विभक्त हो करके द्वयी (दो क्रोमैटिड) पृथक हो जाते हैं जबकि मीयॉसिस में इस समय समजात गुणसूत्र पृथक होते हैं तथा सेंट्रोमियर विखण्डित नहीं होते।

14. माइटॉसिस की पश्चावस्था में गुणसूत्र एकल होते हैं जब कि मीयॉसिस में इस समय (पश्चावस्था I) युगल होते हैं।

15. माइटॉसिस की उक्त अवस्था में लम्बे तथा कुछ पतले होते है जबकि इस समय मीयॉसिस में छोटे तथा अपेक्षाकृत स्थूलित होते हैं।

16. माइटॉसिस विभाजन में 'अन्त्यावस्था' अवश्य घटित होती हैं जबकि मीयॉसिस में यह अवस्था (अन्त्यावस्था I) का घटित होना निश्चित नहीं है क्योंकि कभी-2 इस प्रकार के विभाजन में यह अवस्था घटित नहीं होती तथा मध्यावस्था I के तुरन्त बाद पूर्वावस्था II आरम्भ हो जाती है।

17. माइटॉसिस विभाजन के फलस्वरूप दो सन्तति कोशिकायें उत्पन्न होतीं हैं जबकि मीयॉसिस के घटने से चार संतति कोशिकायें बनती हैं।

18. माइटॉसिस में सन्तति कोशायें जनक कोशाओं के लगभग समान होती हैं जबकि मीयॉसिस की प्रक्रिया से उत्पन्न सन्तति कोशायें हूबहू एक जैसी नहीं होती अर्थात् गुणों में भिन्न होती हैं तथा इनमें गुणसूत्रों की संख्या भी जनकों (माता-पिता) की जनन कोशिकाओं की आधी रहती है।

19. माइटॉसिस विभाजन शारीरिक संबृद्धि एवं विकास की आधारभूत भौतिक आनुवंशिक प्रक्रिया है लेकिन मीयॉसिस मानव जाति के वंश-वृद्धि की रेखीय आनुवंशिक प्रक्रिया है।

20. माइटॉसिस के फलस्वरूप शरीर की सभी कोशिकाओं में गुणसूत्रों की संख्या समान रहती है जबकि मीयॉसिस से माता-पिता के सन्तानों की सभी कोशिकाओं में गुणसूत्रों की संख्या समान रहती है।

मानव में युग्मकजनन
(Gametogenesis)

मानव में जनदों की जनन इपीथीलियम की द्विगुणित कोशिकाओं से अगुणित जनन कोशिकाओं अर्थात् युग्मक के परिपक्वन के 'युग्मक जनन' (Gametogenesis) कहते है। यह प्रक्रिया जब पुरुषों में घटित होती है तो उसे 'शुक्र जनन' (Spermatogenesis) कहते हैं। इसके फलस्वरूप पुरूषों में युग्मक शुक्राणु (Spermatozoon or sperms) उत्पन्न होते हैं। दूसरी ओर जब यह जनन प्रक्रिया स्त्रियों में घटित होती है तो इसे 'अण्डजनन' (Oogenesis) कहते है। इस प्रक्रिया के सम्पन्न होने से स्त्री-युग्मक-अण्डाणु (Ovum) बनता है। इन दोनों जनन प्रक्रियाओं का वर्णन निम्न है:

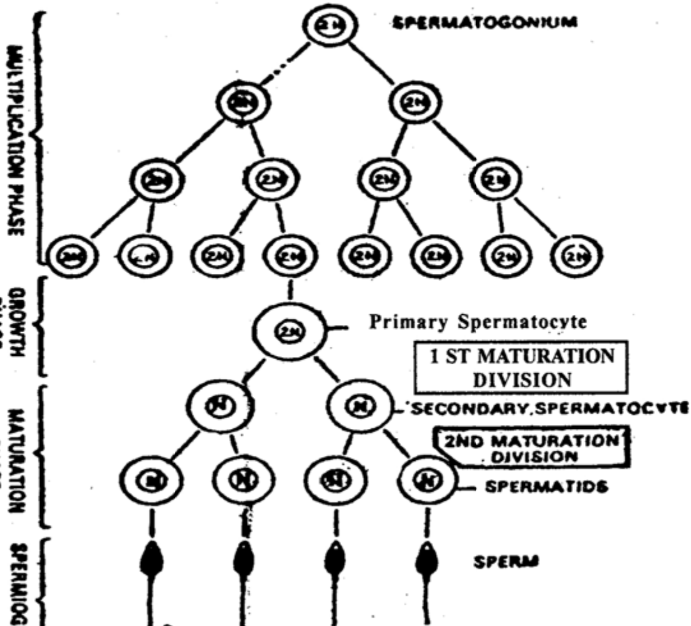
1. शुक्रजनन
(Spermatogenesis)

मनुष्यों में पुरूषों के वृषण कोश (Testes) जनन कोशिकाओं की उत्पत्ति के लिए उत्तरदायी होते हैं। ये जनन कोशिकायें 'जनन इपीथीलियम' (germinal epithilium) के नाम से पुकारी जाती हैं यह जनन इपीथीलियम कोशिकायें मानव वृषण के शुक्रजनक नलिकाओं (Semiferous tubules) में स्थिति होती हैं जो अन्त में शुक्राणु के रूप में विकसित होती है। इस प्रक्रिया की प्रमुख घटनायें निम्न रेखा चित्र में क्रमबद्ध किया गया है:

स्पर्मैटोगोनिया → प्राथमिक स्पर्मैटोसाइट → द्वितीयक स्पर्मैटोसाइट
(Spermatogonia) (Primary Spermatocyte) (Secondary Spermatocyte)
↑ ↓
जनन इपीथिलियम (Germinal Epithelium) स्पर्मैटिड्स (Spermatids)
↓
शुक्राणु (Spermatozoon)

उक्त घटनायें मुख्यतः दो प्रावस्थाओं में सम्पन्न होती हैं:

(i) संवृद्धि प्रावस्था (ii) परिपक्वन प्रावस्था



चित्रः 15 शुक्रजनन (Spermatogenesis)

(i) संबृद्धि प्रावस्था (Growth Phase)

इस प्रावस्था में प्राथमिक स्पर्मेटासाइटों का विकास होता है। स्पर्मेटोसाइटों का विकास निम्न दो अवस्थाओं में पूर्ण हो पाता है- पूर्व-सृवद्धि काल (Pre–growth Period) एवं पश्च-संवृद्धि काल (Post growth Period):

पूर्व संवृद्धि काल

यह अवस्था शुक्र जनन की प्रारम्भिक अवस्था है। इस समय सर्वप्रथम वृषणों की शुक्रजनक नलिकाओं (Semiferous Tubules) की इपीथीलियम कोशिका आकार में वृद्धि करती है। ये कोशिकायें प्राथमिक जनन कोशिकायें हैं जो आकार एवं संरचना में अन्य दैहिक कोशिकाओं के समान होती है। इनमें गुणसूत्रों की संख्या द्विगुणित अर्थात् 46 होती है। यह प्राथमिक जनन कोशिकाये मानव जाति के लक्षणों को ही व्यक्त करती हैं। जब इनमें शुक्र जनन की प्रक्रिया आरम्भ होती हैं तो इन

कोशिकाओं का सूत्री विभाजन (Mitotic Cell division) होता है जिससे ये विकसित कोशिकायें द्विगुणित हो जाती है। इनका द्विगुणन कई बार होता है। अन्ततः यही कोशिकायें विभाजित होकर 'शुक्रजनन कोशिका' (Spermatogonia) में विकसित होती हैं। इनमें गुणसूत्र द्विगुणित (46) होते हैं।

पश्च संवृद्धि काल

इस काल में शुक्रजनन कोशिका तेजी से अपने आकार का वर्धन सूत्री विभाजन एवं पोषक पदार्थो के संग्रहण से करती हैं जब इन कोशिकाओं का आकार और अधिक वृद्धि को प्राप्त कर लेता है तो इन्हे प्राथमिक 'स्पर्मैटोसाइट' कहते है। ये प्राथमिक स्पर्मैटोसाइट द्विगुणन विभाजन एवं कोशीय पदार्थों के संचयन पूर्ण रूप से विकसित होते हैं। शुक्रजनन की इस अवस्था तक सूत्री विभाजन की प्रक्रिया घटित होती है। इन प्रत्येक प्राथमिक स्पर्मैटोसाइट में 44 आटोसोम अथवा अलिंग गुणसूत्र एवं X तथा Y दो लिंग गुणसूत्र (Sex Chromosomes) होते हैं।

(ii) परिपक्वन प्रावस्था (Muturation Phase)

यह प्रावस्था अपेक्षाकृत जटिल प्रावस्था है। इस चरण में शुक्राणु परिपक्व होते हैं। इस प्रावस्था में कोशिकाओं का न्यूनकारी विभाजन (reduction division) होता है। यह प्रावस्था भी दो उप-अवस्थाओं में पूर्ण होती हैं : पूर्व परिपक्वन (Pre-maturation) एवं पश्च-परिपक्वन (Post–maturation).

पूर्व परिपक्वन

पूर्व परिपक्वन काल में प्राथमिक स्पर्मैटोसाइटों (Primary Spermatocytes) का अर्धसूत्री विभाजन होता है। इस काल में सर्वप्रथम एक 'प्राथमिक स्पर्मैटोसाइट' का न्यूनकारी विभाजन होने से इसकी दो अगुणित कोशिकायें (Haploid Cells) उत्पन्न होती हैं। इनमें 22 अलिंग गुणसूत्र एवं एक लिंग गुणसूत्र (X अथवा Y) होता है। इस प्रकार इन कोशिकाओं में प्राथमिक स्पर्मैटोसाइट की अपेक्षा गुणसूत्रों की संख्या आधी रह जाती है। इन अगुणित सन्तति जनन कोशिकाओं को द्वितीयक 'स्पर्मैटोसाइट' (Secondary Spermatocyte) कहते हैं। अन्त में, इन द्वितीयक स्पर्मैटोसाइटों का पुनः सूत्री विभाजन (Mitotic division) होता है जिससे चार अगुणित जनन कोशिकाओं की उत्पत्ति होती है। इन चारों सन्तति जनन कोशिकाओं अर्थात् युग्मकों (gametes) में 22 अलिंग सूत्र एवं एक लिंग सूत्र (X अथवा Y) होते हैं। इन चारों अगुणित जनन कोशिकाओं को 'स्पर्मैटिड्स' (Spermatids) कहा जाता है।

पश्च-परिपक्वन

इस अवस्था में स्पर्मैटिडों से शुक्राणुओं की उत्पत्ति होती है। ये चारों स्पर्मैटिडो के आकार गोल अथवा अण्डाकार अथवा वृत्ताकार होते हैं। इन्हीं गोल कोशिकाओं से शुक्राणु उत्पन्न होते हैं। प्रत्येक शुक्राणु में निम्न तीन भाग होते हैं:

(i) सिर (Head)

(ii) मध्यभाग (Middle piece)

(iii) पूंछ (Tail)

आकार में सिर लगभग त्रिकोणात्मक होता है जो कोशिका के केन्द्रक से बना हुआ होता है। शुक्राणु का यह भाग मार्मिक एवं निर्णायक भाग है। यह भाग ही 22 अलिंग एवं एक लिंग (X अथवा Y) गुणसूत्रों को रखता है जो स्त्री युग्मक-अण्डाणु से संयोजित ही करके एक युग्मनज बनाता है। इसका आकार लगभग भाले के समान होता है लेकिन यदि सामने से देखें तो यह लगभग गोल प्रतीत होता है। मध्य भाग (Middle piece) कोशिका द्रव्य के संट्रियोल से बनता है जिसमें तन्तुओं का गुच्छा होता है। ये पतलीं नलिका के सदृश होते हैं। सिर से जुड़ी हुई यह नलिका दूसरी नलिका से अधिक मोटी होती है। कोशिका द्रव्य के अन्य भाग से इसकी पूंछ बनती है। स्टर्न (1961) के अनुसार तीनों भागों की लम्बाई तथा मोटाई निम्न है:

भाग (Parts)	लम्बाई (Length)	मोटाई (Thickness)
सिर (Head)	3.5 µ	2.3 µ सामने से (Face View)
	1.8 µ	पार्श्व से (Side View)
मध्यभाग	3.6 µ	1 µ
पूंछ (Tail)	30–50µ	1µ से कम

अण्डाणु से मिलने (fusion) के समय उक्त तीनों भाग में से केवल सिर ही प्रविष्ट होता है। शेष भाग बाहर ही नष्ट हो जाते हैं।

एक 'शुक्राणु' अथवा 'स्पर्मैटोजून' (Sperm or Spermatozoon) एक स्पर्मैटिड से आठ क्रमिक उपावस्थाओं के पश्चात् विकसित होते हैं। जो निम्न हैं:

1. प्रथम अवस्था में स्पर्मैटिड कोशिका का द्रव्य संकुचित होता है। सेट्रियाल दो भागों में दिखाई पड़ते हैं। केन्द्रक के गुणसूत्र पतले एवं लम्बे होते हैं। इनकी

केन्द्रिकायें अधिक संघनित हो जाती हैं। इस अवस्था में भी यह कोशिका आकार में अण्डे के सदृश होती है।

2. द्वितीय अवस्था में स्पर्मेटिड का आकार लगभग चौकोर हो जाता है। सेंट्रियोल के दोनों भाग कोशिका कला के पास स्थित होते हैं। समीपस्थ सेंट्रियाल (Proximal Centriole) कोशिका द्रव्य के किनारे तथा दूरस्थ सेंट्रियाल (Terminal/ Distal Centriole) कोशिका कला पर स्थित होता हैं। केन्द्रक सेंट्रियाल की ओर अधिक बढ़ने से हल्का लम्बा हो जाता है।

3. तृतीय अवस्था में केन्द्रक के पानी की अतिरिक्त मात्रा का क्षरण होने से यह संघनित होकर गहरे रंग का हो जाता है। इसका आयतन संकुचित हो जाता है तथा लम्बाई में वृद्धि होती है। चौड़ाई और कम हो जाती है। यह कोशिका द्रव्य के सेंट्रियाल के विरोधी किनारे पर आ जाता है। सेंट्रियालों से जुड़ी हुई पूंछ और अधिक स्पष्ट हो जाती है। कोशिका कला के आर पार होती है।

4. चतुर्थ अवस्था में केन्द्रक के अग्र भाग पर एक्रोसोम (Acrosome) गोल्गी काय (Golgi Complex) के द्वारा उत्पन्न किये जाते हैं। इन एक्रोसोमों में लाइटिक उत्प्रेरण (Lytic Enzyme) होते हैं। जो भेदन क्षमता अधिक रखते हैं। इस अवस्था में केन्द्रक और अधिक संघनित हो करके भाले (Spear) के सदृश हो जाता है। इसके पश्चभाग पर स्थित सेंट्रियाल मध्य भाग को माइट्रोकांड्रिया की सहायता से बनाते हैं। मध्य भाग से जुड़ी एक लम्बी पूँछ विकसित हो जाती है। कोशिका द्रव्य केन्द्रक के पश्च भाग में स्थित होता है जिसके अनावश्यक पानी का क्षरण आरम्भ हो जाता है।

5. पांचवी अवस्था में केन्द्रक संकुचित होता है जिससे इसकी लम्बाई एवं मोटाई और अधिक कम हो जाती है। शुक्राणु का सिर स्पष्ट होने लगता है। कोशिका द्रव्य लम्बवत हो जाता है जो केन्द्रक के पश्चभाग पर स्थित सेंट्रियाल एवं पूंछ के पार्श्व में स्थित हो जाता है। इस समय स्पर्मेटिड कोशिका नीम की पत्ती के सदृश प्रतीत होती है।

6. केन्द्रक लम्बाई में वृद्धि करके एक भाले (Spear Head) के सदृश हो जाता है। लम्बवत् कोशिका द्रव्य क्षरित होने लगती है। पूंछ का विकास और तेजी से होता है।

7. सातवीं अवस्था में कोशिका द्रव्य पूंछ के साथ-साथ और अधिक लम्बी हो जाती है जो केन्द्रक के पश्चभाग पर पाया जाता है। इस अवस्था में यह द्रव्य पूंछ की वृद्धि में अधिक सहायता करता है।

8. अन्तिम अवस्था में कोशिका कला खण्डित हो जाती है। कोशिका द्रव्य पूंछ की लम्बाई के लिए आवश्यक पदार्थों को प्रदान करके पूर्णतः नष्ट हो जाता है। अन्ततः स्पर्मैटिड तीन भागों- सिर (Head), मध्य भाग (middle piece) एवं पूंछ (Tail) में विलीन हो जाता है जिसे शुक्राणु कहते हैं। इस प्रकार स्पर्मैटोगोनिया से एक परिपक्व शुक्राणु के मध्य की मात्रा 72 दिनों में पूर्ण हाती है। मानव में प्रतिदिन लाखों शुक्राणु परिपक्व होते हैं।

2. अण्डजनन
(Oogenesis)

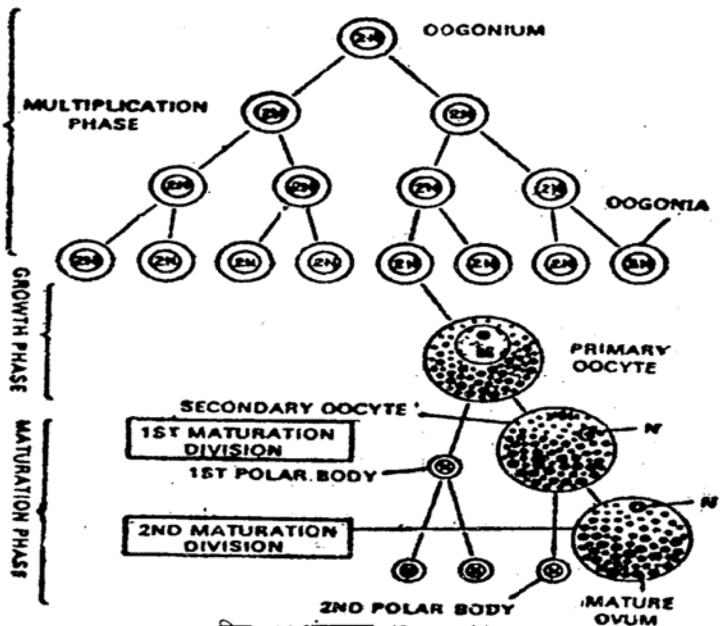
स्त्रियों के अण्डाशय (Ovary) से अण्डाणु (Ovum) उत्पन्न होता है। अण्डाशय अनेकों जनन इपीथीलियम कोशाओं से निर्मित होता है। इन्हीं जनन इपीथीलियम कोशिकाओं से स्त्री युग्मक अण्डाणु के निर्माण को 'अण्ड जनन' (Oogenesis) कहते है। इस प्रक्रिया में निम्नलिखित प्रमुख घटनायें क्रमवार घटित होती हैं जिन्हें रेखाचित्र में दर्शाया गया है:

प्राथमिक अण्डक (Primary Oocyte)	→	प्राथमिक अण्डक
↑		↓
ऊगानियम (Oogonium)		द्वितीयक अण्डक (Secondary Oocyte)
↑		↓
जनन इपीथीलियम (Germinal Epithilium)		अण्डाणु (Ovum)

इस प्रक्रिया की उक्त प्रमुख घटनायें निम्न दो प्रावस्थाओं में घटित होती हैं:

(i) संवृद्धि काल (Growth Period)

(ii) परिपक्वन काल (Maturation Period)



चित्रः 16 अंडजनन (Oogenesis)

(i) संवृद्धि काल (Growth Period)

इस प्रावस्था में अण्डाशय की इपीथीलियम कोशिका प्राथमिक अण्डक में विकसित होती है। इन जनन कोशिकाओं का विकास समसूत्री विभाजन से होता है। इस प्रावस्था को दो उप-अवस्थाओं में विभक्त किया जा सकता है- पूर्व-संवृद्धि काल (Pre–growth Period) एवं पश्च संवृद्धि काल (Post–growth period)।

पूर्व-संवृद्धि काल

यह काल अण्डजनन की प्रारम्भिक अवस्था है। इस काल में सर्वप्रथम अण्डाशय, की प्रत्येक डिम्ब कोशिका (Egg Cell) पुटक कोशिकाओं (Follicular Cell) की भित्ति से घिरी रहती है। प्रत्येक पुटक जिसमें एक कोशिका निहित होती है, उसे अण्डजननी (Oogonium) कहते हैं। मानव में जन्म के समय प्रत्येक अण्डाशय में 150–500 हजार अण्डजननी उपस्थित रहती हैं। प्रत्येक कोशिका समूह से घिरी रहती है जो एक प्राथमिक पुटक (Follicle) बनाती है। यह यौवनागम के

पश्चात प्रति 24 दिनों पर क्रमशः दोनों अण्डाशयों में विकसित होती है। इन कोशिकाओं की रचना शरीर की अन्य दैहिक कोशिकाओं के पूर्णतः समान नहीं होती है। लेकिन इनमें गुणसूत्रों की संख्या 46 होती है जिसमें 44 अलिंग सूत्री एवं दो लिंग सूत्री (XX) गुणसूत्र होते हैं। इन कोशिकाओं (अण्डजननी) की वृद्धि समसूत्री विभाजन के फलस्वरूप होता है। ये कोशिकायें विभाजित हो करके अन्त में छोटे-छोटे समूह बना लेते है। प्राथमिक जनन कोशिका में इपीथीलियम (epithelium) के इन संमूहों को अण्डक (Oocyte) कहते है। चूंकि ये समूह अण्डक के प्रारम्भिक रूप है इसीलिये इनको प्राथमिक अण्डक (Primary Oocyte) कहते हैं।

पश्च संवृद्धि काल

इस काल में प्राथमिक अण्डक की पुनः संवृद्धि होती है। ज्ञातव्य हो यह प्राथमिक अण्डक कोशिका में 46 गुणसूत्र होते है जिनमें 44 लिंगसूत्री एवं दो लिंगसूत्री (XX) हैं। इन कोशिकाओं की संवृद्धि कोशिकीय पदार्थों से होती है जो कोशिका बाहरी पर्यावरण से प्राप्त करती है। यह संवृद्धि अवस्था काफी लम्बी होती है जिसमें कुछ दिनों से कुछ वर्षों तक का समय लगता है। अन्त में यह प्राथमिक अण्डक के कोशिका द्रव्यों का आयतन अपेक्षाकृत बड़ा हो जाता है जिससे यह प्रारम्भिक अण्डक की तुलना में कुछ बड़ी दिखती है।

(ii) परिपक्वन काल (Maturation Period)

इस निर्णायक काल में प्राथमिक अण्डक एक अण्डाणु का रूप लेता है। यह प्राथमिक अण्डक का परिपक्वन न्यूनकारी कोशिका मानते हुए दो अवस्थाओं में पूर्ण होता है। पूर्व एवं पश्च परिपक्वन काल (Pre and Post Maturation)।

पूर्व-परिपक्वन काल

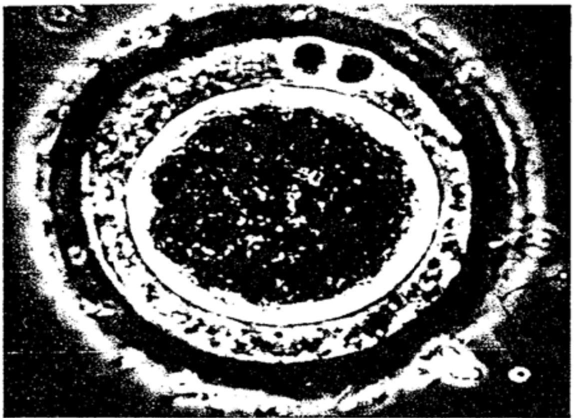
यह अण्डजनन प्रक्रिया में लम्बी परिपक्वन अवस्था है। इस अवस्था में 'प्राथमिक अण्डक' अर्धसूत्री कोशिका विभाजन के प्रथम चरण अर्थात् मीयॉसिस-I में प्रवेश करता है। यह प्राथमिक अण्डक मीयॉसिस-I की पूर्वावस्था-I में यौवनागम (Puberty) तक रहता है। इसके पश्चात् प्रत्येक माह में इसका न्यूनकारी विभाजन होता है। इस प्राथमिक अण्डक कोशिका का शेष परिपक्वन विभाजन अण्डाशय में नहीं होता। यह प्राथमिक अण्डक प्रत्येक माह अण्डाशय से विर्मुक्त हो जाता है।

इसका प्रथम अर्धसूत्री विभाजन 'ओवीडक्ट' (Oviduct) में होता है। यही पर यह दो अगुणित (Haploid) कोशिकाओं में विभाजित हो जाता है। यद्यपि इस विभाजन से कोशिका द्रव्य बराबर-बराबर विभाजित नहीं होता है।

वह लघु कोशिका जिसमें कोशिका द्रव्य की मात्रा कम होती है लेकिन गुणसूत्रों की आधी संख्या रहती है, उसे प्रथम ध्रुव काय (First Polar body) कहते हैं। दूसरी बड़ी कोशिका जिसमें कोशिका द्रव्य की मात्रा अधिक होती है तथा गुणसूत्रों की संख्या आधी (22 अलिंगसूत्री तथा 1 लिंग सूत्री - X) होती है, इसे **द्वितीयक अण्डक** (Secondary Oocyte) कहते हैं। इस प्रकार प्राथमिक अण्डक अपेक्षाकृत एक बड़े आकार वाली अगुणित कोशिका- **द्वितीयक अण्डक** विकसित करता है।

पश्च-परिपक्वन काल

इस काल में द्वितीयक अण्डक (Oocyte) एक अण्डाणु का रूप धारण करता है। द्वितीयक अण्डक का मीयॉसिस II विभाजन तुरन्त आरम्भ होता है। लेकिन यह विभाजन मध्यावस्था में पंहुचते ही स्थिर हो जाता है। विभाजन की यह अवस्था तब तक पूर्ण नहीं होती जब तक यह अण्डक निषेचित न हो जाये। यदि इसका निषेचन (Fertilization) पूर्ण हो जाता है तो मीयॉसिस II की शेष अवस्थायें शीघ्रता से पूर्ण हो जाती हैं। इसके फलस्वरूप एक परिपक्व अण्डाणु एवं द्वितीय ध्रुव काय उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार अनुसंधानों से यह ज्ञात हुआ है कि जब शुक्राणु अण्डाणु नलिका (Oviduct) में स्थित द्वितीयक अण्डक में पूर्णतः प्रवेश कर लेता है, उसके पश्चात् ही मीयासिस II विभाजन की शेष अवस्थायें मध्यावस्था II पश्चावस्था II एवं अन्त्यावस्था II घटित होती है, अन्यथा ये अघटित रहती हैं तथा यह अण्डक माहवारी चक्र में नष्ट हो जाता है। अन्त्यावस्था II के समय यह निषेचित अण्डक दो भागों में विभजित हो जाता है। इस अण्डाणु में कोशिका द्रव्य की मात्रा अधिक तथा दो केन्द्रक (शुक्राणु केन्द्रक + अण्डाणु केन्द्रक) स्थित होते हैं। दूसरा, ध्रुव काय जो आकार में लघु लेकिन गुणसूत्रों की संख्या द्वितीयक अण्डक के समान ही होती है द्विगुणित होकर नष्ट हो जाता है। अन्त्यावस्था II के अन्तिम क्षणों में दोनों केन्द्रकों में डीएनए की अनुलिपियाँ बनती है। दोनों केन्द्रक एक दूसरे की ओर बढने से परस्पर संयुक्त हो जाते है जिससे पूर्ण द्विगुणित गुणसूत्र साकार हो उठते है।



चित्रः 17 मानव अण्डाणु शुक्रणुः फोटो डा. एल. वी. शटल्स

इसके पश्चात् निषेचित अण्डाणु तुरन्त समसूत्री विभाजन की पूर्वावस्था में प्रविष्ट करता है। इस समय यह युग्मनज (Zygote) फैलोपियन नलिका (FallopianTube) में प्रवेश करती है जो चार पांच दिनों में गर्भाशय (Uterus) में पहुंचता है। यहाँ पर यह गर्भभित्ति में चिपककर स्तरीकृत होने लगता है। सम्भवतः प्रथम ध्रुवकाय का भी मीयासिस II विभाजन होता है। जिससे उससे दो सन्तति ध्रुवकाय (daughter polar bodies) उत्पन्न होती है। यह सभी ध्रुवकाय अन्ततः नष्ट हो जाते हैं।

इस प्रकार अण्डजनन प्रक्रिया सिंहावलोकन करने से यह ज्ञात होता है कि इस प्रक्रिया के फलस्वरूप प्राप्त चारों युग्मक आकार एवं कार्य में समानता नहीं रखते। इनमें मात्र एक सक्षम एवं परिपक्व युग्मक-अण्डाणु (Ovum) प्राप्त होता है जब कि शेष तीन युग्मक - प्रथम तथा द्वितीय ध्रुवकाय (Polar bodies) पूर्णतः अक्षम होते हैं जो अन्ततः नष्ट हो जाते हैं। अण्डाणु में अन्य तीनों ध्रवकायों की अपेक्षा कोशिका द्रव्य की अतिरिक्त मात्रा अण्डाणु में स्थित होती है। कोशिका द्रव्य की यही मात्रा अण्डाणु के निषेचन में सहायक होती है। यह कोशिका द्रव्य युग्मनज (Zygote) के विकास एवं वृद्धि में भी सहायक होता है।

❑❑❑

4

आनुवंशिकी के रचनात्मक तथा रासायनिक आधार
(Structural & Chemical Basis of Genetics)

गुणसूत्र
(Chromosome)

इससे पूर्व उल्लेख किया गया था कि गुणसूत्र आनुवंशिक पदार्थ की स्थूल इकाई है। आनुवंशिक पदार्थ का पारिगमन पीढ़ी दर पीढ़ी ये ही करते हैं। इस आधार पर इन्हें आनुवंशिक माध्यम (Hereditary Vehicle) भी कहा जाता है। ये कोशिका के केन्द्रक (Nucleus) में स्थित होते हैं। इनकी आनुवंशिकता का सिद्धान्त 1900 में वाल्टर एस० सटन (Walter S. Sutton) ने प्रस्तुत किया था।

गुणसूत्र अलग-अलग स्पष्ट रूप से कोशिका विभाजन के दौरान दिखाई पड़ते हैं। कोशिका विभाजन की 'मध्यावस्था' में गुणसूत्र स्पष्ट रूप से तर्कु जन्तुओं के 'इक्वेटर' या भूमध्यरेखा या मध्यवृत्तीय रेखा (Equator) पर पृथक-पृथक स्थित होते हैं। इसके पूर्व ये पहले लम्बे एवं महीन धागे के रूप में होते हैं। मध्यावस्था में प्रवेश करते-करते ये छोटे, मोटे व कुण्डलित हो जाते हैं। अन्त्यावस्था में पुनः पतले धागे के सदृश हो जाते हैं तथा 'अन्तरावस्था' (Interphase) में लगभग अदृश्य हो जाते हैं। इनके इस प्रकार के आकार परिवर्तन संघनन एवं कुण्डलन के फलस्वरूप होता है, अन्यथा यह पतले एवं लम्बे धागे अथवा 'सूत्र' के समान होते हैं।

ये गुणसूत्र सभी जीव कोशिकाओं में पाये जाते हैं। लेकिन संरचनात्मक आधार पर सभी जीवों में समान गुणसूत्र नहीं होते। उदाहरणस्वरूप विषाणुओं का गुणसूत्र DNA एवं RNA के रज्जुकों अथवा सूत्रों से बना होता है। पादप विषाणुओं के गुणसूत्र RNA के अणुओं से एक सूत्र का जबकि प्राणि विषाणुओं के गुणसूत्र DNA अणुओं से दो सूत्रों (रज्जुकों) के बने होते हैं। जीवाणुओं के गुणसूत्र द्विरज्जुकी DNA के अणुओं के होते हैं। पादपों तथा पशुओं के गुणसूत्र भी DNA अणु के छिरज्जुओं से बने होते हैं।

प्रत्येक जाति के जीव में गुणसूत्रों की संख्या निश्चित होती है। भिन्न-भिन्न जातियों में इनकी संख्या अलग-अलग होती है। अतः वर्गीकरण विज्ञान (Taxonomy) में गुणसूत्रों की संख्या के आधार पर विभिन्न जातियों का निर्धारण करने एवं इनकी उद्विकासीय वंशावली बनाने में अत्यधिक सहायक होते हैं। प्रत्येक जीव युग्मों में गुणसूत्रों की संख्या उसकी दैहिक या कायिक कोशिकाओं में गुणसूत्रों की संख्या की तुलना में आधी होती हैं। इसीलिये युग्मको (Gametes) में गुणसूत्रों की संख्या को अगुणित (Haploid) तथा कायिक कोशिकाओं में इनकी संख्या को द्विगुणित (Diploid) कहते है। कुछ जन्तुओं में गुणसूत्रों की संख्या निम्न तालिका में दर्शायी गयी है:

जीव	द्विगुणित गुणसूत्र संख्या	जीव	द्विगुणित गुणसूत्र संख्या
एसकैरिस यूनीवैलेंस (परजीवी वर्म)	2	लोगोथ्रिक्स अवेरिकोला	62
		कैलिसिवस कयूप्रियस	46
ड्रोसाफिला मेलैनॉगैस्टर (फलमक्खी)	8	**पुरानी दुनिया के वानरः** (Cercopithecoidea)	
एम्सिटोमा (टाइगर)	28	सरकोपिथेकस मिटिस	72
सुवर	38	सरकोपिथेकस मोना	66
बुलफ्राग	26	सरकोसिबस गलेरिटस	42
मधुमक्खी	32	मकाका मुलाट्टा	42
चूहा (Mouse)	40	कोलोविनी	44
क्रेफिश	200	**होमीन्वाइडियाः**	
रहीसस वानर	42	हाइलोवैट्स	44
सिव्वाइडियाः		पांगो पिग्मियस	48
साइमरी स्यूरिया	44	पान गोरिल्ला	48
एटलिस पेनिस्कस	34	होमोसैपियंस (मानव)	46

मानव में गुणसूत्रों की द्विगुणित संख्या 1954 के पूर्व तक 48 मानी जाती रही। मानव युग्मकों की अगुणित संख्या –24 मानी जाती थी। इनमें 46 दैहिक गुणसूत्र तथा X एवं Y लिंगसूत्र माने जाते थे। लेकिन ये संख्यायें तब तक विवादों से परे नही थी। 1956 में स्वीडन के वैज्ञानिकों ने गुणसूत्र संख्या की खोज किया जो निर्विवाद रूप से आज भी सत्य है। जीवशास्त्री-तीजो एवं लेबान (Tejo & Levan) ने मृत मानवभ्रूणों के फेफड़े के ऊतकों का निरीक्षण किया। जब इन कोशिकाओं देखा गया तो इनकी संख्या स्पष्ट रूप से 46 थी। इसी वर्ष कुछ महीने पश्चात् इग्लैण्ड के फोर्ड एवं हैमर्टन (Ford and Hamerton) ने पुरुष जनदों से प्राप्त शुक्राणुओं का इलेक्ट्रान सूक्ष्मदर्शी से निरीक्षण किया। इन्होंने कई पुरुषों में गुणसूत्रों की अगुणित संख्या – 23 बताया। इन अनुसंधानों के पश्चात् भिन्न-भिन्न अंगों की कोशिकाओं का विस्तृत अध्ययन किया गया और सभी में 46 गुणसूत्र द्विगुणित रूप में पाये गये।

जापान में कोड़ानी (Kodani) ने अनेकों पुरुष रोगियों की जनन कोशिकाओं का अध्ययन करके यह बताया कि अधिकांश पुरुषों में 46 गुणसूत्र उपस्थित होते हैं। लेकिन कुछ में 48 एवं 47 हैं। लेकिन सामान्य रूप से मानव कोशिकाओं में 46 गुणसूत्र स्थित होते हैं। यह बार-बार अनेकों प्रयोगों से सिद्ध हुआ है। स्टर्न के अनुसार यह संख्या में परिवर्तन स्पष्ट रूप से त्रुटियुक्त प्रयोग विधि एवं भ्रामक विवेचना के परिणामस्वरूप होता है।

आकारिकी
(Morphology)

गुणसूत्रों के रूप एवं आकृति कोशिका विभाजन की विभिन्न अवस्थाओं में परिवर्तित होते रहते हैं। ये अति सूक्ष्मदर्शी रचनायें 1 u–30 u तक लम्बी तथा 0.2u –2u तक चौड़ी होती हैं। इनकी आकृति एवं आकारिकी प्रायः इसके सेंट्रोमियर की स्थिति पर निर्भर करती है। इनकी आकृति विभिन्न जीवों तथा विभिन्न जातियों को पहचानने में सहायक होती है।

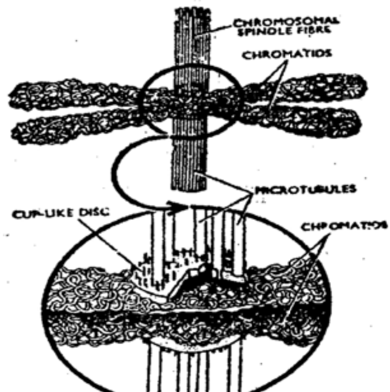
गुणसूत्र दो बराबर सर्पिलाकार अनुक्रमों में कुण्डलित 'क्रोमोनेमाटा' (ग्रीक शब्द क्रोम=रंग या वर्णक, नेमा=सूत्र या तन्तु) से बना होता है। दोनों क्रोमोनेमाटा की मोटाई लगभग 800A°होती है। दोनों क्रोमोनेमाटा इस प्रकार से कुण्डलित होते हैं जिससे वह एक ईकाई का रुप ले लेते हैं। प्रत्येक क्रोमोनेमाटा 8 माइक्रोफाइब्रिल होते है। इन सभी की मोटाई 60–100 A° होती है। ये माइक्रोफाइब्रिल डी०एन०ए०

बलयक लगभग 35–49 A° मोटे तथा प्रोटीन श्रंखला विहीन डी०एन०ए० बलयक केवल 20 A° मोटे होते हैं। संयुक्त डी०एन०ए० बलयकों के मध्य 25A° की दूरी रहती है। कोशिका विभाजन की पूर्वावस्था के प्रारम्भ में प्रत्येक क्रोमोनेमा पर असंख्यों गहरे रंग की कणिकायें होती है। इन्हें बल्बियानी तथा फिजर (Balbiani and Pffizer–1876 and 1881) ने 'क्रोमोमियर' (Chromomere) शब्द से पुकारा। संयुक्त क्रोमोमियर के मध्य अल्प रंजित भाग को "अन्तरक्रोमोमियर" कहा। एक समान क्रोमोनेमाटा पर ये कणिबायें सदैव पायी जाती हैं। इन कणिकाओं (क्रोमोमियर) में कुण्डलित होकर संघनित क्रोमैटिन पदार्थ-डी०एन०ए० स्थित होता है।

सामान्यतया गुणसूत्र क्रोंमैटिड, सेंट्रोमियर, सैटेलाइट, टीलोमियर आदि भागों से निर्मित होता है। ये सभी भाग मध्यावस्था में अधिक स्पष्ट होते हैं।

1. क्रोमैटिड (Chromatid)

सामान्यतः गुणसूत्र लम्बाई में दो समान रुप वाले भागों में विभक्त होता है। इन्हें 'क्रोमैटिड' अथवा भुजायें कहते हैं। ये दोनों सम रुपी भाग एक बिन्दु पर संयुक्त होते हैं। जिसे 'सेंट्रोमियर' (Centromere) कहते हैं। इन दोनों भुजाओं के विपरीत दो और भुजायें (क्रोमैटिड) होती हैं जो इन्हीं भुजाओं के सेंट्रोमियर से आकर सम्बद्ध होती हैं इन्हें "भगिनी-क्रोमैटिड" (Sister Chromatid) कहते हैं। कोशिका विभाजन की पश्चावस्था में ये दोनों क्रोमैटिड एक दूसरे से पृथक होकर विरोधी ध्रुओं की ओर गतिशील होकर चले जाते हैं। इसलिए अन्त्यावस्थसा में प्रत्येक ध्रुव में एक प्रति शेष रहती है जिससे एक नवीन प्रति बनती है जो सेंट्रोमियर से संयुक्त हो जाती है।



चित्रः 18 सेंट्रोमीयर की परारचना

2. सेंट्रोमियर (Centromere)

गुणसूत्र का वह भाग जहां पर क्रोमैटिड जुड़ते हैं उसे सेंट्रोमियर कहते हैं। गुणसूत्र का यह भाग संकीर्ण होता है। गुणसूत्र के इस भाग का अभिरंजन प्रायः अधिक होता है। कभी-कभी यह भाग अभिरंजित नहीं होता जिससे यह एक रिक्त भाग के रुप में दृष्टिगोचर होता है। इसकी संख्या गुणसूत्रों में प्रायः अलग अलग होती है। इसकी स्थिति के आधार पर गुणसूत्रों की पहचान करना सरल होता है। सेंट्रोमियर स्थिति के आधार पर गुणसूत्र निम्न चार प्रकार के होते हैं:

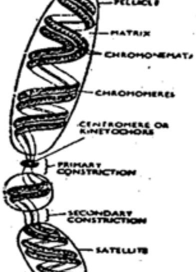
(i) मध्यकेन्द्री (Metacentric)
(ii) उपमध्यकेन्द्री (Submetacentric)
(iii) अग्रकेन्द्री (Acrocentric)
(iv) अन्तःकेन्द्री (Telocentric)

मध्यकेन्द्री : मध्यकेन्द्री उन गुणसूत्रों को कहते हैं जिनमें दोनों भुजाओं (क्रोमैटिड) की लम्बाई समान होती है तथा संन्ट्रोमियर गुणसूत्र के मध्य में स्थित होता है।

उपमध्यकेन्द्री : उपमध्यकेन्द्री वे गुणसूत्र है जिनमें दोनों भुजायें असमान होती हैं तथा सेन्ट्रोमियर गुणसूत्र के ठीक मध्य से कुछ हटा हुआ स्थित होता है।

अग्रकेन्द्री : अग्रकेन्द्री गुणसूत्र में एक भुजा अपेक्षाकृत अत्यन्त छोटी तथा दूसरी भुजा बड़ी होती है। सेंट्रोमियर गुणसूत्र के एक छोर (Terminus) के निकट स्थित होता है।

अन्तःकेन्द्री : अन्तःकेन्द्री गुणसूत्र वे हैं जिनमें केवल एक ही भुजा पायी जाती है। सेंट्रोमियर गुणसूत्र की भुजा के सिरे या छोर पर स्थित होता है।



चित्रः 19 समसूत्री विभाजन की ऐनाफेज में प्रारूपी दैहिक गुणसूत्र का चित्रीय निरूपण
(Structure of a typical somatic chromosome at anaphanse in mitosis)

सामान्यतया सेन्ट्रोमियर गुणसूत्र का एक स्थायी भाग है। प्रत्येक गुणसूत्र में एक या दो सेन्ट्रोमियर स्थित होते हैं। लेकिन यह स्थित विविधतापूर्ण है। गुणसूत्रों में कभी-कभी सेंट्रोमियर एक से अधिक होते हैं। सेंट्रोमियर की संख्या के आधार पर भी गुणसूत्र निम्न चार प्रकार के दृष्टिगोचर होते हैं :

(i) एककेन्द्री (Monocentric)

(ii) द्विकेन्द्री (Dicentric)

(iii) बहुकेन्द्री (Polycentric)

(iv) अकेन्द्री (Acentric)

एक केन्द्री गुणसूत्रों में एक सेंट्रोमियर, द्विकेन्द्री में दो, बहुकेन्द्री में दो से अधिक तथा अकेन्द्री गुणसूत्रों में सेन्ट्रोमियर पूर्णतः अनुपस्थित होता है। अकेन्द्रित गुणसूत्र अस्थायी होते हैं जो प्रायः दूसरे गुणसूत्रों के टूटे सिरों से सम्बद्ध हो जाते हैं।

3. द्वितीयक संकीर्णन (Secondary Constriction)

इसे "न्यूक्लियोलर संगठक" (Nucleoar Organiser) भी कहा जाता है। सेंट्रोमियर जिस भाग पर स्थित होता है, उसे प्राथमिक संकीर्णक भी कहते हैं। सामान्यतया गुणसूत्रों में प्राथमिक संकीर्णक पाया जाता है लेकिन कुछ गुणसूत्रों में प्राथमिक संक़ीर्णक के अतिरिक्त इनकी एक या दोनो भुजाओं में अतिरिक्त संकीर्णक भी पाये जाते हैं। इनकी स्थित निश्चित होती है। इसलिए इनकी स्थिति से गुणसूत्र पहचान में सहायता मिलती है।

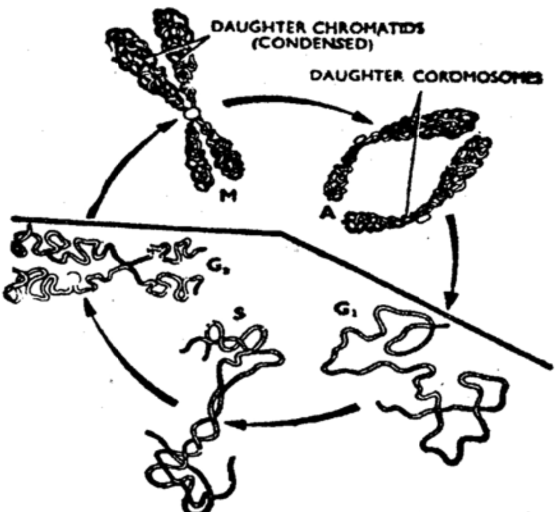
4. सैटलाइट (Satellite)

वे गुणसूत्र जिनमें द्वितीयक संकीर्णक पाये जाते हैं, उनमें संकीर्णक से आगे का भाग सैटेलाइट कहलाता है। यह आकार में गोल, लम्बा तथा घुण्डी के सदृश होता है। यह क्रोमैटिन के एक पतले तन्तु द्वारा गुणसूत्र से सम्बद्ध होता है। जिन गुणसूत्रों में यह भाग पाया जाता है उन्हें SAT गुणसूत्र भी कहते है। जैसे- मानव में गुणसूत्र 13, 14, 15, 21 एवं 22 SAT गुणसूत्र हैं।

5. टीलोमियर (Telomere)

ये गुणसूत्र के वे भाग हैं जो उनके दानों सिरे पर स्थित होते हैं। सामान्यतया ये स्थायी रूप से पाये जाते हैं तथा दूसरे गुणसूत्रों के टीलोमियर या अन्तः खण्डों

से संयुक्त नहीं होते हैं। इससे गुणसूत्र अन्य गुणसूत्र अन्य गुणसूत्र से संलग्न नहीं होता तथा इसका संगठनात्मक स्थायित्व बना रहता है। लेकिन गुणसूत्र का टूटा हुआ भाग दूसरे गुणसूत्र के खण्डित भाग से सरलतापूर्वक संलग्न हो जाता है।



चित्रः 20 कोशिका चक्र के अन्तर्गत गुणसूत्रों में होने वाले परिवर्तन

गुणसूत्रों का निर्माण करने वाला पदार्थ क्रोमैटिन (Chromatin) होता है। यह पदार्थ आकार एवं वितरण के आधार पर गुणसूत्रों में भिन्न रुप से पाया जाता है। जब कोशिका विभाजन के दौरान यह पदार्थ गहरे वर्ण का होता है तथा अन्तरावस्था में हल्के तब इस प्रकार के क्रोमैटिन से बने गुणसूत्र को "यूक्रोमैटिनिक" (Euchromatinic) कहते हैं। इसके विपरीत, जब विभाजन के समय यह पदार्थ हल्के वर्ण का तथा अन्तरावस्था में गहरे वर्ण का पाया जाये, तो इस प्रकार के पदार्थ से निर्मित गुणसूत्र को हेटरोक्रोमैटिनिक (Hetero Chromatinic) कहते हैं।

रासायनिक संरचना
(Chemical Compositon)

रासायनिक रुप से मुख्यतः गुणसूत्र डी०एन०ए०, आर०एन०ए० तथा प्रोटीन से निर्मित होते हैं। मध्यावस्था में गुणसूत्र अनुमानतया 15–20 प्रतिशत

डी०एन०ए० तथा 65–75 प्रतिशत आर०एन०ए० एवं प्रोटीन को रखते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ अवशिष्ट प्रोटीन भी होते हैं। गुणसूत्रों के रासायनिक संगठन में डीऑक्सीराइबोन्यूक्लियो प्रोटीन (Deoxyribonucleoprotein) एक प्रमुख घटक है क्योंकि यह गुणसूत्र का 90 प्रतिशत भाग होता है। इसमें 45 प्रतिशत भाग डी०एन०ए० का तथा 55 प्रतिशत भाग हिस्टोन (प्रोटीन) का है। गुणसूत्र के शेष 10 प्रतिशत भाग अवशिष्ट प्रोटीनों (Residual Proteins) का है। इन अवशिष्ट प्रोटीनों में 12–14 प्रतिशत आर०एन०ए०, 2–3 प्रतिशत डी०एन०ए० एवं 83–86 प्रतिशत अवशिष्ट प्रोटीन होते हैं। वस्तुतः प्रोटीन ही इन गुणसूत्रों का ढांचा बनाते हैं तथा इसी से न्यूक्लिक अम्ल संलग्न रहते हैं। ये डी०एन०ए० तथा प्रोटीन के अणु आयनिक या लवण (Ionic or Salt) बन्धनों (Linkages) द्वारा परस्पर श्रंखलाबद्ध रहते हैं।

डी०एन०ए० (DNA)

डीऑक्सीराइबोन्यूक्लिक एसिड (Deoxyribonuclic Acid) अर्थात् डी०एन०ए० गुणसूत्रों में पाया जाने वाला महत्वपूर्ण जीव रासायनिक यौगिक है। मानव की जैवक्रियाओं के संदेश इसी में "कोडित" या उद्धृत (coded) होते हैं जो पीढ़ी दर पीढ़ी संचरित होते रहते हैं। यह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी के मध्य एक कड़ी या पुल (Link or Bridge) का कार्य करता है। इसी आधार पर इसे "संदेशों से निहित टेप" भी कहते हैं।

इसकी मात्रा प्रत्येक जाति में निश्चित होती है। दैहिक कोशिकाओं की तुलना में उस जीव के युग्मकों (Gametes) में इसकी मात्रा आधी रहती हैं मानव कोशिकाओं के केन्द्रक में डी०एन०ए० लम्बा तथा सर्पिल रुप से कुण्डलित सूत्र (धागे) के रुप में पाया जाता है। DNA अणुओं की संख्या उस जीव की कोशिका में स्थित गुणसूत्रों की संख्या के बराबर होती है। डी०एन०ए० के अणु प्रोटीन से संयोग करके न्यूक्लिओप्रोटीन बनाते हैं जो केन्द्रक में क्रोमैटिन पदार्थ के रूप में पाया जाता है।

डी०एन०ए० अति उच्च आण्विक भार वाला अणु है जो नवीनतम आंकलन के अनुसार कई लाख आण्विक भार अर्थात् $10^6 - 10^7$ डाल्टन के मध्य आणविक भार है।

यह निम्न तीन प्रकार के रासायनिक यौगिकों से बना है:

(i) पेंटोज़ शर्करा-डीऑक्सीराइबोज़ (Deoxyribose)

(ii) फास्फोरिक एसिड (Phosphoric Acid)

(iii) नाइट्रोजन क्षार (Nitrogen Bases)

नाइट्रोजन क्षार चार प्रकार के होते हैं- एडीनीन (Adinine)–A , थाइमीन (Thymine)–T, साइटोसीन (Cytosine)–C, तथा ग्वानीन (Guanine)–G। ये सभी नाइट्रोजन रिंग वाले कार्बनिक यौगिक हैं। इन चारों क्षारकों को दो समूहों में विभक्त किया जाता है-प्यूरीन (Purines) एवं पिरीमिडीन (Pyrimidine)। इनमें प्रथम समूह दो रिंग वाला होता है। इनमें एडीनीन एवं ग्वानीन डी०एन०ए० में मिलने वाले प्यूरीन है। द्वितीय समूह के रिंग वाले यौगिकों में साइटोसीन तथा थाइमीन सम्मिलित होता है। इन रासायनिक क्षारों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि:

(i) डी०एन०ए० अणु में प्यूरीन एवं पिरीमिडीन की मात्रा सदैव बराबर होती है।

(ii) एडीनीन की मात्रा थाइमीन के, तथा साइटोसीन की ग्वानीन के बराबर होती है।

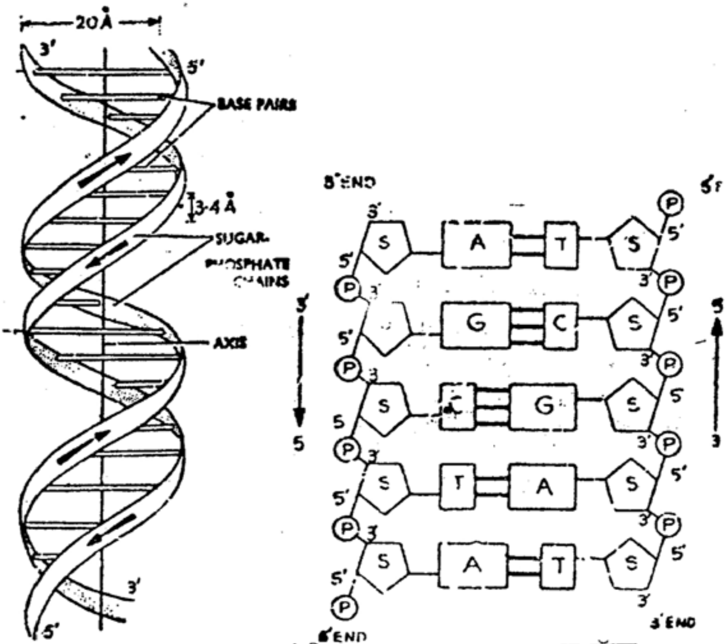
(iii) प्रत्येक जीव के डी०एन०ए० में A+T/G+C का क्षार अनुपात निश्चित होता है। इसकी यह विशेषता वर्गीकरण विज्ञान में अधिक उपयोगी हो सकती हैं मानव में यह क्षार अनुपात 1 : 53 है। इस अनुपात को विषमित अनुपात (Dissymmetry Ratio) कहते हैं।

आण्विक संरचना

1953 में वाट्सन एवं क्रिक (Watson & Crick) ने DNA की आण्विक रचना का मॉडल प्रस्तुत किया जो सर्वमान्य है। इनके अनुसार जब नाइट्रोजन क्षारकों के साथ एक 'डीआक्सीराइबोज़' का अणु संयुक्त होता है तो इसे नयूक्लिओसाइड (Nucleoside) कहते हैं। ये एडीनीन, थाइमीन, साइटोसीन एवं गवानीन क्षारकों के आधार पर क्रमशः चार न्यूक्लियोसाइड एडीनोसाइन (Adenosine–A+ डीऑक्सीसइबोज, थाइमिडीन (Thymidine)–T+ डीऑक्सीराइबोज, साइटीडीन (Cytidine)–C+ डीऑक्सीराइबोज तथा ग्वानोसीन (Guanosine)–G+ डीआक्सीराबोज़ हैं।

इन्हीं चार क्षारकों से चार प्रकार के न्यूक्लियोटाइड (Nucleotide) निर्मित होते हैं। प्रत्येक न्यूक्लियोटाइड में एक अणु डीआक्सीराइबोज का एक

अणु फास्फोरिक एसिड का, तथा एक अणु प्रत्येक नाइट्रोजन क्षारकों का होता है। चूंकि नाइट्रोजन क्षारक चार प्रकार के होते हैं। इनसे अन्य दोनों अणु (फास्फोरिक एसिड एवं डी०आक्सीराइबोज) सामान्य रूप से सम्बद्ध होते हैं, अतः न्यूक्लियोटाइड भी चार प्रकार के होते हैं-एडीनिलिक एसिड (Adinilic Acid=A+De oxyribose + PhosephoricAcid), साइटिडिलिकएसिड (Cytidilic Acid=C+Deoxyribose+ Phosphoric Acid), एवं ग्वानिलिक एसिड (Guanilic Acid=G+Deoxyribose+ Phosphoric Acid), डी०एन०ए० अणुओं में यही न्यूक्लियोटाइड हजारों की संख्या में एक निश्चित क्रम में संयुक्त होते हैं। इस प्रकार की बनी हुई श्रंखला या अनुक्रम को 'पॉलीन्यूक्लियोटाइड' श्रंखला (Polynucleotide Chain) कहते हैं। प्रत्येक न्यूक्लियोटाइड को एकलक (Monomere) कहते हैं। अतः इससे यह सिद्ध होता है कि DNA एक बहुलक (Polymere) है क्योंकि वह अनेकों न्यूक्लियोटाइडों से बनता है।



चित्रः 21; A वाटसन एवं क्रिक द्वारा प्रस्तुत DNA अणु का मॉडल;
B दो पोलीन्यूक्लिओटाइड श्रृंखलाओं में क्षर युग्मन के प्रदर्शन हेतु का एक भाग

डी०एन०ए० अणुओं में न्यूक्लियोटाइडों के विशिष्ट बन्धन (Linkage) से 'पालीन्यूक्लियोटाइडों' या बहुलकों की श्रंखला सीधी न होकर एक सर्पिल आकार की होती है। प्रत्येक न्यूक्लियोटाइड फास्फेट अणु (फास्फोरिक अम्ल-P) एस्टर बंधता (easter linkage) द्वारा डीआक्सीराइबोज़ के 5 वें कार्बन परमाणु से जुड़ता है। संलग्न न्यूक्लियोटाइड अन्य से संयुक्त होकर शर्करा-फास्फेट (S+P) श्रंखला बनाते हैं जिसमें ये दोनों अणु एकान्तरित क्रम से जुड़े रहते हैं जब यह न्यूक्लियोटाइड अगले न्यूक्लियोटाइड से जुड़ता है तो फास्फेट का अणु (P) उस न्यूक्लियोटाइड के शर्करा अणु (S–deoxyribose) के तीसरे कार्बन परमाणु से संयुक्त होता है। नाइट्रोजन क्षारक शर्करा (S) के प्रथम कार्बन परमाणु से जुड़ता है। ये क्षारक अणु पालीन्यूक्लियोटाइड श्रंखला के अनुदैर्ध्य अक्ष (Logitudinal axis) के समकोण बनाते हुए एक दूसरे के समानान्तर स्थित होते हैं। इस प्रकार पालीन्यूक्लियोटाइड श्रंखला के एक छोर पर स्थित शर्करा का तीसरा कार्बन परमाणु तथा दूसरे छोर का पांचवा कार्बन परमाणु किसी अन्य न्यूक्लियोटाइड से नहीं बन्धता है। इस क्रम को $3'$ व $5'$ छोर कहते है। इन्हीं छोरों के फलस्वरुप पालीन्यूक्लियोटाइड की श्रंखला सीधी न हो करके सर्पिलाकार होती है।

डी०एन०ए० द्विरज्जुकी इसलिए प्रतीत होता है क्योंकि इसके अणु में एक सीढ़ी को दो डण्डों के सदृश समानान्तर दो न्यूक्लियाटाइड श्रंखलायें होती हैं। यह एक दूसरे के विमुख होकर इस प्रकार से जुड़ी होती हैं कि एक श्रंखला का $3'$–सिरा दूसरे के $5'$–सिरे के साथ स्थित होता है। इन श्रंखलाओं के प्रत्येक न्यूक्लिटाइडों के अणु, शर्करा अणु के बाहर की ओर तथा क्षारक अणु अंदर की ओर स्थित होते हैं। दोनों समानान्तर श्रंखलाओं के क्षारक एक दूसरें से कमजोर हाइड्रोजन बंधनों से बन्धते हैं। इन क्षारों युग्मन विशेष प्रकार से होते है :

1. प्यूरीन (एडीनीन एवं ग्वानीन) पिरिमिडीन (साइटोसीन तथा थाइमीन) से युग्म बनता है।
2. एडीनीन, थाइमीन से तथा साइटोसीन, ग्वानीन से जोड़ा बनाता है।

अतः इन क्षारकों के विशेष युग्मन के फलस्वरुप दोनों रज्जुक या स्ट्रैंड एक दूसरे के पूरक होते हैं। उदाहरणस्वरुप यदि एक श्रंखला के किसी क्षेत्र में इन नाइट्रोजन क्षारों का अनुक्रम एडीनीन-थाइमीन-साइटोसीन-ग्वानीन-एडीनीन ATCGT

है तो पूरक श्रंखला के सम्बन्धित क्षेत्र में क्षार अनुक्रम थाइमीन-एडीनीन- ग्वानीन-साइटोसीन-थाइमीन TAGCA होगा। इन दोनों रज्जुकों के शर्करा अणुओं के मध्य की दूरी 11–1 A° होती है तथा शर्करा के C–1 परमाणु का नाइट्रोजन क्षारों के बंधने से दोनों का बंधन कोण 51° होता है।

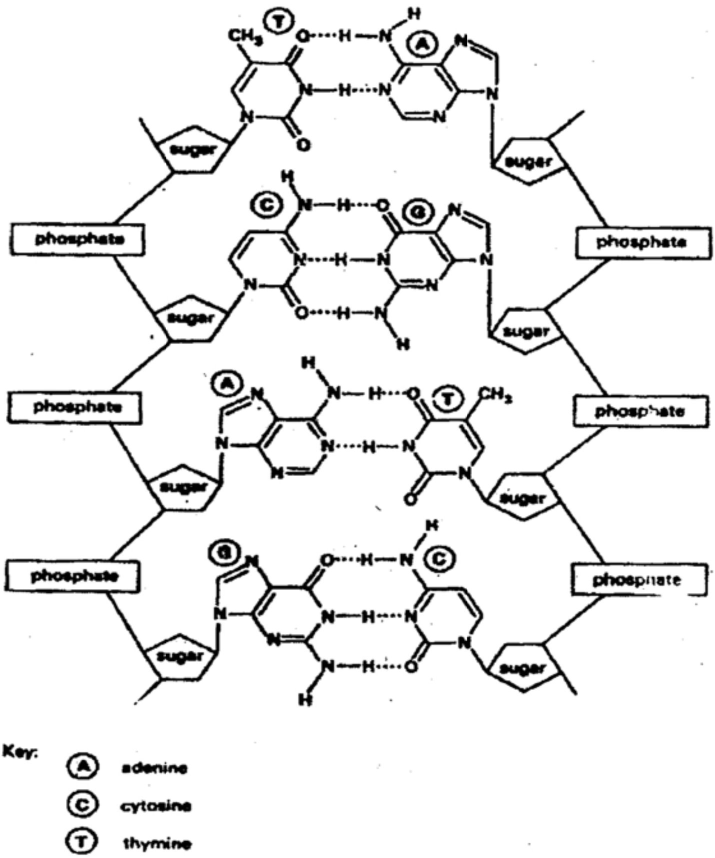
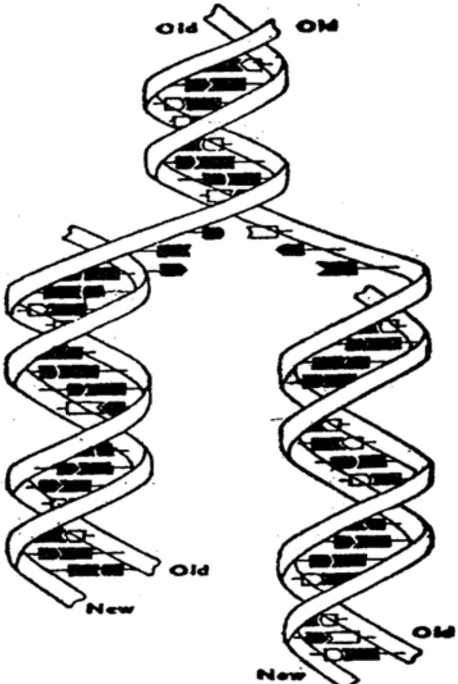


Fig 22 Part of the structure of DNA showing hydrogen bonding...... between complementary bases

दोनों पूरक श्रंखलायें एक दूसरे के चारों ओर कुण्डलित होती हैं। कुण्डलिनी का प्रत्येक घुमाव 34 A° की दूरी पर होती है। प्रत्येक कुण्डलन में 3.4 A° के निश्चित अन्तरालों पर 10 न्यूक्लियोटाइडों के युग्म होते हैं।

कुण्डलिनी का ब्यास लगभग 90 A° होता है। डी०एन०ए० कुण्डलिनी की संम्पूर्ण लम्बाई में एक संकीर्ण खांच (Narrow groove) तथा एक चौड़ी खांच होती है। कुण्डलिनी से बनी इन्हीं खाचों की क्रमबद्धता से भी डी०एन०ए० बहुलकों में सर्पिल आकार प्रदर्शित होता है। संकीर्ण खांच युग्मित अणुओं के मध्य की दूरी को चौड़ी खांच सर्पिल रूप से कुण्डलित दोनों रज्जुकों के मोड़ (Turn) की दूरी को प्रदर्शित करती हैं।

इस प्रकार डी०एन०ए० की संरचना से उसके विशिष्ट कार्य जैसे-स्वतः द्विगुणन (Selfduplication), संदेशों का संप्रेषण (Transmission of Information) एवं क्षतिग्रस्त डी०एन०ए० अणुओं की मरम्मत (repair of DNA) सरलता से समझे जा सकते हैं। डी०एन०ए० की दोहरी कुण्डलिनी के प्रत्येक रज्जुक अपना प्रतिरुप बनाने में सक्षम होते हैं। डी०एन०ए० की द्विकुण्डलिनी (Double Helix) संरचना के आधार पर वाट्सन एवं क्रिक इसके पुनरावृत्ति के तरीके की व्याख्या की। इनके अनुसार DNA की पुनरावृत्ति के समय न्यूक्लियोटाइडों के क्षारकों के मध्य के हाइड्रोजन बंधन टूटने से DNA की दोनों पूरक श्रंखलायें (पालीन्यूक्लियोटाइड) एक दूसरे से पृथक हो जाती हैं। क्षार युग्मन की विशिष्टता के कारण पृथक हुई दोनों श्रंखलाओं का प्रत्येक न्यूक्लियोटाइड कोशिकाद्रव्य में से अपने पूरक न्यूक्लियोटाइडो को आकृष्ट करता है। एक बार जब न्यूक्लियोटाइड अपने हाइड्रोजन बंधों द्वारा अपने सामने स्थित न्यूक्लियोटाइड से संयुक्त हो जाता है तो इनके शर्करा अणु भी फास्फेट अणुओं से पूर्ववत् जुड़ जाते हैं। इस प्रकार से एक नवीन पालीन्यूक्लियोटाइड श्रंखला का निर्माण पूर्ण हो जाता है तथा DNA द्विकुण्डलिनी की प्रत्येक श्रंखला एक सांचे की भांति पूरक श्रंखला का निर्माण करती है। कोशिका संवृद्धि के दौरान संश्लेषण में मुख्यतः दो एन्जाइम-DNA पालीमरेज तथा DNA लाइगेज़ सहायक होते हैं। DNA संश्लेषण मुख्यतः कोशिका विभाजन के अन्तरावस्था में होता है। इस अवस्था में DNA की मात्रा बढ़कर दो गुनी हो जाती है। लेकिन अन्त्यावस्था में बने संतति केन्द्रकों में DNA की मात्रा कम होकर आधी रह जाती है इसके पश्चात् ही प्रत्येक श्रंखलाओं को अपनी पूरक श्रंखलाओं का निर्माण करना पड़ता है।



चित्रः 23 DNA पुनरावृत्ति का चित्रीय निरूपण
(Diagrammatic representation of DNA replcation)

डी०एन०ए० संदेशों का प्रेषण भलीभांति करता है। इसके लिए संदेश उसके नाइट्रोजन क्षारों के अनुक्रम के रुप में केन्द्रित (Coded) रहते हैं। इस अनुक्रम को अन्य अणु-mRNA पर केंद्रित करके प्रोटीन संश्लेषण स्थल पर लाया जाता है। इस प्रकार DNA अणु के दो में से एक रज्जुक नवनिर्मित प्रोटीन श्रंखला में अमीनों अम्लों के उचित विन्यास का नियन्त्रण करता है। आनुवंशिक सूचना संप्रेषण की इस अविरल प्रणाली को आनुवंशिक कूट (Genetic Code) कहते हैं।

आर०एन०ए० (RNA)

गुणसूत्र में डी०एन०ए० तथा प्रोटीन की तुलना में RNA की मात्रा अत्यल्प होती है। सम्भवतः गुणसूत्र के भार का लगभग 5 प्रतिशत एक विशेष प्रकार का RNA -'गुणसूत्र RNA होता है। इसके एक अणु में 40-60 नाइट्रोजन क्षार पाये जाते हैं।

RNA के अणु, DNA अणुओं के समान तीन प्राकर के अणुओं फास्फेट, पेंटोज़ शर्करा एवं नाइट्रोजन क्षारक से बनते हैं। इनमें शर्करा के अणु 'राइबोज़ शर्करा' के रुप में होता है तथा DNA अणु से कुछ भिन्न प्रकार के नाइट्रोजन क्षारक (Nitrogenic Bases) होते हैं :

(i) एडीनीन (Adenine)

(ii) ग्वानीन (Guanine)

(iii) साइटोसीन (Cytoscine)

(iv) यूरेसिल (Uracil)

सामान्यरूप से RNA न्यूक्लियोटाइडों से बनी एक रज्जुकी रचना है, जो स्वयं पर बंलित होकर कुण्डलिनी सदृश आकार बनाती है। इसके न्यूक्लियोटाइड भी DNA की भांति एक रेखिक क्रम में 3′ – 5′ फास्फोडीस्टर बंधों द्वारा एक दूसरे से जुड़े रहते हैं। RNA के न्यूक्लियोटाइडों में राइबोज (Ribose) शर्करा होती है इसलिए इनके न्यूक्लियोटाइडो को 'राइबोन्यूक्लियोटाइड या 'राइबोटाइड' (Ribonucleotide or Ribotide) कहा जाता है।

गुणसूत्रों से संयुक्त RNA का अधिकांशतया rRNA, mRNA एवं tRNA होते हैं। इन तीनों प्रकार के RNA गुण एवं कार्यो के आधार पर विविधता रखते है। RNA राइबोसोमी होते हैं इनमें ग्वानीन एवं साइटोंसीन क्षारों की मात्रा अधिक होती है सम्भवतया यह RNA बड़े राइबोसोमल उपईकाई (Subunit) आर०एन०ए० से mRNA को मुक्त करता है। mRNA केन्द्रक में DNA के एक पूरक श्रंखला (रज्जुक) के रुप में संश्लेषित होता है तथा प्रोटीन संश्लेषण के लिए गुणसूत्री DNA से कोशिका द्रव्य में आनुवंशिकी संदेशों का प्रेषण करता है। इसी आधार पर जैकब तथा मोनॉड (Jacob and Monad, 1961) ने इसे दूत RNA (Messenger RNA) अर्थात् mRNA कहा। tRNA छोटे आकार के होते हैं। ये लगभग 60 प्रकार के राइबोन्यूक्लिक अम्लों का समूह होता है जो RNA पर स्थित कोडॉन को अनुलेखित करते हैं। 20 सक्रिय अमीनों अम्लों के प्रति अत्यधिक आकर्षक प्रदर्शित करते हुए उनसे संलग्न होकरके उन्हें प्रोटीन संश्लेषण वाले स्थान तक पहुंचाते हैं।

आर०एन०ए०, डी०एन०ए० से मुख्य लक्षणों के आधार पर भिन्नता प्रदर्शित करते है जिन्हें निम्न तालिका में दर्शाया गया है :

लक्षण	डी०एन०ए०	आर०एन०ए०
शर्करा अणु (Sugar Molecule)	डीऑक्सीराइबोज़	राइबोज़
नाइट्रोजन क्षार (Nitrogen Bases)	एडीनीन, थाइमीन, साइटोसीन तथा ग्वानीनं	एडीनीन, साइटोसीन, ग्वानीन तथा यूरेसिल
रज्जुक (Strand)	द्विरज्जुकी	सामान्यतया एकरज्जुकी
उत्पत्ति (Orgin)	पूर्ववर्ती DNA अणु की प्रतिक्रिति से	डी०एन०ए० के अनुलेखन से या RNA पालीमरेज एन्जाइम के द्वारा RNA की प्रतिकृति से
प्रकार्य (Function)	आनुवंशिक सूचनाओं को केन्द्रित करके पीढ़ी दर पीढ़ी पारगमित करना, डी०एन०ए० की पुनरावृत्ति करना तथा डी०एन०ए० की क्षति पूर्ति करना।	कुछ विषाणुओं का आनुवंशिक द्रव्य, तथा प्रोटीन संश्लेषण में भाग लेना

प्रोटीन (Protein)

प्रोटीन एक दीर्घ कण है जिनका मानव की जीव रासायनिक क्रियाओं से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। ये उत्प्रेरकों (Enzymes) के रुप में शरीर में होने वाली जैव-रासायनिक क्रियाओं का नियमन करते है। तथा साथ ही साथ ये समलक्षणी विशेषकों की अभिव्यक्ति (Expression) को भी नियन्त्रित करते हैं।

रासायनिक रूप में प्रोटीन अमीनों अम्लों के बहुलक हैं। गुणसूत्रों में उपस्थित प्रोटीन मुख्य रूप से दो प्रकार के होते हैं: क्षारीय एवं अम्लीय। गुणसूत्रों में प्रोटीन का 80 प्रतिशत भाग क्षारीय होता है। इसे 'हिस्टोन' (Histone) कहा जाता है। ये हिस्टोन पांच प्रकार के होते है : H, H2A, H2B, H3 एवं H4 । ये गुणसूत्रों के प्रारम्भिक संगठन एवं कुण्डलित क्रोमैटिन तन्तुओं को स्थायी रूप देने में सहायक

होते हैं। शेष 20% गुणसूत्री प्रोटीन अम्लीय होता है जो गुणसूत्री RNA से संयोजित होकर के हिस्टोनों (क्षारीय प्रोटीन) को DNA से बांधता है। इनमें DNA पालीमेरेज एवं RNA पालीमेरेज उत्प्रेरक भी सम्मिलित किये जाते हैं जो क्रमशः इन दोनों अणुओं (DNA एवं RNA) की अनुलिपीकरण (Replication) में सहायक होते है। इस प्रकार प्रोटीन संश्लेषण DNA की पुनरावृत्ति के लिए अनिवार्य क्रिया है जो DNA के द्वारा mRNA पर केन्द्रित सूचना संप्रेषण के फलस्वरुप घटित होता है। यदि प्रोटीन संश्लेषण अचानक रुक जाये तो आनुवंशिक सूचनाओं के सम्प्रेषण (डी०एन०ए० पुनरावृत्ति) अवरुद्ध हो जायेगी। प्रोटीन के इसी महत्वपूर्ण कार्य हेतु बैरी कॉम्नर (Barry Commoner) ने 1968 में सूचनाओं का वृत्तीय प्रक्रम (Circular Flow of Information) संकल्पना प्रस्तुत की। इनके अनुसार DNA, RNA, (mRNA, tRNA) आदि का अनुलेखन करता है, RNA प्रोटीन के रुप में इन सूचनाओं का अनुवाद करता है।, प्रोटीन RNA संश्लेषण का निर्देशन करता है तथा अन्ततः RNA, DNA संश्लेषण का अनुलेखन करता है।

जीन
(Genes)

गुणसूत्रों के वे भाग जो किसी एक विशेष लक्षण के लिए उत्तरदायी होते है तथा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में पारगमित करते हैं, 'जीन' कहलाते हैं। मेंडल ने इन वंशागत लक्षणों के लिए 'कारक' शब्द का प्रयोग किया था। इन कारकों के लिए 'जीन' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम जोहन्सन (Johannsen) ने 1909 में किया था। इसकी अवधारणा का प्रतिपादन सटन (Sutton), मार्गन (Morgan), ब्रिजिस (Bridges), मूलर (Muller), वाट्सन एवं क्रिक (Watson and Crick), विलकिंस (Wilkins) आदि जीवशास्त्रियों ने किया।

आधुनिक अवधारणा के अनुसार जीन, DNA के एक खण्ड का बना होता है जिसमें एक विशेष उत्प्रेरक (Engyme) या एक पालीपेप्टाइड श्रंखला हेतु नाइट्रोजन क्षारों (न्यूक्लियोटाइड) के रुप में संदेश उद्धृत (Coded) रहता है। इन DNA खण्ड में न्यूक्लियोटाइडों के अनुक्रम पालीपेप्टाइड श्रंखला में अमीनों अम्लों के अनुक्रमों को निर्धारित करते हैं जैसे- जेनेटिक कोड। तीन नयूक्लियोटाइड़ों का एक अनुक्रम एक विशेष अमीनों अम्लों का अनुक्रम होता है। इन्हें कोडॉन (Codon) कहते हैं। इस प्रकार गुणसूत्रों में यह एक रेखिक क्रम में विन्यासित होते हैं।

जीन उत्प्रेरकों के माध्यम से स्व-अभिव्यक्ति करता है। ये उत्प्रेरक, प्रोटीन के बने होते हैं। अतः जीन एक विशेष प्रोटीन का संश्लेषण करता है जो उत्प्रेरक के रूप में एक विशिष्ट प्रतिक्रिया हेतु उत्तरदायी होता है। जीन पुनरावृत्ति करते रहते हैं फलस्वरूप गुणसूत्रों का द्विगुणन होता है। प्रत्येक जीन में दो या दो से अधिक विकल्पी (allele) होते है जिनमें सामान्यतया एक प्रभावी दूसरा अप्रभावी अथवा दोनों प्रभावी अथवा अप्रभावी होते है। प्रत्येक जीन गुणसूत्रों में एक विशेष स्थान पर स्थित होते है इसे 'लोकस' या 'बिंदु-पथ' (Locus) कहते है। सभी जीवों में गुणसूत्रों की संख्या की तुलना में जीनों का संख्या बहुत होती है। मनुष्य के 46 गुणसूत्रों पर लगभग 40,000 जीन स्थित होते हैं। यही जीन जीवों के भौतिक एवं शरीर क्रियात्मक लक्षणों का निर्धारण कहते हैं।

आण्विक संरचना

जीन, DNA से बना होता है। लेकिन आज तक DNA का कितना भाग एक जीन को निरूपित करता है। यह कह पाना कठिन है। 1962 बैनजर (Banzer) ने जीन को तीन भागों में बांटा।

(i) रिकान (Recon)

(ii) म्यूटान (Muton)

(iii) सिस्ट्रान (Cistron)

रिकॉन

ये पुनः संयोग की सूक्ष्मतम इकाई है जो डी०एन०ए० अणु के न्यूक्लियोटाइडों के मध्य की दूरी की सूक्ष्मतम अभिव्यक्ति है। यह्न सूक्ष्मतम रूप में एक युगल नयूक्लियोटाइडों द्वारा व्यक्ति हो सकता है।

म्यूटॉन

यह डी०एन०ए० का वह भाग है जिसमें उत्परिवर्तन की क्षमता होती है। नयूक्लियोटाइड के एक युगल में घटित परिवर्तन इसकी न्यूनतम अभिव्यक्ति को प्रदर्शित करता हैं। तीन न्यूक्लियोटाइड द्वारा बने त्रिक (Triplet) के किसी एक क्षारक में घटित होने वाले कोई भी परिवर्तन 'कोडॉन' द्वारा ले जा रहे संदेश को बदल सकता है जिसकें फलस्वरूप नवीन अमीनों अम्ल की उत्पत्ति होती जैसे, Hb–

A के निर्माण में छठा त्रिक " GAA–CTT तथा Hb–s में यह GAT–CAT होता है। इस विन्यास के फलस्वरूप Hb–s में 'ट्रिपलेट' के प्रोटीन विन्यास में भिन्नता आ जाती है इससे "सिकिल-सेल-एनीमिया" रोग उत्पन्न होता है।

सिस्ट्रान

यह डी०एन०ए० का एक बड़ा भाग है, जो क्रियात्मक इकाई का निरूपण करता है।

जीन के इन प्रस्तावित भागों के अतिरिक्त जीन की तीन और इकाईयों का प्रस्ताव कुछ विद्धानों के द्वारा किया गया जिन्हें निम्न तालिका में दर्शाया जा रहा है:

जीनोम	आनुवंशिक प्रकार्य की इकाई	प्रोटीन डी०एन०ए० से सम्बन्ध	प्रोटीन
1. रिकॉन (Recon)	पुनः संयोग	न्यूक्लियोटाइडो के मध्य की दूरी	–
2. म्यूटान (Muton)	उत्परिवर्तन	न्यूक्लियोटाइड युगल	–
3. कोडॉन (Codon)	स्थानान्तरण	mRNAका त्रिक या DNA का त्रिक	अमीनोंअम्ल
4. सिस्ट्रान (Cistron)	आंशिक कार्य	डी०एन०ए० का खण्ड	पॉलीपेप्टाइड
5. कमप्लान (Complon)	अनुपूरण (Complementation)	डी०एन०ए० का खण्ड	पॉलीपेप्टाइड
6. ओपेरान (Operon)	क्रियायें (Function)	डी०एन०ए० का खण्ड	अनेक सम्बद्ध उत्प्रेरक
7. रेप्लिकॉन (Replicon)	पुनरावृत्ति	सम्भवतः एक डी०एन०ए० अणु या गुणसूत्र का कुछ भाग	उत्प्रेरकों का समूह
8. जीन (Gene)	क्रिया	गुणसूत्र क्षेत्र	प्रोटीन

इस प्रकार जीन का तुलनात्मक अध्ययन जब जीन के अन्य प्रस्तावित भागों के साथ करते हैं तो यह स्पष्ट होता है कि जीन गुणसूत्र का एक क्षेत्र है जिसके दो विकल्पी समानान्तर रूप से गुणसूत्र के दोनों छोरों पर स्थित होते हैं। यह एक

विशिष्ट उत्प्रेरक का निर्माण करके किसी विशेष लक्षण को व्यक्त करता है। इसमें आनुवंशिकी क्षेत्र के मुख्य कार्य- पुनः संयोजन, उत्परिवर्तन स्थानान्तरण, पुनरावृत्ति, कार्य आदि की क्षमता हाती है क्योंकि गुणसूत्र के उस क्षेत्र पर यह सभी प्रस्तावित नवीन भाग भी होतें हैं जो इन विशेष आनुवंशिक कार्यो की इकाई है। अतः यह कहा जा सकता है कि जीन की सूक्ष्म इकाई डी०एन०ए० अणु है तथा इसको रिकॉन, म्यूटॉन, कोडॉन आदि में विभाजित किया जा सकता हैं। यह गुणसूत्र के एक आनुवंशिक इकाई हैं जो एक दीर्घ अणु के रुप में गुणसूत्रों की क्रोमोंनेमा (Chromonema) में एक निश्चित क्रम में स्थित रहते हैं। यदि मानव जाति के समस्त जीन को मिला दिया जाये तो मानव जीनों की इस समष्टि को 'जीनोम' (Genome) कहते हैं। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि 'जीनोम' किसी एक जीव के 'जीन का जाल' है।

गुणसूत्र-वर्गीकरण; कैरियोटाइप (Karyotype)

सामान्य रूप से सभी गुणसूत्र एक दूसरे के समान प्रतीत होते हैं। लेकिन कोशिका विशेषज्ञ एवं जीवशास्त्री किसी विशेष गुणसूत्र को अन्य गुणसूत्रों से सरलतापूर्वक पृथक कर लेते हैं। यह पहचान विशेषज्ञ आकारिकी एवं भैतिक गुणों के आधार पर कर पाते हैं। अतः गुणसूत्रों की वह वर्गीकरण विधि जिन्हें इनकी आकारिकी एवं भौतिक लक्षणों को आधार बनाया जाये, कैरियोटाइप (Karyotype) कहते हैं। दूसरे शब्दों में कैरियोटाइप गुणसूत्रों में पायी जाने वाली आकारिकी विविधता है जिसमें निम्न लक्षण मुख्यरूप से विचारणीय होते हैं :

(i) गुणसूत्रों की संख्या

(ii) युग्मित गुणसूत्रों की संख्या

(iii) आपेक्षिक लम्बाई तथा चौड़ाई

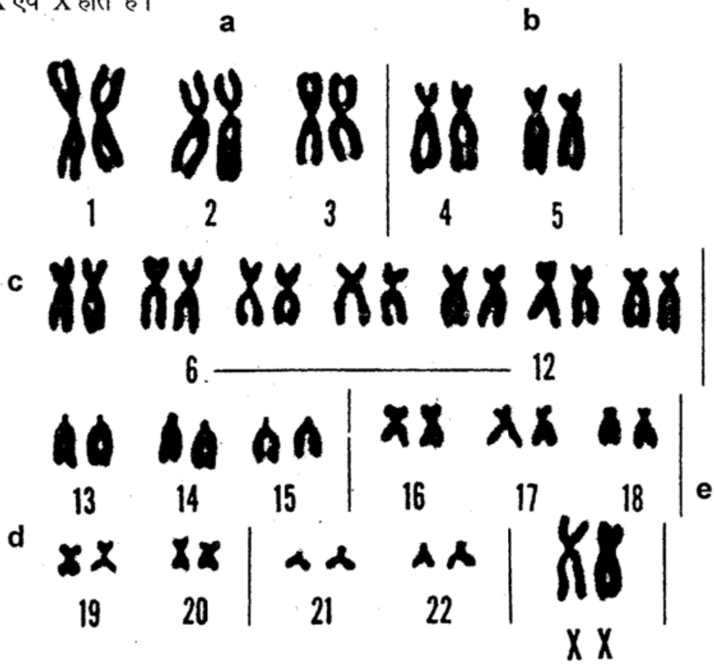
(iv) सेन्ट्रोमियर की स्थिति

(v) द्वितीयक आकुंचन (सैटेलाइट)

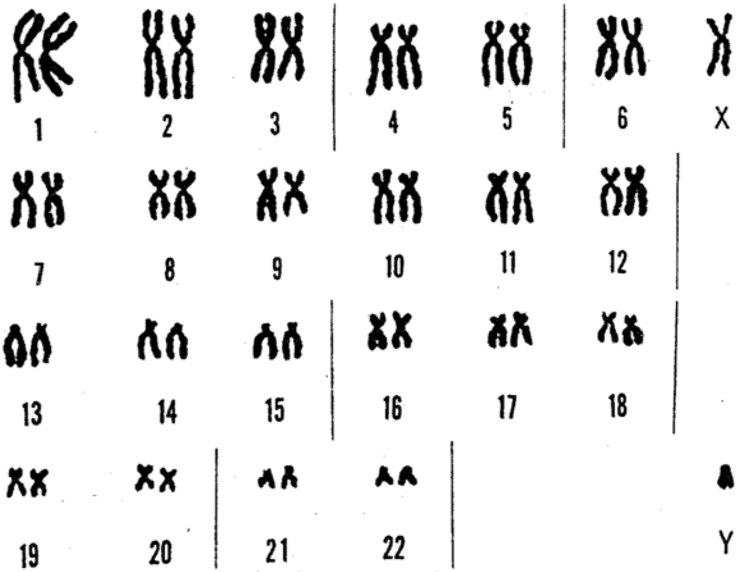
अतः प्रत्येक स्पीशीज (जाति) का कैरियोटाइप कोशिका में गुणसूत्रों की संख्या एवं प्रकार में विशिष्ट होता है। केवल गुणसूत्र की संख्या ही कैरियोटाइप को विशिष्ट

नहीं बनाती है, अपितु उस जाति विशेष में गुणसूत्रों की संख्या, उनके आकार एवं प्रकार कैरियोटाइप बनाते हैं। उस जाति के जीनोम से कैरियोटाइप घनिष्ट रूप से सम्बन्धित होता है। जब किसी एक जीव का कैरियोटाइप गुणसूत्र संख्या अथवा आकार में परिवर्तित होता है तो उस जीव के आनुवंशिक पदार्थ पुनर्व्यवस्थित होते हैं। सधारणतया प्रत्येक स्पीशीज का केवल एक कैरियोटाइप होता है।

सन् 1956 के पश्चात् मानव कैरियोटाइप से यह ज्ञात हुआ है कि इस जाति में सामान्यरुप से 46 गुणसूत्र (द्विगुणित) होते हैं। इनमें से 22 जोड़े अंलिगसूत्री (Autosomes) तथा X एवं Y लिंगसूत्री (Sex-Chromosome) हैं। दैहिक कोशिकाओ में गुणसूत्रों की संख्या 46(2N) होती है जब कि मानव युग्मकों में इनकी संख्या 23(N) होती है। पुरूषों में लिंग गुणसूत्र X व Y होता है जबकि स्त्रियों में ये लिंगसूत्र X एवं X होते हैं।



चित्रः 24(i) मानव गुणसूत्र (स्त्री): स्त्री व पुरुष में अन्तर लिंग-गुणसूत्र X एवं Y पर आधारित है। पुरुषों में Y गुणसूत्र अतिसूक्ष्म होता है जबकि स्त्रियों में दो X गुणसूत्र अपेक्षाकृत बड़े आकार के हैं।



चित्र: 24(ii) मानव गुणसूत्र (पुरुष): स्त्री व पुरुष में अन्तर लिंग-गुणसूत्र X एवं Y पर आधारित है। पुरुषों में Y गुणसूत्र अतिसूक्ष्म है जबकि स्त्रियों में दो X गुणसूत्र अपेक्षाकृत बड़े आकार के होते हैं।

मानव गुणसूत्रों (सामान्य) को उनके आकार की विभिन्नता एवं सेंट्रोमियर की स्थिति के आधार पर निम्न सात समूहों में विभक्त किया गया है :

(i) समूह-A : गुणसूत्र 1–3
(ii) समूह-B : गुणसूत्र 4–5
(iii) समूह-C : गुणसूत्र 6–12 एवं X
(vi) समूह-D : गुणसूत्र 13–15
(v) समूह-E : गुणसूत्र 16–18
(vi) समूह-F : गुणसूत्र 19–20
(vii) समूह-G : गुणसूत्र 21–22 एवं Y

समूह-A

ये गुणसूत्र आकार में अत्यधिक बड़े हैं। इनकी भुजाओं के मध्य में सेन्ट्रोमियर स्थित होता है, अतः यह मध्य केन्द्री गुणसूत्र हैं।

समूह-B

ये गुणसूत्र-4 एवं 5, समूह-A के गुणसूत्रों की तुलना में छोटे हैं यद्यपि इनका आकार अन्य गुणसूत्रों से बड़ा होता है। सेंट्रोमियर गुणसूत्रों की भुजाओं के ठीक मध्य से कुछ हटकर होता है। इन गुणसूत्रों को उपमध्य केन्द्री कहा जाता है।

समूह-C

यह बहुसंख्यक गुणसूत्र समूह है जिसमें गुणसूत्र 6–12 होते हैं। ये सभी मध्य मध्यकेन्द्री प्रकार के गुणसूत्र हैं लेकिन आकार में पूर्ववर्ती समूह (B) की अपेक्षा छोटे होते हैं। इसी में लिंग गुणसूत्र XX भी सम्मिलित किये जाते हैं। पुरुषों में लिंगसूत्र मात्र एक होता है। कुछ विशेषज्ञ इस लिंगसूत्र को समूह B में सम्मिलित करते हैं। लेकिन इस लिंगसूत्र का आकार छठे गुणसूत्र के अधिक समान है।

समूह-D

इस समूह में गुणसूत्र 13 – 15 सम्मिलित किये गये हैं। इनमें सेंट्रोमियर लगभग एक छोर के निकट स्थित होता है। ये अग्रकेन्द्री गुणसूत्र हैं। इनमें सैटेलाइट छोटी भुजाओ पर स्थित होते हैं।

समूह-E

यह आकार में समूह-D से छोटे होते हैं। इनकी भुजाओं के मध्य के निकट सेन्ट्रोमियर स्थित होता है। इससे इन गुणसूत्रों को मध्यकेन्द्री- उपमध्यकेन्द्री के बीच में रखा जाता है।

समूह-F

गुणसूत्र –19 एवं 20 इस समूह के सदस्य हैं। ये आकार में छोटे होते हैं। सेन्ट्रोमियर दोनों भुजाओं के मध्य स्थित होता है। अतः ये मध्यकेन्द्री गुणसूत्र है।

समूह-G

इस समूह में गुणसूत्र –21 एवं 22 सम्मिलित होते हैं। इनके अतिरिक्त लिंगसूत्र –Y को भी इसी वर्ग में रखा जाता है। इनमें सेन्ट्रोमियर Q भुजा के अग्रभाग पर स्थित होता है इसलिए इन्हें अग्रकेन्द्री गुणसूत्र कहते हैं। स्त्रियों

में यह लिंगसूत्र नहीं होता है इन गुणसूत्रों में छोटी भुजा के आगे सैटेलाइट स्थित है।

मुख्यतया कैरियोटाइप के विश्लेषण के लिए कोशिका विभाजन की मध्यावस्था में कोशिकाओं को सूक्ष्मदर्शी के प्रकाशीय व्यवस्था से युक्त कैमरे के द्वारा छायाचित्रित किया जाता है। चूंकि ये कोशिकाओं के गुणसूत्र मोटे एवं स्पष्ट होते हैं। अतः स्पष्ट क्रोमैटिड से इन्हें भलीभाँति पहचान सकते हैं। इन छायाचित्रों को आवश्यकतानुसार परिवर्द्धित कर लिया जाता है तथा गुणसूत्र को काटकर एक कागज पर क्रमबद्ध कर लिया जाता है। इस क्रम में सबसे अधिक बड़ा पहले तथा सर्वाधिक छोटे को सबसे अन्त में रखते है। यदि गुणसूत्र बराबर लम्बाई के होते है तो मध्यकेन्द्री (M) को पहले तथा अग्रकेन्द्री (A) को बाद में रखते हैं। 46 मानव गुणसूत्रों को जिन 7 समूहों में रखा गया है उसे डेनवर वर्गीकरण (Denever Classification) भी कहते हैं क्योंकि 1960 में कोलोरैडो स्थित डेनवर में प्रमुख कोशिका अध्ययनकर्ताओं में सहमति हुई थी। गुणसूत्रों के वर्ग, आकारिकी एवं मापों को निम्न तालिका में प्रदर्शित किया जा रहा है:

समूह Group	गुणसूत्र संख्या	भुजा की लम्बाइयों का अनुपात (लम्बाई : छोटाई)	आकारिक वर्गीकरण (सेंट्रोमियर की स्थिति)
A	1	1 : 1	M (मध्यकेन्द्री)
	2	1 : 5 या 1 : 6	(मध्यकेन्द्री)
	3	1 : 2	(मध्यकेन्द्री)
B	4	2.6 : 2.9	उपमध्यकेन्द्री (S)
	5	2.4 : 3.2	उपमध्यकेन्द्री (S)
C	X	1.6 : 2.8	मध्यकेन्द्री) (M) अथवा उपमध्यकेन्द्री (S)
	6	1.6 : 1.8	मध्यकेन्द्री (M)
	7	1.3 : 1.9	मध्यकेन्द्री (M)
	8	1.5 : 2.4	उपमध्यकेन्द्री (S)
	9	1.8 : 2.4	उपमध्यकेन्द्री (S)

क्रमशः

क्रमशः

	10	1.9:2.6	उपमध्यकेन्द्री (S)
	11	1.5:2.8	उपमध्यकेन्द्री (S)
	11	1.7:3.1	(मध्यकेन्द्री) -G
D	13	4.8:9.7	अग्रकेन्द्री (A)
	14	4.3:9.5	अग्रकेन्द्री (A)
	15	3.8:11.9	अग्रकेन्द्री (A)
E	16	1.4:1.8	(मध्यकेन्द्री) (M)
	17	1.8:3.1	उपमध्यकेन्द्री (S)
	18	2.4:4.2	उपमध्यकेन्द्री (S)
F	19	1.2:1.9	(मध्यकेन्द्री) (M)
	20	1.2:2.3	(मध्यकेन्द्री) (M)
G	21	2.3:6.8	अग्रकेन्द्री (A)
	22	2.06.0	अग्रकेन्द्री (A)
	Y	2. 9–α (5.9)[3]	अग्रकेन्द्री (A)

जल्दी ही गुणसूत्र वर्गीकरण विकसित तकनीकों से किया जाने लगा है। इसमें गुणसूत्रों की पट्टियों के प्रारूपों (Band Pattern) का अध्ययन किया जाता है। इसके कुछ अभिरंजकों (Fluoresent dayes) जैसे– क्वीनाक्रीन (Quinacrine) का प्रयोग करके पट्टियों का निरीक्षण प्रदीप्त सूक्ष्मदर्शी से किया जाता है। इस तकनीक को 'Q. पट्टी तकनीक' कहते हैं। इसमें गुणसूत्रों की बड़ी भुजा को भुजा तथा तुलनात्मक रूप से छोटी भुजा का P. भुजा कहते हैं। इसके अतिरिक्त 'Q पट्टी तकनीक' का प्रयोग भी पट्टियों के प्रारूपों को अध्ययन किया जाता है। इसमें 'जिम्सा' अभिरंजक (Giemsa dye) का प्रयोग करते हैं। इन पट्टी प्रतिरूपों को सामान्य सूक्ष्मदर्शियों से भी देखा जा सकता है। 'G पट्टी प्रारूप,' 'Q पट्टी प्रारूप' विधि के विपरीत है। इसमें Q चमकीली पट्टियाँ, G – गहरी पट्टियाँ प्राप्त होती हैं। पट्टियों की संख्यायें विभाजन के समय गुणसूत्रों के संघनन (Condensation) पर निर्भर करता है। मानव गुणसूत्रों के कम से कम संघनित होने पर 2000 पट्टियों

एवं सबसे अधिक संघनित होने पर लगभग 500 पट्टियों को प्रदर्शित किया जा सकता है।

सन् 1971 में पेरिस सम्मेलन में कोशिकाविद एकत्रित हुए, जिसमें मानव कैरियोटाइप एवं उसकी पट्टियों हेतु 'मानक शब्दावली' (Standard Nanenclature)पर आम सहमति हुई। इसके अनुसार अलिंगसूत्री गुणसूत्रों को आकृति के आधार पर क्रमबद्ध (1–22) किया गया तथा X एवं Y लिंग गुणसूत्रों को पृथक नाम दिये गये। गुणसूत्र-भुजाओं को P (छोटी भुजा फ्रांसीसी शब्द Perit I छोटा के आधार पर) तथा q (बड़ी भुजा) अक्षरों से सम्बोधित किये गये। पट्टियों की गणना सेन्ट्रोमियर बिन्दु से बाहरी छोर की ओर की जाने लगी। इसके अतिरिक्त अनेकों संरचनात्मक त्रुटियों पर विचार किया गया।

❑❑❑

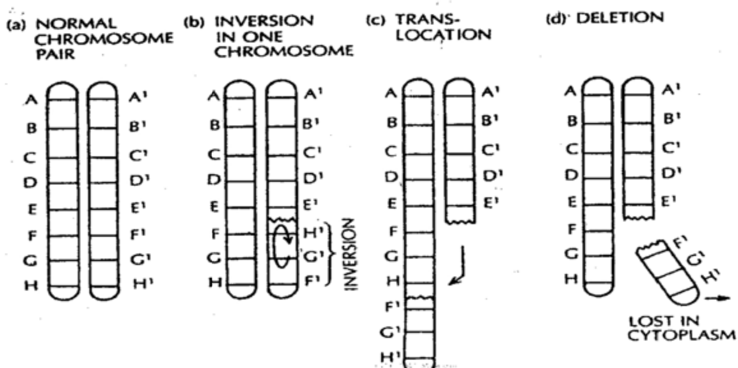
5

गुणसूत्र विपथन एवं विसंगतिया
(Chromosomal Aberration and Anomalies)

सामान्य जीन के स्वरूप में विभेद उत्पन्न होने से अनेकों आनुवंशिक विकृतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। एक विशेष प्रकार से डी. एन. ए. (जीन) में तनाव आ सकता है जिससे वह किसी भी रूप में परिवर्तित हो सकता है तथा एक और विकल्पी की उत्पत्ति हो सकती है। इस प्रकार का परिवर्तन 'कोडॉन' (तीन न्यूक्लियोटाइड के 'कोड' शब्दों) पर प्रदर्शित होता है। जिससे भिन्न अमीनो अम्ल एक विशिष्ट प्रोटीन को प्रतिस्थापित करते हैं। इस प्रकार डी. एन. ए. स्तर पर आये परिवर्तनों को 'जीन उत्परिवर्तन' कहते हैं। यही जीन उत्परिवर्तन विकृतियों के लिए उत्तरदायी होते हैं। उदाहरणस्वरूप 'फिनाइल कीटोनूरिया (Phenylketonuria)', सिकिल सेल एनीमिया (Sickle Cell Anemia), एलकैप्टोनूरिया (Alkaptonuria) आदि विकृतियाँ प्रत्येक स्थिति में सामान्य अथवा मानक विकल्पियों के विशिष्ट परिवर्तनों के फलस्वरूप आविर्भूत हुए हैं। इसी प्रकार 'बहुजीनी विकृतियों' में अनेकों 'जीनी संस्थिति' पर विद्यमान जीनों में ऐसे परिवर्तन घटित हो जाया करते हैं जिससे कुछ विकल्पी संयोगों से विकृति उत्पन्न हो सकती है।

लेकिन कई आनुवंशिक विकृतियाँ एक विशिष्ट उत्परिवर्तित जीन अथवा कई संस्थियों के उत्परिवर्तित जीन के फलस्वरूप व्युत्पन्न नहीं होती हैं तथा उनमें से कई विकृतियाँ आनुवंशिक भी नहीं होती हैं। इस श्रेणी की विकृतियाँ, आनुवंशिक

पदार्थों के मौलिक विभेदों के फलस्वरूप घटित होती हैं अर्थात् एक या सम्पूर्ण गुणसूत्र की कमी अथवा वृद्धि तथा गुणसूत्र के आकार एवं रचना में परिवर्तन होने से ये विकृतियां परिलक्षित होती हैं। इन स्थितियों में कई जीनी संस्थियों में उत्परिवर्तन घटित होते हैं चाहे सम्पूर्ण गुणसूत्र की वृद्धि हो अथवा इसकी कमी हो। कैसे भी हो इस स्थिति में कई उत्परिवर्तित जीन इन विकृतियों के लिए उत्तरदायी नहीं होते तथा साथ-साथ सामान्य जीनों की वृद्धि अथवा कमी भी हो सकती है लेकिन इन समस्त अवस्थाओं के परिवर्तनों में अभिवृद्धि अवश्य होती है। यद्यपि इस प्रकार के विभेद आनुवंशिक पदार्थों में उत्पन्न होते रहते हैं लेकिन यह आवश्यक नहीं कि ये सभी वंशागत हो जाये लेकिन अवस्था में जब ये विभेद मानव युग्मों (शुक्राणु एवं अण्डाणु) में घटित हो जाते हैं तो वे निश्चित रूप से सन्ततियों में पारगमित होते हैं। इस प्रकार के विभेद की इकाई चूँकि गुणसूत्र होते हैं इसलिए इन विभेदों को **'गुणसूत्री विपथन' (Chromosomal Aberration)** तथा विकृतियों को **'गुणसूत्री विसंगतियाँ' (Chromosomal Anomalies)** कहते हैं। आनुवंशिक अनुसंधानों से यह ज्ञात होता है कि लगभग 5 प्रतिशत उत्पन्न सभी बच्चों में ये गुणसूत्री विकृतियां जन्म से ही होती हैं। लगभग एक चौथाई भ्रूण इन विकृतियों के फलस्वरूप जन्म नहीं ले पाते तथा स्वतः गर्भपात होने वाले भ्रूणों में ये विकृतियां उच्चस्तर पर होती हैं अधिकांश जन्मजात विसंगतियों के लिए यही गुणसूत्री विपथन उत्तरदायी होते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका के कुल गर्भधारक माताओं में 20 प्रतिशत स्वतः गर्भपात हो जाते हैं। प्रतिवर्ष 20,000 शिशु इन्हीं गुणसूत्री विपथन के शिकार होने से जन्मजात विकृति (Congenital Defects) वाले उत्पन्न होते हैं।



चित्रः 25 गुणसूत्री विपथन (Chromosomal Aberration) के विभिन्न स्वरूप

गुणसूत्र विपथन से मुख्यतः निम्न दो प्रकार की विसंगतियाँ हो सकती हैं:

(A) संख्यात्मक गुणसूत्र विपथन एवं विसंगति

(B) संरचनात्मक गुणसूत्र विपथन एवं विसंगति

(A) संख्यात्मक गुणसूत्र विसंगतियां (Numerical Aberration & Disorders)

गुणसूत्र की संख्याओं से सम्बन्धित विकृतियां मानव के सामान्य द्विगुणित गुणसूत्री समूह में विचलन के फलस्वरूप उत्पन्न होती हैं। सामान्यतयां जन्मे शिशुओं में 23 गुणसूत्र माँ तथा 23 गुणसूत्र पिता से आते हैं जिससे उनकी कोशिकाओं में द्विगुणित समूह (Diploid Set) बनता है। लेकिन जब युग्मजनन प्रक्रिया के अर्धसूत्री एवं सूत्री विभाजन में कोई अनहोनी घटना घटित हो जाये तो उस जन्में या अजन्में शिशु में सामान्य द्विगुणित समूह नहीं होता है। यह घटना जन्में अथवा अजन्में गर्भ के लिए अत्यन्त घातक सिद्ध होती है। इस प्रकार की निम्न तीन प्रकार की विसंगतियां घटित हो सकती है :

1. द्विगुणन (Aneuploidy)
2. बहुगुणन (Polyploidy)
3. अगुणन (Haploidy)

1. द्विगुणन अथवा ऐन्यूप्लायडी (Aneuploidy)

यदि मानव के कुल या द्विगुणित गुणसूत्र समूह (2N) के स्तर पर कोई असामान्य विभेद घटित होते हैं तो उन्हें द्विगुणन या 'ऐन्यूप्लायडी' कहते हैं। मानव में गुणसूत्री द्विगुणित समूहों (2N) से सम्बन्धित निम्न तीन प्रकार की विसंगतियां देखी गयी हैं :

(i) 'एकल द्विगुणन' या मोनोसोमिक्स (Monosomics)

(ii) 'बहुल द्विगुणन' या पॉलीसोमिक्स (Polysomics)

(iii) 'अपघटित द्विगुणन' या नलीसोमिक्स (Nullisomics)

(i) 'एकल द्विगुणन' : एकल द्विगुणन या मोनोसोमिक्स, गुणसूत्र विपथन की उस अवस्था को कहते हैं जब एक सम्पूर्ण गुणसूत्र समूहों से कोई एक गुणसूत्र अपघटित हो जाये। ऐसी स्थिति में मानव के द्विगुणित गुणसूत्रों की संख्या सामान्य नहीं रहती। इस प्रकार की विसंगति से प्रायः कोशिकाओं में 45 गुणसूत्र (2N-1)

रहते हैं। इस प्रकार के गुणसूत्री विपथन के फलस्वरूप स्त्रियों में प्रायः एक लिंगगुणसूत्र (x) अपघटित हो जाता है। इस विकृति को 'टर्नर सिंड्रोम' (Turner Syndrome) कहते हैं।

टर्नर सिंड्रोम (Turner Syndrome)

यह एक लिंग गुणसूत्री आनुवंशिक विकृति है। इसमें स्त्रियों का कैरियोटाइप साधारण रूप से 45 रहता है क्योंकि इनमें लिंग गुणसूत्र - XO होता है। इस रोग का वर्णन सर्वप्रथम टर्नर ने सन् 1938 में किया। इस रोग से प्रभावित स्त्रियां वन्ध्यापन या बांझपन (Sterility) का शिकार होती हैं। इनकी अण्डाशय (Ovaries) सामान्य नहीं होती। इनका औसत कद छोटा (135 से.मी.) होता है। इनका गला झिल्लीदार (Webbed) होता है। इनका वक्षस्थल चौड़ा लेकिन स्तन अविकसित होते हैं। इन स्त्रियों को श्वसन एवं हृदय रोग (Cardio Vascular) विकृति होती है। ये मानसिक रूप से विक्षिप्त होती हैं। इस प्रकार के रोगियों का जन्म औसतन प्रति 2,500 मादा शिशु जन्मं है। स्वतः गर्भपात में इन आनुवंशिक विसंगति की कुल दर 5 प्रतिशत है। अनुसंधानों से यह ज्ञात हुआ है कि 72 प्रतिशत घटनाओं में मातायें अपने जन्में अथवा अजन्में गर्भ को एक लिंगसूत्र (X) कम देती हैं। इस प्रकार का गुणसूत्री असंयोग पिता के शुक्राणुओं में भी हो जाता है जब मीयॉसिस विभाजन के दौरान उनके दोनों लिंगसूत्र (XY) किसी एक युग्मक में चले जाते हैं। फलस्वरूप दूसरे युग्मक में दोनों लिंगसूत्र X एवं Y अनुपस्थित रहता है। यह विसंगति आयु से प्रभावित नहीं होती।



चित्र: 26 टर्नर सिंड्रोल (A) टर्नर स्त्री (B) का कैरियोटाइप जिसमें एक X-गुणसूत्र अनुपस्थित है (XO)

(ii) बहुलद्विगुणन (Polysomy)

जब किसी मानव में द्विगुणित गुणसूत्र समूह (2N) से अधिक गुणसूत्र हों तो इस प्रकार की विसंगति 'पालीसोमी' कहलाती हैं। यह विकृति दो प्रकार की होती है- ट्राइसोमी एवं टेट्रासोमी। ट्राइसोमी उस विकृति को कहते हैं जब किसी गर्भ या शिशु को द्विगुणित समूह से एक गुणसूत्र अधिक हो। दूसरे जब एक द्विगुणित समूह में दो गुणसूत्र बढ़ जायें अर्थात् 2N+2 या 48 हो तो इसे 'टेट्रासोमी' कहा जाता है। ये घटनायें दोनों प्रकार के गुणसूत्रों- अलिंगसूत्री एवं लिंगसूत्री में निरीक्षित की गयी है। लिंगसूत्र से सम्बन्धित गुणसूत्र वृद्धि प्रायः पुरुषों में देखी गयी है। स्त्रियों में लिंगसूत्री वृद्धि के दृष्टान्त विरले ही हैं। इस प्रकार की गुणसूत्री विकृति को ***क्लिनेफिल्टर सिन्ड्रोम (Klinefilter Syndrome)*** कहते हैं। 'अलिंग सूत्री पालीसोमी' की घटनायें मुख्यतः गुणसूत्र 13, 18 एवं 21 से सम्बन्धित पायी गयी हैं। इन विकृतियों को क्रमशः निम्नलिखित नामों से पुकारा जाता है :

(i) पैटो सिंड्रोम (Patau's Syndrome)

(ii) एडवर्ड सिंड्रोम (Edward's Syndrome)

(iii) डाउन सिंड्रोम (Down's Syndrome)

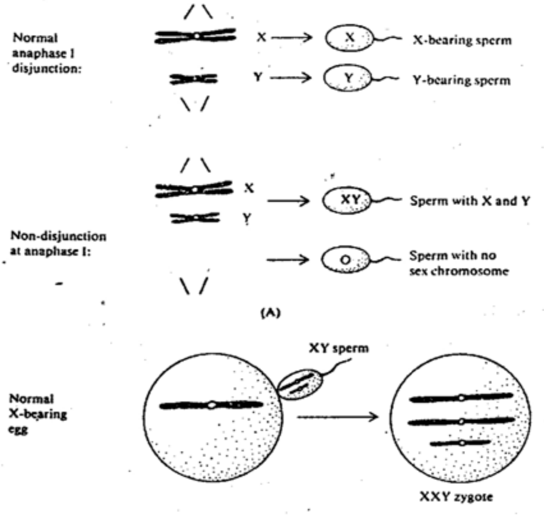
इन दोनों प्रकार की गुणसूत्री (लिंग एवं अलिंगसूत्री) विकृतियों में अलिंगसूत्री विकृति अत्यधिक घातक है क्योंकि इन असामान्य द्विगुणित समूह के घटित हो जाने के परिणाम स्वरूप भ्रूण अधिक समय तक जीवित नहीं रह पातें। यहाँ इन विकृतियों का विस्तार से वर्णन किया जा रहा है।

क्लिनेफिल्टर सिंड्रोम' (Klinefitter Syndrome)

मानवों में पुरुष सामान्यतः एक X एवं Y लिंगसूत्री गुणसूत्र रखते हैं जिससे उनमें गुणसूत्रों की संख्या 46 (XY) होती है। आसामान्य स्थिति में X गुणसूत्र की संख्या बदल जाती है। जब यह X-गुणसूत्र किसी पुरुष में अतिरिक्त पाया जाता है तो उसे मोनोसोमी या 'डाईसोमी क्लिनेफिल्टर सिंड्रोम (47, XXY)' कहते हैं। यदि कुल X-गुणसूत्रों की अतिरिक्त दो और हो जाती है जिससे तीन X गुणसूत्र एक साथ प्रकट होते है, तो इस प्रकार की विकृति को 'ट्राइसोमिक क्लिनेफिल्टर सिंड्रोम' (48, XXXY) कहते हैं। इसके अतिरिक्त उस स्थिति में जब तीन अतिरिक्त X गुणसूत्रों के एकत्रित होने से पुरुषों में कुल X गुणसूत्रों की संख्या चार हो जाती

है तो इसे 'टेट्रासोमिक क्लिनेफिल्टर' सिंड्रोम (49, XXXXY) कहते है। अतः क्लिनेफिल्टर सिंड्रोम विकृतियों को तीन वर्गों में सम्मिलित कर सकते हैं :

1. क्लिनेफिल्टर सिंड्रोम - I (डाईसोमी - 47, XXY)
2. क्लिनेफिल्टर सिंड्रोम - II (ट्राईसोमी - 48, XXXY)
3. क्लिनेफिल्टर सिंड्रोम - III (टेट्रासोमी - 49, XXXXY).



चित्रः 27 शुक्राणुजनन में त्रुटि से उत्पन्न क्लिनेफिल्टर पुरुष

इस प्रकार की गुणसूत्री रचना वाले भ्रूण प्रायः सामान्य होते हैं लेकिन जब वह परिपक्व होने लगता है अथवा जन्मा शिशु युवावस्था की ओर अग्रसर होता है तो अनेकों शरीर रचनात्मक विकृतियां प्रकट होने लगती है। यह विकृति निश्चित रूप से पुरुषों में पायी जाती है। इन व्यक्तियों के अण्डकोश या जननकोश तथा शिश्न छोटा होता है। शरीर पर बालों का वितरण अत्यन्त विरल होता है। इनके स्तनाग्र अपेक्षाकृत विकसित होते हैं जिसे 'गाईनेकोमैस्टिया' (Gynaecomastia) कहते हैं। इसके अतिरिक्त शरीर के अन्य भागों की अपेक्षा दोनों भुजायें एवं टाँगे लम्बी होती हैं। ये पुरुष प्रायः सन्तानोत्पत्ति की क्षमता नहीं रखते क्योंकि इनके जनद के असामान्य होने से इनमें शुक्राणुजनन (Spermatogenesis) प्रक्रिया घटित नहीं हो पाती। इनमें कुछ मानसिक रूप से विक्षिप्त होते हैं।

क्लिनेफिल्टर सिंड्रोम (47, XXY) सर्वेक्षणों के अनुसार प्रति एक 700 जीवित पुरुष जन्मों में होता है। इससे यह संकेत मिलता है कि इस विकृति की बारम्बारता अपेक्षाकृत अधिक है। यह विकृति जनकों की युग्मजनन प्रक्रिया में मीयॉसिस विभाजन के दौरान असामान्य गुणसूत्र असंयोजन (Non Disjunction) के फलस्वरूप उत्पन्न होती है। X-लिंग सहलग्न लक्षणों से सम्बन्धित अध्ययन इंगित करते हैं कि लगभग 60 प्रतिशत स्थितियों में यह 'स्त्री युग्मजनन' या अण्ड जनन (Oogenesis) के माध्यम से उत्पन्न होती है अर्थात् माता अपने शिशुओं को अतिरिक्त X-गुणसूत्र, पिता की तुलना में अधिक देती है। हीमोफीलिया रोग के लिए वंशावली अध्ययनों से भी इसी प्रकार के परिणाम प्राप्त हुए हैं।

'क्लिनेफिल्टर सिंड्रोम' के अन्य रूप भी लगभग 'क्लिनेफिल्टर डाइसोमी (47, XXY) से समानता रखते हैं। क्लिनेफिल्टर-II (ट्राइसोमी 48, XXXY) विकृति में मानसिक विक्षप्ता, पूर्व की तुलना में बढ़ जाती है। इसके साथ उद्गतहनुता, निम्न अंगुलि रेखा गणन, टेस्टीकुल एट्रॉफी आदि लक्षण उस व्यक्ति में विद्यमान पाये गये हैं। क्लिनेफिल्टर-III (टेट्रासोमी, 49, XXXXY) के उत्पन्न होने पर भी प्रमुख लक्षण पूर्ववत होते है लेकिन मानसिक विक्षप्तता, अधिक पायी जाती है तथा उद्गतहनुता क्लिनेफिल्टर सिंड्रोम-II की तुलना में भी अधिक विद्यमान होती है।

क्लिनेफिल्टर सिंड्रोम के अन्य गुणसूत्री संयोग भी प्रकाश में आये हैं जब अतिरिक्त X गुणसूत्र के साथ-2 इन पुरुषों में Y गुणसूत्र की अतिरिक्त विद्यमानता होती है, उदाहरण स्वरूप XXYY (48) एवं XXXYY (47 गुणसूत्र) आदि। इनमें मानसिक विक्षप्तता के साथ-साथ अन्य विशिरूट लक्षण भी अपने उच्च मानदण्ड पर होते हैं।

2. पैटो सिंड्रोम (Patau's Syndrome)

इस अलिंग सूत्री विकृति की खोज पैटो एवं उनके सहियोगियों ने सन् 1960 में की थी। यह विसंगति गुणसूत्र-13 की एक अतिरिक्त प्रति की विघमानता के फलस्वरूप घटित होती है।

पैटो सिंड्रोम (गुणसूत्र-13 की तीन प्रतियाँ, 47) के घटित होने से उस रोगों में शारीरिक विकृतियाँ उत्पन्न होती देखी गयी है। ऐसे व्यक्तियों के तालु (Palate)

एवं होंठ भग्न एवं दरारयुक्त होते हैं। अंगुलियां एक दूसरे पर चढ़ी हुई होती हैं तथा हथेली में मोंडों के चिन्ह भी असामान्य होते हैं। इनकी आँखे विकृत होती हैं। इनमें हृदय रोग, बहु अंगुलिता (Polydactyly) तथा हीमोग्लोबिन-F की अधिकता एवं हीमोग्लोबिन A_2 का संघनन कम होता है। इनके मस्तिष्क का आकार बड़ा एवं मानसिक रूप से यह व्यक्ति पूर्णविक्षिप्त होता है।

इस विकृति से प्रभावित व्यक्ति का जीवनकाल अत्यन्त छोटा होता है। ये रोगी अधिकाधिक औसतन 131.3 दिन (3-4 माह) तक जीवित रह पाते हैं। इनकी जन्मदर प्रति 2,200 जीवित जन्म हैं। इन गर्भों को धारण करने वाली स्त्रियों की औसत आयु 32.4 वर्ष है। इससे संकेत मिलता है कि इस रोग की वृत्ति पर आयु का कुछ प्रभाव पड़ता है। यद्यपि गुणसूत्री परस्थानीकरण (Translocation) में आयु का प्रभाव कम देखा गया है।

3. एडवर्ड सिंड्रोम् (Edward's Syndrome)

यह गुणसूत्री विकृति भी 'अलिंग सूत्री ट्राइसोमी' (47 गुणसूत्र) विसंगति है जो अलिंग गुणसूत्र-18 की समस्त तीन प्रतियों के उपस्थित होने के फलस्वरूप उत्पन्न होती है। इसकी खोज एडवर्ड एवं उनके सहयोगियो ने सन् 1960 में किया।

एडवर्ड सिंड्रोम (गुणसूत्र-18 की तीन प्रतियां, 'ट्राइसोमी 18, 47') से ग्रसित रोगी में दो निर्णायक एवं आधारभूत लक्षण उपस्थित होते है-1. छोटा व त्रिकोणत्मक मुख एवं 2. अत्यधिक लुंजपुंज अंगुलियाँ। अन्य पहचान-लक्षणों में नीचे लटका हुआ विकृत कान, जन्मजात हृदय-विकार, असामान्य पश्चकपाल (Occiput) आदि हैं। इनकी अंगुलियों में चाप की आवृत्ति अपेक्षाकृत अधिक (छः अंगुलियों से भी अधिक) होती है।

इनका जीवनकाल अत्यन्त छोटा होता है। यह जन्मे रोगी अध्ययनों से यह ज्ञात हुआ है कि समस्त जन्में रोगी औसत रूप से लगभग 102 दिन तक ही जीवित रह पाते हैं। अध्ययन से यह ज्ञात हुआ है कि समस्त जन्में एडवर्ड सिंड्रोम रोगियों में आधे 2 माह तक एक तिहाई 3 माह तक केवल 1-2 प्रतिशत रोगी ही जन्म से 10 वर्ष तक जीवित रह पाते हैं।

विकास एवं संवृद्धि सम्बन्धी अध्ययनों से यह ज्ञात हुआ है कि इसकी घटना

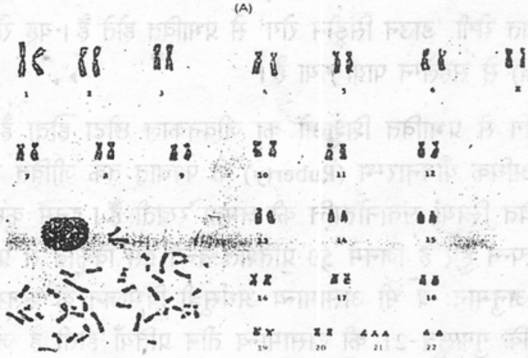
दर प्रति 4500 जन्म है। इसकी आवृत्ति पैटोसिंड्रोम की अपेक्षा कम है। इन गर्भ को धारण करने वाली माताओं की औसत आयु 32.8 वर्ष है जो यह इंगित करता है कि इस जन्मजात रोग पर माँ की आयु का प्रभाव पड़ता है।

4. डाउन सिंड्रोम (Down's Syndrome)

इस गुणसूत्री विकृति को 'मंगोलिज्म' (Mongolism) भी कहते है क्योंकि मंगोलॉयड के विशिष्ट लक्षण जैसे- इपीकेंथिक मोड़ आदि भी साथ-साथ विकसित देखे गये है। इससे इन रोगियों का आकार प्रकार, मंगोलॉयड के समान प्रतीत होता है। यह एक अलिंगसूत्री ट्राइसोमी विकृति है जो गुणसूत्र-21 की तीन प्रतियों की उपस्थित के फलस्वरूप घटित होती है।



(A)



(B)

चित्रः 28 डाउन सिंड्रोम (A) लक्षणों को दर्शाता व्यक्ति (B) कैरियोटाइप 47 गुणसूत्र जिनमे एक गुणसूत्र (21) अतिरिक्त

इस घातक गुणसूत्री विकृति के शिकार रोगियों के विशेष लक्षणों में से नेत्र वलन, चपटा मुखमण्डल, छोटे कान तथा छोटा कद है। इन रोगियों के आन्तरिक अंगों में भी असामान्यता पायी जाती है जैसे- हृदय विकार, विकृति पिट्यूटरी एवं थाइराइड ग्रंथि एवं विक्षिप्त मस्तिष्क। डरमैटोग्लिफिक अध्ययनों (Dermatoglyphic Studies) से इस रोग के अन्य सहचरी लक्षण ज्ञात हुए हैं। इनकी हथेली में एक सीमियन मोड़ (Simian Fold) (चार अंगुलियों तक हथेली के मध्य क्षैतिज मोड) पाया जाता है जो सामान्य व्यक्तियों में नहीं पाया जाता। ∠atd कोण 80 प्रतिशत डाउन व्यक्तियों में अधिकतम पाया जाता है। इस कोण का मान इन सभी व्यक्तियों में 57^0 अंश से ऊँचा होता है। इस प्रकार की उच्चअवस्था का यह कोण सामान्य व्यक्ति में विरले (7–9 प्रतिशत) ही पाये जाते हैं (पेनरोज़, 1959)।

इन रोगियों की हथेली में ट्राइरेडियस केन्द्रीय क्षेत्र में पाये जाते हैं। थिनर क्षेत्र पर कोई भी प्रतिरूप नही पाये जाते हैं। हथेली के अंगुलि क्षेत्र-III एवं IV के मध्य शंख प्रायः स्थित होते हैं। इनका रूधिर-संचरण दबाव अत्यधिक कम होता है।

डाउन सिंड्रोम (ट्राइसोमी 21, #21, 47) विकृति की आवृत्ति दर प्रति 500-700 जन्म है। यह जन्मदर पैटो सिंड्रोम एवं एडवर्ड सिंड्रोम की तुलना में बहुत अधिक है। इस रोग की आवृत्ति कॉकेसायड प्रजाति में सर्वाधिक (30/200) है। अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि संयुक्त राज्य अमेरिका के संस्थानों में जितने भी व्यक्तियों में मानसिक विक्षिप्तता (Mental Deficiency or Retardedness) पायी जाती है। उनमें से 15 प्रतिशत रोगी 'डाउन सिंड्रोम रोग' से प्रभावित होते हैं। यह रोग लुकीमिया (Leukaemia) से सहलग्न पाया गया है।

इस रोग से प्रभावित शिशुओं का जीवनकाल छोटा होता है। यह रोगी अधिक से अधिक यौवनारम्भ (Puberty) के पश्चात् तक जीवित रह पाते हैं। इससे प्रभावित स्त्रियां संतानोंत्पत्ति की क्षमता रखती हैं। इनमें कुछ स्त्रियों के बच्चे भी उत्पन्न हुए हैं जिनमें 50 प्रतिशत बच्चे इस विकृति से प्रभावित पाये गये हैं जो अनुमानः वे भी असामान्य अर्धसूत्री विभाजन के फलस्वरूप प्रकट होते हैं। चूँकि गुणसूत्र-21 की असामान्य तीन प्रतियाँ होती हैं जो मीयॉसिस विभाजन-I में प्रकट होती है। पश्चावस्था में इनमें से दो समजात गुणसूत्र एक केन्द्रक में चले जाते हैं तथा शेष एक दूसरे केन्द्रक में जाता है। इससे पुनः

एक केन्द्रक में गुणसूत्र-21 की दो प्रतियाँ पायी जाती है जो ट्राइसोमी-21 वाले रोगी बच्चे के जन्म का कारण बनती है।

'डाउन सिंड्रोम' विकृति अलिंग गुणसूत्र-21 की एक अतिरिक्त प्रति उपस्थित होने के फलस्वरूप उत्पन्न होती है, इसका पता सन् 1959 में लेज्यून (Lejeune) ने लगाया। इसके पश्चात् ही इस रोग को एक जन्मजात गुणसूत्री विकृति माना जाने लगा। यह गुणसूत्र, मानव-गुणसूत्रों में सर्वाधिक छोटा होता है जो समूह-G का एक सदस्य है। इस समूह में दो गुणसूत्र-21 एवं 22 होते हैं इन्हें सामान्य लक्षणों के आधार पर पहचानना कठिन होता है। इसे गुणसूत्र रंजकतकनीक (पट्टी प्रतिरूप) के आधार पर पहचाना गया। इसकी पहचान से सम्बन्धित संशयों के फलस्वरूप यद्यपि कुछ विद्वान इस अतिरिक्त गुणसूत्र को 22वां गुणसूत्र मानकर इस रोग को 'ट्राइसोमी-22' भी कहते हैं, लेकिन कोशिका विशेषज्ञ, आनुवंशिकीविद एवं चिकित्सक इसे 'ट्राइसोमी-21' कहने का ही निश्चय किया है।

डाउन सिंड्रोम या ट्राइसोमी-21 (47) का प्रमुख आनुवंशिक कारण युग्मजनन की प्रक्रिया में घटित होने वाली अपृथकता (Nondisjunction) घटना तथा परस्थानीकरण (Transloction) है। जब मीयॉसिस-I विभाजन में गुणसूत्र पृथक नहीं हो पाते, तो उस गुणसूत्र की अतिरिक्त प्रति युग्म के युग्मनज (Zygote) में पहुँच जाती है। युग्मनज का समय से पहले शीघ्रता से द्विखण्डित विभाजन (Cleavage Division) के फलस्वरूप भी 'डाउन सिंड्रोम' रोग की उत्पत्ति होती है। द्विखण्डन विभाजन निम्न रेखाचित्र में दर्शाया गया है :

सामान्य शुक्राणु + सामान्य अण्डाणु
(23) ↓ (23)
क्रियाविधिः→ सामान्य युग्मनज
(46)
↓ ↓
गुणसूत्र-21 की एक प्रति वाली कोशिका | गुणसूत्र-21 की दो प्रति वाली कोशिका
↓ ↓
परिणामः→ शीघ्र नष्ट हो जाती है | द्विगुणित होकर के संवृद्ध होती है

उपरोक्त क्रियाविधि के अतिरिक्त, परस्थानीकरण से भी 'डाउन सिंड्रोम' रोग उत्पन्न हो जाता है। इस क्रिया में किसी गुणसूत्र का एक अंश अथवा सम्पूर्ण भाग किसी 'विषमजाती गुणसूत्र' से संयुक्त हो जाता है। इस प्रकार का संयोग गुणसूत्र 21, 14 अथवा 15 के मध्य देखा गया है जिससे एक अतिरिक्त प्रति उत्पन्न हुई प्रतीत होती है।

नवीन अनुसंधानों से यह पता चला है कि यह रोग माँ की आयु से प्रभावित है। इसकी आवृत्ति गर्भवती माँ की आयु के साथ-साथ वृद्धि करती है। पिता की आयु से यह रोग प्रभावित नहीं होता। 40 वर्ष से अधिक आयु की महिलायें डाउन सिंड्रोम बच्चों को अधिकाधिक जन्म देती है। अधिक आयु की महिलाओं के कुल जन्मे बच्चों में औसतन 4 प्रतिशत डाउन सिंड्रोम से ग्रसित होते हैं लेकिन 40 वर्ष से अधिक आयु की माताओं के कुल जन्मे बच्चों में 40 प्रतिशत बच्चे डाउन सिंड्रोम के शिकार होते हैं। इसकी दर कम आयु की अर्थात् 20 वर्ष की माताओं में प्रति 3000 जन्मे बच्चे हैं जबकि अधिक आयु की माताओं (45 वर्ष आयु समूह) के जन्मे 40 बच्चों में एक बच्चा डॉउन सिंड्रोम से ग्रसित होता है।

इस प्रकार 'बहुल द्विगुणन' (Polysomy) लिंगसूत्र एवं अलिंगसूत्र दोनों प्रकार के गुणसूत्रों से सम्बन्धित विसंगति है जिसके प्रमुख उदाहरणों (रोगों) का उल्लेख किया गया और यह पाया गया कि अलिंग सूत्री पालीसोमी या बहुल द्विगुणन, लिंगसूत्री बहुल द्विगुणन के कई दृष्टान्त इतने असामान्य या विकृत प्रतीत नहीं होते। उदाहरणस्वरूप, स्त्रियों में X-गुणसूत्र की 'एक या दो' अतिरिक्त प्रतियों की विद्यमानता से भी ये (XXX एवं XXXX) जीवित रहने में सफल होती हैं यद्यपि ये मानसिक रूप से विक्षिप्त होती हैं। सम्भवतः ये स्त्रियाँ इसलिए जीवित रहती हैं क्योंकि अतिरिक्त लिंगसूत्र संघनित होकर के अक्रिय हो जाते हैं लेकिन यह सम्भावना पुरुषों में सर्वथा खरी नहीं उतरती क्योंकि जब किसी पुरुष में Y गुणसूत्र की 'अतिरिक्त' प्रति विद्यमान होती है तो उन पुरुषों (XYX) की अतिरिक्त Y गुणसूत्र के फलस्वरूप उनका शारीरिक कद औसत से काफी अधिक होता है।

(iii) अपघटित द्विगुणन (Nullisomy or Nullisomics)

यह गुणसूत्र विकृति उस समय घटित होती है जब किसी मनुष्य के द्विगुणित

समूह (2N) के किसी गुणसूत्र के 'दोनों युग्म (Pair)' शुक्राणुजनन अथवा अण्डजनन क्रियाविधियों के सम्पन्न होने पर अपघटित हो जाये। इस स्थिति में उस व्यक्ति में गुणसूत्रों की संख्या 44 होती है।

2. बहुगुणन (Polyploidy)

बहुगुणन या पॉलीप्लॉयडी, गुणसूत्र विकृति की वह अवस्था है जिस समय भ्रूण में गुणसूत्रों के द्विगुणित समूह (2N) से भ्रूणों या व्यक्तियों में त्रिगुणित समूह (3N) अथवा चतुर्गुणित (4N) अथवा पंचगुणित (5N) गुणसूत्रों के संयोग बन जाते हैं, जिन्हें क्रमशः त्रिगुणन (Triploidy-69), चतुर्गुणन (Tetraploidy-92) एवं पंचगुणन (Pentaploidy-115) गुणसूत्र विकार कहते हैं। यह सभी विकृतियाँ अन्यूनकारी युग्म के निर्माण से उत्पन्न होती है जो अर्धसूत्री कोशाविभाजन (Meiosis II) के पूर्णतः असफल होने के फलस्वरूप घटित होता है।

यह विकृतियाँ पादप जातियों में अधिकांशतया पायी जाती हैं। स्तनधारियों में यह विकृति घातक प्रभाव दर्शाती है। मानव में इस प्रकार की विसंगतियाँ अल्प संख्या में घटित पायी गयी। कुछ घटनाओं में त्रिगुणित शिशुओं (Triploidy-69) ने जन्म लिया, जो कुछ घंटों तक ही जीवित रह सके। जन्म के समय इन शिशुओं के शरीर गम्भीर रूप से विकृत [illegible]। अभी तक कोई भी चतुर्गुणित (Tetraploidy-92) या पंचगुणित (Pentaploidy-115) शिशुओं का जन्म प्रकाश में नहीं आया है क्योंकि चतुर्गुणित शिशुओं की अपेक्षा अधिक है तथा इस चतुर्गुणित से भी अधिक मुत्यु की सम्भावना पंचगुणित शिशुओं में होती है। इसीलिए स्वतः गर्भपात हुए भ्रूणों में चतुर्गुणित गुणसूत्र समूह वाले भ्रूणों की आवृत्ति अत्यल्प है। आज तक कोई भी पूर्ण विकसित या परिपक्व भ्रूण चतुर्गुणित गुणसूत्र रचना वाला नहीं पाया गया।

3. अगुणन (Haploidy)

यह गुणसूत्र विकार उस समय घटित हो जाता है जब अजन्में भ्रूण में गुणसूत्रों के समजात युग्म पूर्णतया अनुपस्थित होते हैं। इसके फलस्वरूप उस भ्रूण में अगुणित गुणसूत्र संख्या (N 23) होती है। इस विकृति का शिकार भ्रूण जल्दी ही नष्ट हो जाता है। ये विकार सूत्री एवं अर्धसूत्री दोनों प्रकार के विभाजनों के असफल

होने से उत्पन्न होते हैं। ज्ञातव्य हो कि ये दोनों विभाजन प्रक्रियायें युग्मजनन में घटित होती है। अगुणन का कारण युग्मनज का द्विखण्डन विभाजन (Cleavage or Split Division) भी होता है।

B. संरचनात्मक गुणसूत्र विपथन एवं विसंगतियाँ (Structural Choromosome Aberration & Disorders)

संरचनात्क गुणसूत्र विकृतियाँ गुणसूत्र की मौलिक इकाई जीन के स्तर पर घटित होती है। इसमें एक गुणसूत्र के जीन संस्थियों की संख्या में तथा उन जीन की रचना अथवा विन्यास में विचलन हो जाता है। इससे यह विचलित स्थिति माता-पिता एवं पूर्वजों से भिन्न लगती है। इस प्रकार का जीनी विपथन गुणसूत्री विसंगति का कारण बनता है। ये विसंगतियाँ निम्न चार प्रकार की होती हैं :

1. अपघटन (Deficiency or Deletion)
2. द्विगुणन या वृद्धि (Duplication)
3. परस्थानीकरण (Translocation)
4. विलोमन (Inversion)

1. अपघटन या विलोपन (Deletion)

जब गुणसूत्र में से एक खण्ड अथवा भुजा टूटकर विलुप्त हो जाती है तो गुणसूत्री खण्ड की इस क्षति को अपघटन या विलोपन कहते हैं। खण्डित भाग सेंट्रोमियर के न होने पर नष्ट हो जाता है। इस प्रकार की गुणसूत्री क्षति दो विधियों से होती है। एक तो जब गुणसूत्र का अग्रीय भाग (Terminus) का विलोपन होता है। इसमें गुणसूत्र का विखण्डन एक ही बिन्दु पर होता है तथा खण्डित भाग शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। दूसरे गुणसूत्र का अन्तर्क्षेत्रीय भाग दो बिन्दूओं से खण्डित होता है। यह दोनों ही स्थितियाँ अर्धसूत्री विभाजन की पूर्वावस्था-I : के पैकीनेमा (Pachynema) में घटित होती हैं। इसका कारण स्वतः अथवा प्रेरित उत्परिवर्तन हो सकता है।

मानव में विलोपन से गुणसूत्री विकृति जन्म ले लेती है। विलोपन की यह स्थिति गुणसूत्र-5 में देखी गयी है। इसके प्रभाव से गुणसूत्र-5 की एक लम्बी भुजा का विलोपन हो गया। इस विकृति को 'क्राई-ड्यू-चैट-सिंड्रोम', कहा जाता है। इसकी

खोज जेरॉम लेज्यून (Jerome Lejeune) ने सन् 1963 में किया था। इस विकृति से प्रभावित व्यक्ति का चेहरा गोल तथा चन्द्रमा के समान होता है। यह मानसिकरूप से विक्षिप्त होता है। इस विकृति का नाम इसके एक विशेष लक्षण पर पड़ा जिससे इस रोग का शिकार बच्चा मंद आवाज में बिल्ली की समान चिल्लाता है। इनका सिर छोटा होता है। आँखे मुखमण्डल में अपेक्षाकृति बड़े आकार की होती है।

'क्राई-ड्यू-यैट सिंड्रोम' गुणसूत्री विकार से ग्रसित बच्चे अधिक से अधिक 30 वर्ष की आयु तक जीवित रह सके हैं। अतः इससे प्रभावित रोगी का जीवनकाल अपेक्षाकृत कम होता है।

इसी प्रकार 21वें गुणसूत्र में विलोपन के कारण 'ल्यूकीमिया (Leukaemia)' नामक एक प्रकार की गम्भीर कैंसर परक गुणसूत्री विकृति उत्पन्न हो जाती है। इसकी आवृत्ति दर कुल उत्पन्न बच्चों की 5 प्रतिशत है। गुणसूत्र-22 के कुछ भाग का विलोपन 'ल्यूकीमिया' विकृति से सहसम्बद्ध है। इस प्रकार का अध्ययन पीटर नावेल एवं डी. ए. हांगरफोर्ड (Peter Nowell and D. A. Hongerford) ने सन् 1960 में फिलाडेल्फिया नगर में किया था। अतः इस प्रकार के रोग को 'फिलाडेल्फिया सिंड्रोम (Philadelphia Syodrome)' के नाम से जाना जाता है। यह रोग व्यक्ति के श्वेत रक्त कणिकाओं (Leukocytes) में मिलॉयड ल्यूकीमिया (Myeloid Leukaemia) के साथ पाया गया है।

2. द्विगुणन (Duplication)

जब गुणसूत्र में किसी बिन्दु या स्थान पर सामान्य अगुणित जीन विन्यास के अतिरिक्त जीन का एक संकुल और होता है तो इस अवस्था को द्विगुणन (Duplication) कहते हैं। यह अतिरिक्त जीनसंकुल किसी गुणसूत्र से विखण्डित हो कोशिका द्रव्य में नष्ट नहीं होता अपितु माइटॉसिस विभाजन की प्रक्रिया में पुनः प्रकट होकर के समजात गुणसूत्र से संयुक्त हो जाता है। मानव में इस क्रियाविधि से प्रमुख गुणसूत्री विकार अभी प्रकाश में नहीं आये हैं।

3. परस्थानीकरण या स्थानान्तरण (Translocation)

गुणसूत्र स्थानान्तरण मीयॉसिस I एवं II में घटित होता है। इसमें या तो गुणसूत्र का कोई एक खण्ड टूटकर किसी अन्य विषमजाती गुणसूत्र में संयुक्त हो जाता है।

गुणसूत्र की रचना का स्थानान्तरण प्रायः पारस्परिक (Reciprocal) होता है जिसके परिणामस्वरूप यह दो विषमजातीय गुणसूत्रों के खण्डों में स्थानान्तरण हो जाता है। इस प्रकार की घटना की उत्पत्ति विषमजातीय गुणसूत्रों के खण्डों में विनिमय से होता है लेकिन जीन विनिमय (Crossing Over) के समान समजातीय गुणसूत्रों में विनिमय नहीं होता।

मानव गुणसूत्रों में स्थानान्तरण की विभिन्न घटनायें देखी गयी हैं। उदाहरण स्वरूप गुणसूत्र-15 एवं गुणसूत्र 21 के युग्मों के मध्य का स्थानान्तरण इसी कोटि का है। गुणसूत्र 15 की छोटी भुजा सेंट्रोमियर बिंदु से खण्डित होने से गुणसूत्र-21 की लम्बी भुजा (जो इसके निकटस्थ है) में विखण्डन हुआ। इन विषमजातीय गुणसूत्रों के इस परस्पर विनमय से गुणसूत्र-21 का बहुत सा भाग गुणसूत्र-15 में संयोजित हो गया। इस प्रकार एक गुणसूत्र (15) का आकार असामान्य रूप से वर्धित हो गया तथा दूसरे (21) का छोटा हुआ।

इस प्रकार का परस्पर जीनी विनिमय (Translocation) अर्थात् स्थानान्तरण शुक्राणु एवं अण्डाणु में घटित हो सकता है जिससे एक युग्मनज में साधारण रूप से इन्हीं गुणसूत्रों-15 एवं 21 की दो-दो प्रतियाँ होती हैं लैकिन असामान्य रूप से छोटा होने के फलस्वरूप इनका एक गुणसूत्र (21) विलुप्त प्रतीत होता है जिससे इस बच्चे में गुणसूत्रों की संख्या 45 होती है। इस एक गुणसूत्र (21) की कमल से यह लक्षण 'डाउन सिंड्रोम' के सदृश्य दिखने लगता है। यदि डाउन सिंड्रोम का ठीक से निरीक्षण न हो तो इन दोनों में भेद स्थापित करना कठिन कार्य है। यह स्थानान्तरण गुणसूत्र-5 एवं 7 में भी गुणसूत्री विकृति उत्पन्न करता है।

4. विलोमन (Inversion)

जब गुणसूत्र की जीनी संख्या में परिवर्तन न हो करके उसकी रचना में परिवर्तन हो तो उसे विलोमन कहते हैं, जिसमें किसी जीन समूह के 180^0 अंश पर उलट जाने से जीनों का क्रम परिवर्तित हो जाता है। उदाहरण स्वरूप यदि किसी गुणसूत्र खण्ड पर जीन क्रम 'ABCDEFGH' है। यह A एवं G से टूट करके 180^0 पर उलट जाये तो नवर्निमित जीन समूह का क्रम 'ABFEDCGH' हो सकता है। विलोमन दो प्रकार का होता है- पेरासेंट्रिक (Peracentric) एवं पेरीसेंट्रिक (Pericentric)

प्रथम प्रकार के विलोमन गुणसूत्र सेंट्रोमियर अनुपस्थित होता है। जब कि दूसरे प्रकार के विलोमन (पेरीसेंट्रिक) में गुणसूत्र खण्ड में सेंट्रोमियर होता है। अतः इसमें सेंट्रोमियर सहित उस खण्ड का विलोमन होता है।

समान विलोमन वाला गुणसूत्र युगल अर्धसूत्री विभाजन के समय सामान्य रूप से प्रकट होता है लेकिन यह युग्मकों के बनने के समय घटित होता है। पेरीसेंट्रिक विलोमन जीनी विनिमय (Crossing Over) के उपरान्त घटित होता है जब गुणसूत्रों अथवा जीनों में द्विगुणन अथवा कमी होती है। जीन की कमी वाले युग्मक कालान्तर में नष्ट हो जाते है जब कि द्विगुणित युग्मक जीवित रहते हैं।

पेरासेंटिक विलोमन से उत्पन्न मानव विकार अभी तक नहीं देखे गये हैं लेकिन पेरीसेट्रिक विलोमन के फलस्वरूप एक महिला ने एक जन्मजात असामान्य बच्चे को जन्म दिया। जो अध्ययन से यह ज्ञात हुआ कि गुणसूत्र-10 के पेरीसेंट्रिक विलोमन के फलस्वरूप यह विकृति उत्पन्न हुई है (राथवेल, Rothwell, 1978)।

अन्य आनुवंशिक विकृतियाँ

यदाकदा उपरोक्त क्रियाविधियों के अतिरिक्त किसी अज्ञात आनुवंशिक कारण से भिन्न-भिन्न प्रकार के जीनी रचना वाली विकृतियाँ उत्पन्न होती हैं जो इस जटिलता के फलस्वरूप मोजेसिज्म (Mosaicism) के नाम से जानी जाती है। ये व्यक्ति भिन्न जीनी रचना वाली शारीरिक कोशिकाओं वाला होता है।

एक मोजैइक (Mosaic) व्यक्ति प्रायः एक हर्माफ्रोडाइट (Hormaphrodite) होता है। हर्माफ्रोडाइट उस व्यक्ति को कहते हैं जो जैविक रूप से शुक्राणु एवं अण्डाणु दोनों निर्मित कर सके। यद्यपि यह लक्षण मानव में विशिष्ट रूप से तो नहीं पाये जाते जैसे कि केचुए में, लेकिन प्रायः उन मानवों को इसके अन्तर्गत रखते हैं जो इसके बीच की स्थिति को दर्शाते है। कुछ हर्माफ्रोडाइट में इन मानवों की कुछ कोशिकाओं में XY लिंगसूत्र होते है जब कि कुछ में XO लिंगसूत्र पाये जाते है। इस प्रकार की जीनी रचनावाले व्यक्ति जिन्हें मोज़ैइक कहते हैं, इनमें एक कोशिकीय रेखा (Unicell Line) के स्थान पर दो कोशिकीय रेखायें (Dicell Line) होती है। इस प्रकार की दो कोशिका रेखीय गुणसूत्रों की उत्पत्ति सम्भवतः भ्रूण के सूत्री विभाजन में हुई त्रुटि के फलस्वरूप होती है। सूत्री विभाजन में यदिं एक कोशिका के 'Y'

गुणसूत्र की क्षति हो जाये तो उससे द्विगुणित कोशिकायें 'XO' लिंगसूत्रों की रेखा का वर्धन करेंगी तथा दूसरी ओर XY लिंगसूत्र वाली रेखा की वृद्धि होगी। इस प्रकार कुछ कोशिकाओं में Y गुणसूत्र की उपस्थिति तथा कुछ में अनुपस्थिति से भिन्न प्रकार के ऊतक व अंगों का निर्माण होता है जो विरोधाभासी जननांगों का निर्माण करते हैं। XX एवं XO लिंगसूत्री मोजेइक व्यक्ति टर्नर सिंड्रोम के लक्षणों को व्यक्त करता है, जबकि XXY एवं XX लिंगसूत्री मोजैइक व्यक्ति क्लिनेफिल्टर सिंड्रोम के लक्षणों को प्रकट करता है।

इसके अतिरिक्त कुछ और अस्वाभाविक तथा जटिल आनुवंशिक विकृतियाँ जीन उत्परिवर्तन तथा गुणसूत्र विपथन के फलस्वरूप उत्पन्न होती हैं। उदाहरणस्वरूप 'फैंकानी एनीमिया (Fanconi's Anemia)', 'ब्लूम सिंड्रोम (Bloom Syndrome)' तथा 'लुइस-बार सिंड्रोम' (Louis-Bar-Syndrome)' में सभी विकृतियाँ मेंडलीय अप्रवल अंलिगसूत्री वंशागति विधि से पीढ़ी दर पीढ़ी पारगमित होती हैं। इनके जीनी अभिव्यक्ति निश्चित जीनी प्ररूप एवं लक्षण प्ररूप अब भी अज्ञात हैं।

❑❑❑

6

आनुवंशिक अध्ययन-प्रविधि
(Methods of Genetic Study)

गत अध्याय में उन परिसीमाओं एवं बाधाओं का उल्लेख किया था जो मानव के आनुवंशिक अध्ययन से सम्बद्ध हैं। इन सीमाओं के फलस्वरूप ही मानव में वंशागति का अध्ययन विगत शताब्दी के दूसरे दशक में आरम्भ हो सका। व्यवस्थित रूप से यह अध्ययन तभी आरम्भ हो सका जब 1920 में हाल्डेन (Haldane) फिशर (Fisher) एवं राइट (Wright) आनुवंशिकी के सामान्य विचारधाराओं का मानव जनसंख्या के संदर्भ में विश्लेषण करके इसकी मानव-विकास में उपयोगिता को समझाया। इसके पूर्व मार्गन (1926) वर्न्सटीन (1924) एवं हार्डी-वीनवर्ग (1908) ने मानव आनुवंशिकी के आधारभूत पहलुओं को प्रकाश में ला चुके थे। इसके उपरान्त मानव की वंशागति के अध्ययन 1950 तक होते गये तथा नई-नई आनुवंशिक अध्ययन बाधाओं का समाधान तलाशा जाता रहा। इसके अध्ययनों की पूर्व विधियाँ भी संशोधित होती गयी, तथा दूसरी ओर 1950 के पश्चात् मानव के आनुवंशिक अध्ययन की कुछ नवीन विधियाँ प्रकाश में आयीं। इसके आधार पर मानव आनुवंशिकी के नये आयाम प्रकाश में आने लगे तथा प्रकृति एवं पर्यावरण, वातावरण एवं वंशागति आदि मानव आनुवंशिकी की मौलिक समस्याओं के निदान खोजे जाने लगे।

इस प्रकार मानव का अध्ययन जो 1930 के पूर्व असम्भव प्रतीत होता था, वह उसी मानव के अथक प्रयासों से सम्भव हो गया। इसके लिए आनुवंशिकविदों को मानव समाज एवं अध्ययन प्रयोगशाला के मध्य की दूरी को कम करना पड़ा। मानव समाज को ही प्रयोगशाला का एक हिस्सा मानना पड़ा। अतः जिन विधियों से मानव वंशागति के अध्ययन की समझ सुदृढ़ हुई हैं, जिनके प्रयोग से मानव को आनुवंशिक विश्लेषण करना आज सुगम हो सका है, वे विधियाँ या अनुवंशिक आंकड़े संग्रह करने के तरीके निम्नवत हैं :

1. वंशावली विधि (Genealogical Study)
2. यमज विधि (Twin Method)
3. पारिवारिक विधि (Family Method)
4. दत्तक बालक अध्ययन विधि (Foater Children Study Method)
5. अनाथ बालक अध्ययन विधि (Orphan Children Study Method)
6. जैव-रासायनिक विधियाँ (Bio Chemical Methods)
7. प्रतिरक्षा वैज्ञानिक विधि (Immunological Method)
8. गुणसूत्र विश्लेषण (Chromosomal Analysis)
9. गुणसूत्र पुर्नसंयोजन या रिकाम्विनेंट तकनीक (Recombinant DNA Techinque)

1. वंशावली विधि
(Genealogical or Pedigree Method)

मानव समाज से आनुवंशिक आंकड़े एकत्रित करने की यह एक सरल विधि है। इस विधि से वंशानुगत लक्षणों की अभिव्यक्ति को सरलता से अंकित कर लेते हैं। इन आंकड़ों का अंकन एक वंश की कई पीढ़ियों तक किया जा सकता है। इस तकनीक से दो वंशों, जनसंख्याओं, प्रजातियों के मध्य किसी लक्षण का तुलनात्मक अध्ययन भी किया जा सकता है। एक ही लक्षण की अभिव्यक्ति भिन्न-भिन्न वातावरण में अभिव्यक्ति एक वंशावली पर पड़े प्रभाव सम्बन्धी आंकड़ों को एक वंशावली के माध्यम से सुगमतापूर्वक प्रदर्शित किया जा सकता है। एक ही वंश के दो भिन्न या विभिन्न पर्यावरण में रह रहे परिवारों की वंशावली बनाई जा सकती है तथा साथ ही साथ इसके विपरीत दो भिन्न या विभिन्न वंशों जो एक ही वातावरण

में रह रहे हैं, उनके वंशागत लक्षणों को एक वंशावली में तुलनात्मक रूप से अंकित किया जा सकतां है। विभिन्न रोगों की विभिन्न वातावरण एवं विभिन्न वंशों में हुई अभिव्यक्ति को वंशावलियों में लिपिबद्ध किया जा सकता है। इस प्रकार फ्रांसिस गाल्टन (Francis Galton) के द्वारा सुझाई यह विधि किसी लक्षण की वंशागति का अध्ययन करती है जो पीढ़ी दर पीढ़ी पारगमित होती हैं। चूँकि किसी प्रयोग की आवश्यकता के अनुरूप दो स्त्री पुरुष में लैंगिक सम्बन्ध स्थापित नहीं कराये जा सकते। अतः वंशावली तकनीक भी अनुवांशिक लक्षणों के आंकड़े उस वंश के व्यक्तियों से एकत्रित किये जाते हैं। उन व्यक्तियों में से किसी एक को सूचनादाता (Informant) मान लिया जाता है। इन सूचनाओं की विश्वसनीयता को गम्भीरता से जाँचा जाता है। इसके लिए उस समाज के किसी विश्वसनीय एवं जानकार व्यक्ति से इनकी पुनर्जांच की जाती है। आंकड़े संग्रहीत करने के लिए वंशावली निम्नांकित पद्धति से बनाई जाती है :

1. जिसकी वंशावली बनानी हो, उस व्यक्ति का नाम एवं स्थायी पता, उम्र, जाति, उपजाति, धर्म व्यवसाय आदि सबसे ऊपर गहरे रंग अथवा लाल रंग से लिख लेना चाहिए।

2. परिवार या वंश की सूचनाओं को जिससे ग्रहण करे रहे है, उस सूचना दाता को इगो (Ego) से सम्बोधित करना चाहिए। इसे उस वंशावली का केन्द्रीय व्यक्ति मानना चाहिए।

3. वंशावली में एकत्रित आंकड़ों की वस्तुनिष्ठता, विश्वसनीयता तथा गोपनीयता बनाये रखने के लिए निम्नलिखित प्रतीकों (Symbols) को प्रयोग किया जाता है :

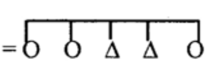
पुरुष (male) = Δ or □

यमज = 

स्त्री (Female) = O

लक्षण से प्रभावित व्यक्ति =

विवाह सम्बन्ध = Δ O अथवा Δ = O

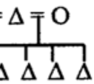
सहोदर = 

एक पीढ़ी = ___________

मृत व्यक्ति = ∆̸

अज्ञात = ◇

इगो (Ego) = ↑

माता-पिता तथा बच्चे = 

अज्ञात संख्या एवं लिंग = ×

अवैध सम्बन्ध = ...

4. इगो की व्यक्तिगत पहचान को निर्धारित प्रतीक से प्रदर्शित करना चाहिए।

5. इगो की पत्नी को दांये दर्शाना चाहिए। उसके बच्चों को नीचे एक क्षतिज रेखा से दर्शाना चाहिए। पुत्र एवं पुत्रियों को आयु के आधार पर दाँये से बाँये रखना चाहिए। सबसे बड़ी आयु के पुत्र-पुत्रियों को बायें तथा सबसे छोटी सन्तति को पूर्णतः दाये रखे। इनके लिए निर्धारित प्रतीकों को एक ऊर्ध्व रेखा से पीढ़ी रेखा (——) से मिलायें। अन्त में, इस क्षैतिज रेखा के मध्य विन्दु को ऊपर स्थित माता-पिता के वैवाहिक प्रतीक (= अथवा ⎵) से मिला देना चाहिए।

6. पीढ़ी के क्रम को रोमन संख्यायें - I, II, III .... तथा व्यक्तियों को अन्तर्राष्ट्रीय संख्यायें - 1, 2, 3 .... से दर्शाना चाहिए।

7. प्रत्येक परवर्ती पीढ़ी को नीचे की ओर, पूर्ववर्ती पीढ़ी को ऊपर की ओर प्रदर्शित करना चाहिए तथा एक पीढ़ी के समस्त सदस्यों को एक ही स्तर पर रखना चाहिए।

8. इगो (Ego) के भाई एवं बहनों को आयु के आधार पर दायें एवं बायें दर्शाना चाहिए।

9. इगों के माता एवं पिता को उससे उच्च स्तरीय पीढ़ी में रखना चाहिए तथा इगो के प्रतीक/चिन्ह को उसके माता-पिता के वैवाहिक चिन्ह (=) से संयुक्त कर देना चाहिए।

10. प्रथम विवाह के लिए प्रयुक्त चिन्ह '=', है तथा द्वितीय, तृतीय विवाह के लिए प्रयुक्त चिन्ह है। इसे सदैव नीचे से जोड़ना चाहिए।
11. रोग या विशिष्ट लक्षण के लिए किसी रंग का प्रयोग करना चाहिए। भिन्न लक्षण के लिए भिन्न रंग का प्रयोग करना चाहिए। इन रंगों को त्रिकोण अथवा वृत्त (O) को भर देना चाहिए। संम्भव हो तो प्रत्येक लक्षण हेतु भिन्न वंशावली बनाना चाहिए। विषमयुग्मजी अथवा लक्षण वाहक व्यक्तियों के चिन्ह को डॉट से दर्शाना चाहिए।
12. व्यक्तियों के सभी सम्बन्धों को निर्धारित मापदण्डों से ही प्रदर्शित करना चाहिए।

इस प्रकार उक्त वर्णित वंशावली विधि से अनेकों अध्ययन किये गये। उदाहरण स्वरूप, हीमोफीलिया रोग हेतु ब्रिटेन की महारानी विक्टोरिया के वंश की वंशावली बनाई गयी, जिससे हीमोफीलिया के लिये उत्तरदायी जीन की वंशागति को समझने में सहायता मिली। इसी प्रकार अमेरिका के पार्क्यूपाइन मनुष्य स्विटज़रलैण्ड का जीरो परिवार, न्यूयार्क के ज्यूक्स आदि महत्त्वपूर्ण एवं ख्याति लब्ध वंशावली हैं जिनके आधार पर आनुवंशिकी की विविध क्रिया विधियों को समझा जा सका है। अतः वंशावली तकनीक से वर्षों से अध्ययन किया जा रहा है। लेकिन यह अध्ययन विधि कुछ सीमाओं से भी बँधी है। यदि किसी लक्षण या विकृति की जाँच परख तथा साक्षात्कार करने का जनप्रिय तरीका अपनाया जाये तथा अन्य विधियों के साथ-साथ प्रयोग की जाये, तो यह विधि एक पूर्ण विधि है।

2. यमज विधि
(Twin Method)

यमज विधि का प्रस्ताव सर्वप्रथम फ्रांसिस गाल्टन ने 1975&76 में वंशागति एवं पर्यावरण की समस्याओं के निदान के लिए किया। गाल्टन, जो चर्ल्स डार्विन के चचेरे भाई थे, उन्होंने अपने ग्रंथ- 'इन्क्वायरीज इन्टू दि ह्यूमन फैकल्टी' (Enquiries into the Human Faculty) में इस विधि का विस्तृत उल्लेख करते हुए तत्कालीन प्रकृति एवं पर्यावरण (Nature and Nurture) समस्या के हलों को खोजने का प्रयास किया। इसके पश्चात् अन्य विद्वानों ने भी इसका उपयोग किया। सन् 1924 में सिमेन्स (Simens) ने इसके अध्ययन के कई आयामों पर बल दिया तथा

इसे आनुवंशिक अध्ययन की एक ठोस विधि के रूप में स्थापित किया। इसके अथक प्रयासों से सामान्य विविधताओं के अध्ययन सम्भव हो सका। इन्होंने एक युग्मनज तथा द्वियुग्मनज यमजों के मध्य अन्तर स्थापित करने की चेष्टा की।

सिमेन्स के अनुसार यमज विधि इस तथ्य पर आधारित है कि एकयुग्मनज यमजों की जैविक विशिष्टता है कि वे एक ही युग्मनज के विभाजन के फलस्वरूप उत्पन्न होते है, जिससे उनका आनुवंशिक स्वरूप एकरूप (Identical) होता है। यदि उनके लक्षण प्ररूप (Phenotype) में कोई अन्तर है तो वे पर्यावरणीय बलों के कारण उत्पन्न हुए हैं। इस दृष्टिकोण से एक लक्षण के जीनी प्ररूप का स्तर तथा पर्यावरणी बलों के कारण उत्पन्न विभेद दोनों ही एकयुग्मनज यमज (Monozygotic Twins) की समानताओं पर निर्भर करता है। दूसरी ओर द्वियुग्मनज यमज (Dizigotic Twins) जिसके आधे जीन एक जैसे होते हैं, वे इस अध्ययन हेतु एक नियन्त्रक (Control) की भूमिका का निर्वहन करते हैं।

यमजों के प्रकार
(Types of Twins)

यमज दो प्रकार के होते हैं- एकयुग्मनज (Monozygotic) एवं द्वियुग्मनज (Dizygotic)। एकयुग्मनज यमज (MZ) वे यमज हैं जो एक युग्मनज (Zygote) से उत्पन्न होते हैं। भ्रूण (एकयुग्मनज यमज) के पृथक अम्नियॉन (Amnion) एवं कोरियान (Chorion) झिल्ली होती है। यदि यह विभाजन विलम्ब से होता है तो वह पृथक अम्नियॉन तो रखता है लेकिन कोरियान झिल्ली एक ही होती है। यदि इससे भी और विलम्ब से विभाजन हो तो दोनों यमज एक ही अम्नियॉन में जन्म तक रह सकते हैं। इस प्रकार के एकयुग्मनज यमज प्रायः पशुओं में होते हैं। सामान्य एक युग्मनज यमज विकास की आरम्भावस्था में पृथक हो जाते हैं। यदि इनमें विभाजन कार्य अधिक विलम्ब से आरम्भ हो तो यह विभाजन प्रायः अपूर्ण रह जाता है तथा जुड़े हुए यमज जन्म लेते हैं। जिन्हें साइमीज (Siamese) कहते हैं। इस प्रकार के दृष्टान्त अत्यल्प हैं। ये जन्म के पश्चात् सामान्य व्यक्तियों की तरह जीवन व्यतीत नहीं कर पाते। कुछ ही समय पश्चात् प्रायः मृत हो जाते हैं। इन्हें शल्य चिकित्सा से भी पृथक किया जा सकता है। सर्वाधिक चर्चित साइमीज सन् 1811 में थाइलैण्ड में जन्मे। इनके नाम **चैंग** तथा **इंग** थे। जन्म के पश्चात् इनकी माँ ने शल्य चिकित्सा

के चिकत्सकों के अनुरोध को अस्वीकार कर दिया था। **इनके माता** पिता चीन के मूल निवासी थे। ये दोनो यमज एक ऊतक से स्टर्नम **मे निम्न भाग** एवं नाभि के मध्य एक ऊतक से जुड़े हुए थे। इन यमजों में कुछ जैविक **विविधतायें थी** जैसे चैंग प्रौढ़ावस्था तक इंग से 1 इंच छोटा था। कुछ सीमा तक **बहरा था तथा** उग्र व्यवहार का था। दूसरे ओर इंग लम्बा, स्वस्थ्य एवं शान्त स्वभाव **का था**। 18 वर्ष की आयु पर वे संयुक्त राज्य अमेरिका चले आये। लगभग 42 वर्ष की आयु पर दोनों ने दो स्त्रियों से विवाह किया। इनसे 22 बच्चे जन्मे। इनमें 12 इंग के तथा 10 चैंग से उत्पन्न हुए थे। अन्ततः कैरोलिनास में बस गये जहाँ तम्बाकू की खेती करते थे। एक बार इनकी पत्नियों ने झगड़ा किया जिससे परिवार बिखर गये। ऐसी परिस्थिति में तीन दिन तक एक घर में तथा तीन दिन दूसरे घर में क्रमवार वे व्यवतीत करते थे। एक दिन दोनों में झगड़ा चेंग के अधिक मदिरा पान कर लेने से हुआ। 63 वर्ष की आयु पर चेंग की न्यूमोनिया (Pneumonia) होने से मृत्यु हो गयी। उसके केवल दो घंटे बाद इंग भी जीवित न रह सका तथा तुरन्त अधिक कमजोर हो गया और मृत्यु हो गयी। ऐसा माना जाता है कि इंग की मृत्यु सद्मा एवं गहरी शंका से हुई। मरणोपरान्त 'पोस्टमार्टम' से यह देखा गया कि वे 10 से.मी. चौड़ी एक 'लीवर' ऊतक की पट्टी से स्टर्नम एवं नाभि के मध्य जुड़े थे।

द्वियुग्मनज यमज दो अण्डाणु एवं दो शुक्राणु से निषेचित पृथक दो युग्मनज (Zygote) के विकसित होने से उत्पन्न होते हैं। ये दो अण्डाणु कभी-कभी एक ही समय दोनों अण्डाशयों से निर्गत हो जाते हैं, जो दो शुक्राणुओं से संयुक्त होकर के पृथक-पृथक युग्मनज का निर्माण करते हैं। कभी-कभी बहुल अण्डाणुओं के निर्गत होने से त्रियुग्मनज तथा चतुर्युग्मनज जुड़वा बच्चे उत्पन्न हो जाते हैं। कभी-कभी इस प्रकार के यमज दो भिन्न-भिन्न पुरुषों के शुक्राणुओं से उत्पन्न हो जाते हैं। गेयर (Gayer) ने 1940 में एक दृष्टान्त प्रस्तुत किया इनमें ये द्वियुग्मनज यमज या भातृज यमज जो एक नाजी आस्ट्रिया के निवासी यहूदी पिता तथा गैर-यहूदी माँ की सन्तान थे। माँ के लैंगिक सम्बन्ध किसी अन्य पुरुष से भी थे। न्यायिक जाँच होने पर पता चला कि यमज पुत्र वास्तविक (सामाजिक) पिता से उत्पन्न शुक्राणु से जन्मा जब कि यमज पुत्री माँ के सम्भाव्य प्रेमी से उत्पन्न हुई। इसकी जाँच के लिये रुधिर वर्गों ABO, Rh तथा MN साक्ष्यों का उपयोग किया गया।

इस प्रकार द्वियुग्मज या भातृज यमजों में अनुवांशिक सम्बन्ध भाई-बहन (Sibs) के समान होता है क्योंकि ये भी भिन्न-भिन्न अण्डाणु एवं शुक्राणु द्वारा निषेचित युग्मनज से उत्पन्न होते हैं। द्वियुग्मनज यमज सदैव अपने अम्न्यॉन तथा कोरियॉन झिल्ली तथा प्लासेंटा पृथक रखते हैं।

यमज जनन की आवृत्तियाँ
(Frequencies of Twin Birth)

संसार के विभिन्न मानव समूहों में यमजों (Twins) की आवत्तियों में विविधता पायी जाती है। साधारतया यमज सर्वाधिक अल्प **संख्या** में दक्षिण अमेरिका तथा मंगोलॉयड प्रजाति में (0.8%) तथा सबसे अधिक बेल्जियम के निवासियों में (1.78%) पाये जाते हैं। एँ. वॉगैल एवं ए. जी. माटूल्स्की (F. Vogel and A. G. Motulsky) ने प्रापिंग तथा क्रूगर (1976) के अध्ययन को अपनी पुस्तक 'ह्यूमन जेनेटिक्स प्राब्लम एण्ड अप्रोचेज' में प्रकाशित किया। बुलमर (1970) ने भारतीय उप-महाद्वीप एवं लखनऊ नगर की माताओं में यमजों की जनन आवृत्ति क्रमशः 11.6 (MZ-4.3 एवं DZ-7.3) तथा 13.2 (MZ-5.2 एवं DZ-8.0) आंकी। इनमें कतिपय देशों के आंकड़ो को निम्न तालिका में दर्शाया जा रहा है :

क्र.सं.	राष्ट्र समूह	एकयुग्मनज (प्रति 1000 जन्म)	द्वियुग्मनज (प्रति 1000 जन्म)
1.	संयुक्त राज्य अतेरिकाई श्वेत	3.85	7.44
2.	संयुक्त राज्य अमेरिकाई नीग्रो	4.08	10.01
3.	संयुक्त राज्य अमेरिकाई चीनी	4.80	2.20
4.	इंग्लैण्ड (वेल्स)	3.60	8.90
5.	इटली	3.70	8.60
6.	आस्ट्रिया	3.40	7.50
7.	फ्रांस	3.70	7.10
8.	स्विटजरलैण्ड	3.60	8.10
9.	स्पेन	3.20	5.90
10.	पुर्तगाल	3.60	5.60
11.	जर्मनी	3.30	8.20
12.	स्वीडन	3.20	8.60
13.	भारत	4.30	7.30

चूँकि द्वियुग्मनज यमजों में कुछ यमज समान लिंग के भी होते हैं अतः दोनों प्रकार के यमजों की आवृत्ति पृथक करना सरल नहीं है। यमजों की आवृत्ति को ज्ञात करने के लिए वाइनबर्ग (Weinberg) ने एक सूत्र सुझाया, जिसमें उन्होंने द्वियुग्मनज एवं एक-युग्मनज यमजों के मध्य किसी समूह में जन्म का क्या अनुपात होगा, इसे समझाने का प्रयत्न किया है। उन्होंने इस आधार पर यह विधि स्थापित की कि एक युग्मनज यमज सदैव एक लिंग के होते हैं जबकि द्वियुग्मनज बच्चों में से लगभग आधे यमज एक लिंग के तथा आधे असमान लिंग के होते हैं। इसलिए उनके अनुसार इस तथ्य को सूत्रबद्ध करते हुए एक जनसंख्या के कुल यमजों में एक युग्मनज तथा द्वियुग्मनज यमजों की समानुपातिक आवृत्ति को निम्न सूत्रों से ज्ञात किया जा सकता है :

1. द्वियुग्मनज की आवृत्ति = 2 x DZ एक लिंग वाले
2. एक युग्मनज की आवृत्ति = कुल यमजों की आवृत्ति - DZ

लेकिन द्वियुग्मनज यमज आवृत्ति माँ की आयु से प्रभावित होती है क्योंकि आयु की वृद्धि से हारमोन का स्तर भी बढ़ता है जिससे कई अण्डाणु एक साथ उत्पन्न होते हैं। सन्तानोपत्ति अवस्था के अन्तिम वर्षों में जो द्वियुग्नज यमजों के जन्म में अत्यधिक अपघटन होता है उसका प्रत्यक्ष कारण FSH हारमोन के गिरे हुए स्तर हैं। इसके अतिरिक्त यमज आवृत्ति को जन्म क्रमांक (Birth Order) भी प्रभावित करता है। मध्यवर्ती जन्मक्रमांक इन यमजों की आवृत्ति की सम्भावना को कम करता है। बाइनवर्ग के अनुसार द्वियुग्मनजों की आवृत्ति आनुवंशिक कारकों से भी प्रभावित होती है। यदि किसी स्त्री के जनकों में एक समय में बहुल अण्डजनन की क्षमता रही है तो उसमें भी यह क्षमता अन्य स्त्रियों की अपेक्षा अधिक होती है।

यमज परीक्षण
(Twin Diagnosis)

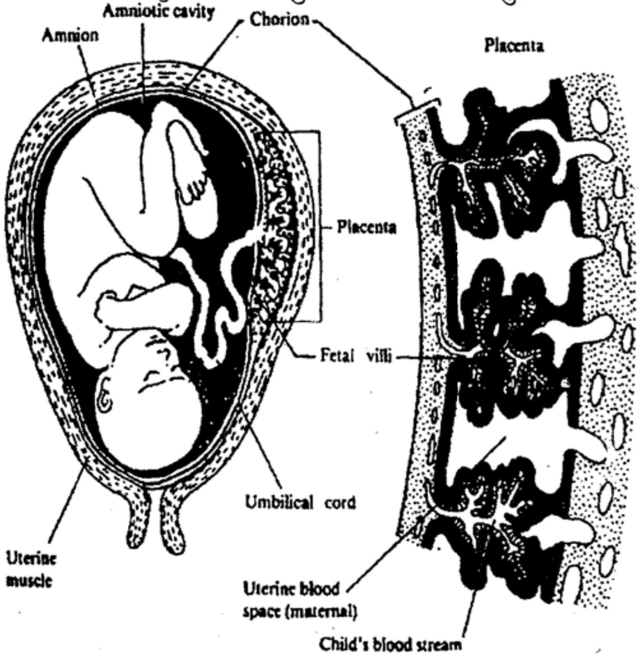
वस्तुतः यह पहचान करना अत्यन्त कठिन है कि एक लिंग के यमज जो समान लक्षण वाले प्रतीत होते हैं, उनमें एकयुग्मनज यमज कौन हैं तथा द्वियुग्मनज यमज कौन है। इसलिए यमजों के 'युग्मनजता का परीक्षण' (Diagnisis of Zygosity) विश्वसनीय तकनीकों से करना आवश्यक होता है अन्यथा यमज विधि एक भ्रामक परिणाम दे सकती है। युग्मनज के परीक्षण की निम्नांकित प्रचलित तकनीके हैं :

1. अपरा परीक्षण (Placenta Diagnosis)
2. समरूपता परीक्षण (Similarity Test)

3. सांख्यकीय तकनीक (Statistical Technique)
4. डी. एन. ए. फिंगर प्रिंटिंग (D.N.A. Fingerprinting)

1. अपरा परीक्षण (Placenta Diagnosis)

अपरा (Placenta) एवं भ्रूण झिल्ली (Foetal Membrane) का वितरण, युग्मनजता परीक्षण में कुछ सीमा तक सहायता कर सकते हैं, यद्यपि इसकी सम्पूर्ण पहचान करना एक कठिन कार्य है। विकासशील युग्मनज दो झिल्लियों से युक्त होता है- आन्तरिक कला या झिल्ली-अम्नियॉन (Amnion) तथा बाहरी कला या झिल्ली-कोरियान (Chorion)। द्वियुग्मनज यमज की स्थिति में, दोनों यमज, पृथक-पृथक झिल्ली रखते हैं, जैसा कि पूर्व वर्णन किया जा चुका है। लेकिन इनके अपरा कभी-कभी तो पृथक लेकिन कुछ स्थितियों में मिले हुए होते हैं।



चित्र 29 : अपरा (Placenta) बाईं ओर जो दो कलाओं- अम्नियॉन एवं कोरियान से युक्त है तथा दांयी ओर जिसे विस्तारित करके रुधिर प्रणाली परिसंचरण दर्शाया गया है।

एकयुग्मनज यमजों में भ्रूणीय झिल्ली का वितरण परिवर्तनीय है। प्रायः एक युग्मनज यमजों में अपरा की चार स्थितियाँ हो सकती हैं। एक, युग्मनज पहले ही द्विखण्डित हो जाता है जिससे पृथक कोरियान झिल्लियाँ विकसित हो जाती है। दो, द्विखण्डन (Cleavage division) से पृथक अम्नियॉन झिल्ली भी एक कोरियान के द्वारा घिर जाती है। तीन, यह युग्मनज विभाजन विलम्ब से हो तथा अपरा का पृथककरण न हो जिससे सम्बद्ध अम्नियॉन तथा कोरियान झिल्ली हों। चार, युग्मनज का विकास पूर्ण हो जाये तथा उसका विभाजन अन्तिम अवस्था तक पूर्ण न हो पाये, जिसके फलस्वरूप परस्पर जुड़े बच्चे-साइमीज़ उत्पन्न हों। इन चारों स्थितियों में लगभग 70 प्रतिशत घटनाओं में एक युग्मनज यमजों में एक ही 'कोरियान' पाया जाता है। अतः शेष अन्य 30 प्रतिशत घटनाओं में यह विधि उपयुक्त नहीं है।

2. समरूपता परीक्षण (Similarity Test)

इस विधि को वर्णन सर्वप्रथम सिमेन्स तथा वॉन वर्शेवर (Simens and Von Verschiver) ने किया। इस विधि में (i) जन्म झिल्ली (Birth Membrane) का अध्ययन किया जाता है। (ii) यमजों के आकारीय लक्षणों का अध्ययन करके समानता या सुसंगिता (Concordance) तथा असमानता या विसंगतिता (Discordance) ज्ञात करनी चाहिए। (iii) आनुवंशिक लक्षणों का अध्ययन करके सुसंगितता ज्ञात की जानी चाहिए। आनुवंशिक लक्षणों में रुधिर वर्ग, सीरम प्रोटीन, एंजाइम, आइसोएन्जाइम, HL-A प्रणाली, आदि। (iv) आकार-आनुवंशिक लक्षण जैसे-अंगुलि एवं हथेली प्रतिरूपों, रिज गणना आदि का अध्ययन करके सुसंगिता व विसंगित को ज्ञात करना चाहिए। एकयुग्मन यमज आनुवंशिक तथा आकार-आनुवंशिक लक्षणों में एकरूपता (Identicality) प्रदर्शित करते हैं लेकिन वे आकारिक लक्षणों में द्विरूपता प्रदर्शित कर सकते हैं क्योंकि पर्यावरण का प्रभाव पड़ सकता है। दूसरी ओर द्वियुग्मनज आनुवंशिक एवं अन्य सभी लक्षणों में अपेक्षाकृत विसंगित (Discordance) अधिक प्रदर्शित करते हैं।

3. सांख्यकीय तकनीक (Statistical Technique)

यदि किसी जनक के वंशानुगत लक्षणों का जीनी प्ररूप ज्ञात हो तो उसके आधार पर उसके यमजों की युग्मनजता के ज़ीनी प्ररूप की सम्भावना ज्ञात की जा

सकती है। यदि उस जनसंख्या में यमजों की आवृत्ति का ज्ञान हो तो DZ तथा MZ की सम्भावना का आंकलन किया जा सकता है। उदाहरणस्वरूप इंगलैण्ड में MZ तथा DZ की आवृत्ति क्रमशः 0-35 तथा 0-30 है। इसलिए एक लिंग के DZ यमज की सम्भावना भी 0-35 है। यदि जनकों के प्रारूप A_20 x 00 तो A_20 रुधिर के DZ की सम्भावना 50 प्रतिशत अर्थात 0.50 होगी। इसी प्रकार M_SN_S x M_SN_S जीनी मेल में M_SN_S की 0.50, P_1P_2 x P_1P_2 जीनी मेल में P_1P_2 की 0.25, CDc/cde x CDe/cde जीनी मेल में CDe/cde की 0.25 तथा K_K x K_K जीनी मेल में KK की सम्भावना 0.25 है। यदि इन सभी सम्भावित जीनी प्ररूपों को एक में मिला दें तो कुल सम्भावना पृथक सम्भावना के गुणांक (Product) के बराबर होगी जो 0.0034 है। दूसरी ओर इन सभी जीनी प्ररूप के मिलापों (Mating) की MZ के लिए पृथक-पृथक सम्भावना 1.0 है। इन सभी पृथक सम्भावना 1.0 है। इन सभी पृथक सम्भावनाओं का कुल गुणांक 0.30 है। इस आकलन के आधार पर इसके पश्चात् की एक युग्मनजता की सम्भावना 0.30/0.30+0.00034 = 0.9989 होगी। जबकि द्वियुग्मनज की सम्भावना। 0.30/0.30+0.00034 = 0.0011 है।

4. डी. एन. ए. फिंगर प्रिंटिग (D.N.A. Finger Printing)

डी.एन.ए. के न्यूक्लियोटाइडों में प्रतिवंध इण्डोन्यूक्लीज़ एक स्थान विशेष्ज्ञ पर प्रकट होते हैं जो कई प्रतिबन्धी एन्जाइम के प्रयोग या सक्रिय करने से DNA रज्जुक के निश्चित लम्बाई के खण्ड बन जाते हैं। यह एक आनुवंशिक लक्षण है। यह प्रतिबन्ध इण्डोन्यूक्लीज अथवा डी.एन.ए. खण्ड एक व्यक्ति की अपनी आनुवंशिक विशिष्टता है। इस प्रकार कई प्रकार के एन्जाइम को प्रयोग करके डी. एन. ए. के विशिष्ट खण्ड या जीनी लक्षण-$RFLP_S$ (Restriction Fragment Length Polymorphism's) प्राप्त किये जा सकते हैं। एकयुग्मनज यमजों (MZ) का RFLP मानचित्र (Map) पूर्णतः एक रूप होता है जबकि द्वियुग्मनज यमजों का यह विशेष RFLP मानचित्र पृथक होता है। इसी प्रकार DNA के अन्य लक्षणों VNTR (Variable Number Tendem Repeat); CA अनुक्रम आदि का मानचित्रीकरण करके युग्मनजता का परीक्षण किया जा सकता है। यह विधि सर्वाधिक विश्वसनीय एवं आधुनिक तकनीक है।

यमज एवं वंशागतता अनुमान (Twins & Heritability & Estimates)

वंशागतता, किसी जनसंख्या में लक्षण प्ररूपी विविधता का वह अनुपात है जो उस जनसंख्या के आनुवंशिक लक्षणों में परिलक्षित होता है। लक्षण प्ररूप के इस अनुपात को मानव जनसंख्या मापना अत्यन्त कठिन है। यद्यपि यह कई विधियों से मापा जाता है। कुछ मानव विकृतियों की वंशागतता जो कई जीन पर निर्भर करती है। वह स्थूलरूप से अनुमानित कर ली जाती है। इसके लिए निकटस्थ सम्बन्धियों में घटित दर से ज्ञात कर ली जाती है। इसके पश्चात् उसकी तुलना सम्पूर्ण जनसंख्या से की जाती है। जैसे मस्तिष्क में पानी का अनुपत 0.4 (40%) है, मिर्गी (Epilepsi) की वंशागतता का अनुपात 0.5 (50%) है। हेयरलिप (Hairlip) की वंशागतता का अनुपात लगभग 0.7 (70%) है।

एकयुग्मनज यमज वंशागतता के अनुमान हेतु एक विशिष्ट अवसर प्रदान करते हैं क्योंकि जो MZ यमज एक ही शुक्राणु एवं अण्डाणु से उत्पन्न होते हैं, वे एक ही समान जीनी समूह को रखते हैं। यदि इनमें कोई विविधता पायी जाती है तो वह वातावरण के प्रभाव के फलस्वरूप उत्पन्न हुई है। अधिकाशतया MZ यमज एक ही समान परिवेश में रहते हैं। इस स्थित में वे शारीरिक एवं व्यवहारों के स्वरूप में एक दूसरे से अत्यधिक समानता रखते हैं लेकिन उस समय जब MZ यमज भिन्न-भिन्न परिवेश में रखे जाते हैं तो इन यमजों पर जो अध्ययन किया गया है वह आनुवंशिक एवं पर्यावरणीय कारकों के प्रभाव को एक लक्षण विशेष के सन्दर्भ में एक उपयुक्त अनुमान प्रस्तुत करता है। यदि दोनों MZ यमज किसी विशिष्ट लक्षण के आधार पर सुसंगतता (Concordance) प्रस्तुत करते हों तो वह किसी विशेष परिस्थितियों में प्रभावित हुआ व्यक्त लक्षण प्ररूप का अनुपात है जो आनुवंशिक लक्षणों की सुसंगतता में परिक्षित होता है।

इस प्रकार दो प्रकार के यमजों की वंशागतता अध्ययन हेतु तुलना की जा सकती है भले वे किसी स्वरूप के लिए सुसंगतता या विसंगतता प्रदर्शित करें। उदाहरणस्वरूप पोलियो एवं रिकेट्स की सुसंगतता दर MZ यमजों में अपेक्षाकृत अधिक है जो इस बीमारी की आनुवंशिक प्रभावशीलता को इंगित करता है। यदि एक बार दो जनसमूहों के MZ एवं DZ यमजों की सुसंगतता एवं विसंगतता की दरों में विभेद ज्ञात हो जाये तो सहसम्बन्ध का गुणांक (Coefficient of Correlation) निम्न सूत्र से आंका जा सकता है :

$$V_f - V_l / V_f$$

यहाँ पर संकेताक्षर V_f का तात्पर्य द्वियुग्मनज यमज (Fraternal Twins) का अन्तर्युग्म विभेद (Pair Variance) है, जबकि V_I एक युग्मनज यमज (Identical Twins) अन्तःयुग्म विभेद (Within pair Variance) है। जो लक्षण आनुवंशिक आधार अत्यधिक रखता है उसके एक युग्मनज यमजों का अन्तःयुग्म विभेद अत्यल्प होता है तथा द्वियुग्मनजों को अधिक होता है जिससे सहसम्बन्ध का गुणांक लगभग 1 होता है।

जब एक लक्षण के आनुवंशिक एवं पर्यावरणीय घटक ज्ञात हो जाये, तो वंशागतता मापी जा सकती है जिसके लिए सूत्र निम्न है :

$$H=V_g/V_t=V_g/V_g+V_e$$

यहाँ संकेताक्षर V_g का तात्पर्य आनुवंशिक घटक है। V_t का तात्पर्य कुल व्यक्त लक्षण प्ररूप में भेद है तथा V_e का तात्पर्य पर्यावरणीय घटक है।

इस प्रकार यमज. मानव के विश्लेषण में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं अनेको व्यंवहारिक तथा बौद्धिक आंकड़े इन्हीं यमज अध्ययनों से ही सम्बन्धित हैं। आनुवंशिकी के क्षेत्र में यमजों का विस्तृत अध्ययन न्यूमैन, फ्रीमैन तथा होलजिंगर ने सन् 1937 में प्रकाशित किया। ये विद्वान क्रमशः आनुवंशिकी, मनोविज्ञान एवं सांख्यकी के क्षेत्रों सें सम्बद्ध थे। इस टीम ने 50 युग्म (Pair) एक साथ पालन-पोषण किये गये। MZ यमज 50 युग्म एक साथ पालन-पोषण किये गये। DZ यमज, 19 युग्म MZ यमज जिनका पालन पोषण पूर्व अवस्था में ही पृथक -पृथक हुआ 52 सगे भाई (Sibs) का अध्ययन एक साथ किया गया। इसके प्रमुख परिणामों को निम्न तालिका में दर्शाया जा रहा है जो विभिन्न लक्षणों पर आधारित है :

MZ तथा DZ यमजों में औसत विविधता

लक्षण	MZ यमज (एक साथ पालन पोषण)	MZ यमज (पृथक)	DZ (एक साथ)	भाई-भाई Siblings (एक साथ)
शारीरिक कद (सेमी)	1.7	1.8	4.4	4.5
भार	4.1	9.9	10.0	10.4
सिर की लम्बाई (mm)	2.9	2.2	6.2	–
सिर की चौड़ाई (mm)	2.8	2.9	4.2	–
1Q	3.1	6.0	8.5	9.8

उक्त तालिका से यह प्रदर्शित होता है कि MZ यमजों के कद, सिर की लम्बाई, चौड़ाई में DZ यमज की अपेक्षा सर्वाधिक एकरूप हैं। चाहे उनका पालन पोषण पृथक-पृथक हुआ हो या एक साथ, दोनों विधियों से यही प्रवृत्ति प्रदर्शित होती है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि वे आकारिक लक्षण जिसके आधार पर व्यक्तियों की पहचान की जाती है, जैसे- मुखमण्डलीय आकार। वे वंशागत विविधताओं से अधिक प्रभावित होते हैं जब कि पर्यावरणीय विविधताओं का प्रभाव वंशागत विविधताओं की तुलना में कम पड़ता है।

यदि शारीरिक भार को देखें तो यह इंगित करता है कि वे MZ यमज जिनका पालन पोषण साथ-साथ हुआ है। उनमें इस लक्षण के आधार पर DZ की अपेक्षा समानता अधिक है। लेकिन जब MZ यमजों का पालन पोषण पृथक-2 होता है तो औसत विविधता बहुत अधिक है, जो यह संकेत देता है कि इस पर आनुवंशिक विविधता का प्रभाव पर्यावरणीय विविधता की तुलना में अत्यल्प है। अतः भार पर पर्यावरणीय कारक का प्रभाव अधिक है। इसी प्रकार 1 Q के आधार पर भी वंशागत विविधता का प्रभाव पर्यावरण विविधता के प्रभाव की तुलना में कम है।

इस प्रकार उपरोक्त दृष्टान्त से यह सिद्ध होता है कि मानव शरीर में तीन प्रकार के लक्षण हैं। एक वे हैं जो वंशानुगत विविधत से अधिक प्रभावित होते है। दूसरे ने लक्षण है, जिन पर पर्यावरण एवं आनुवंशिक दोनों का ही प्रभाव पड़ता है। यदि दो DZ यमज के आकार प्रकार में MZ यमज की तुलना में विविधता अधिक है तो वह वंशानुगत घटकों के फलस्वरूप अपेक्षाकृत अधिक है क्योंकि उनमें आधे जीन ही एक समान है शेष असमान। इस प्रकार की विविधता MZ यमजों में उस समान भी प्रदर्शित नहीं होती, भले ही वे भिन्न-2 परिवेश में पले-पोषे क्यों न हों। इससे यह ज्ञात होता है कि वंशानुगत विविधता, पर्यावरणीय विविधता से अधिकांशतः अधिक होती है।

यमज विधि की परिसीमायें (Limitations of Twin Method)

यमज के अध्ययनों के आधार पर अन्तिम निर्णय तुरन्त नहीं लिया जा सकता क्योंकि यमजों की आवृत्ति अल्प है जिससे अध्ययन के परिणाम भ्रामक हो सकते हैं। उदाहरणस्वरूप न्यूमैन, फ्रीमैन होलजिंगर के अध्ययन के आधार पर एक प्रवृत्ति अवश्य देखी जाती है। लेकिन अध्ययन का प्रतिदर्श (Sample) आकार अपर्याप्त है।

इसी प्रकार जिन MZ यमजों का पालन पोषण समान पर्यावरण में हो रहा है, यह आवश्यक नहीं है कि उन पर भिन्न रूप से पर्यावरण का प्रभाव नहीं पड़ रहा हो। जैसे, कुछ MZ साधारण पर्यावरणीय विभेदों के प्रति अधिक प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं, कुछ MZ यमज सी परिस्थिति में अधिक उदासीन होते हैं। इसके अतिरिक्त पर्यावरण भी स्थूल रूप से दो प्रकार का होता है जन्म पूर्व (Prenatal) एवं जन्मउपरान्त (Postnatal)। अतः भ्रूणविकास की अवस्था में भी पर्यावरण का प्रभाव DZ यमजों पर MZ की तुलना में अधिक होता है, जो DZ के आकारिक लक्षणों को प्रभावित कर सकता है। इससे यह नहीं कहा जा सकता कि DZ यमज को एक साथ पलते हैं उनमें वंशानुगत विविधता के घटक पर्यावरणीय विविधताओं से कुछ अधिक है। MZ यमज विविध रूप से भिन्न संवेदन-दबाव से ग्रसित हो सकते है यदि उनका पालन पोषण पृथक-पृथक हो जिसके फलस्वरूप लक्षण प्ररूपों में विविधता बढ़ सकती है। साथ-साथ यमजों में कौन MZ है तथा कौन DZ यमज है यह कहना कठिन होता है। यद्यपि युग्मनजता परीक्षण की आधुनिक विधि DNA फिंगर प्रिटिंग प्रचलन में आयी है लेकिन अल्प त्रुटि भी भ्रामक परिणाम प्रस्तुत कर सकती है।

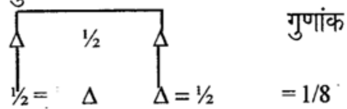
3. पारिवारिक विधि
(Family Method)

प्रत्येक जनक के 50 प्रतिशत जीन सन्ततियों में पारगमित होते है जिससे सन्तति एवं जनकों के आधे जीन एक समान होते हैं। जनक एवं सन्तति के इस सम्बन्ध को सांख्यकीय शब्दों में 'सम्बद्धता का गुणांक' (Coefficient of relationship) कहते हैं। इसी प्रकार सगे भाई-बहन भी आधे, 'सम्बद्धता के गुणांक' को प्रदर्शित करते हैं। यह गुणांक इस प्रकार पीढ़ी दर पीढ़ी स्थिर रहता है तथा बढ़ते हुए रेखीय सम्बन्धों (Longitudinal relations) में परिवर्तनशील रहता है। उदाहरण के लिए, जनक तथा सन्तति में जब यह गुणांक ½ है तो दादा/दादी (Grand Parents) एवं पौत्र/पौत्री (Grand Son/Daughter) में इस गुणांक का दो गुना हो जायेगा अर्थात् $\frac{1}{2} \times \frac{1}{2} = \frac{1}{4}$ होगा। दूसरे शब्दों में जनकों की सन्ततियाँ तथा उनके मातापिता (Grand Parents) के एक चौथाई जीन एक समान होते हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि एक व्यक्ति के जीन उसके पिता के ½ जीन, दादा/दादी के ¼ जीन, परदादा/परदादी के 1/8 जीन के समरूप होते हैं। साथ ही साथ उसके जीन उसकी

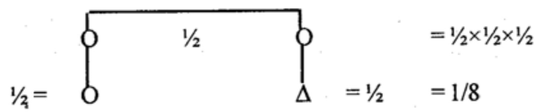
माँ के ½ जीन, नानी/नानी के ¼ जीन, परनाना/परनानी के 1/8 जीन के भी समरूप होते है। यह गुणांक इसी तरह से रेखीय सम्बद्ध की वृद्धि के साथ-साथ घटता रहता है तथा जीनी समरूपता भी क्रमवार घटती रहती है।

सम्बद्धता का यह गुणांक चचेरे भाई बहिनों/मौसेरे भाई बहनों/ममेरे भाई बहनों (Cousin Brothers/Sisters) में भी पाया जाता है। उस समय यह गुणांक ½ × ½ × ½ अर्थात् 1/8 होगा। इस सम्बद्धता गुणांक को निम्न रेखाचित्र में दर्शया गया है:

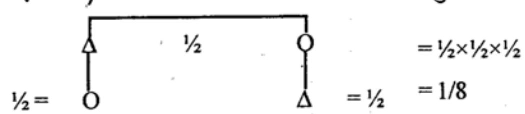
स्थिति - I (चचेरे भाई बहिन) :



स्थिति - II (मौसेरे भाई बहन) गुणांक



स्थिति - III (ममेरे भाई बहन) गुणांक



इसी प्रकार सभी सम्बन्धियों का यह गुणांक बनाया जा सकता है। यदि किसी जनसंख्या के सभी सदस्यों के पारस्परिक सम्बन्ध ज्ञात हो तो उस जनसंख्या की गुणांक समष्टि बनाई जा सकती है जो उस जनसंख्या के जीन समष्टि (Gene pool) के समान होगी। एक व्यक्ति के ½ जीन उसके माता/पिता के समान, ¼ भाग जीन उसके दादा/दादी/नाना/नानी के समान, ¼ भाग जीन उसके चाचा/बुआ या फूफू/माता/मौसी के समान तथा 1/8 भाग जीन उसके चचेरे/फुफेरे/ममेरे/मौसेरे भाई बहिनों के समान होते है।

अतः वंशागति का परिवारिक दृष्टिकोण महत्त्वपूर्ण आनुवंशिक अनुमानों को प्रस्तुत करता है जिसके आधार पर यदि अध्ययन किया जाये तो पर्यावरणीय एवं अन्य उद्विकासीय घटकों के प्रभाव की माप की जा सकती है। सम्बद्धता के गुणांकों का उपयोग आनुवंशिक परामर्श (Genetic Counseling) में किया जाता है

जिससे रोगी के सगे सम्बन्धी तथा उसकी सन्ततियों में वंशानुगत होने वाले रोगों से बचा जा सकता है। जन-आनुवंशिकी अध्ययनों में जिसमें जनसंख्या में स्थित जीन के व्यवहारों का अध्ययन किया जाता है, इन गुणांकों का विशेष महत्त्व है। इसके ज्ञात होने से प्रतिदर्श त्रुटियों (Sampling Error) से बचा जा सकता है तथा किसी लक्षण प्ररूप की त्रुटि रहित जीनी आवृत्ति (Gene Frequencies) आंकलित की जा सकती है।

4. दत्तक बालक अध्ययन विधि
(Foster Children Study Method)

दत्तक (Foster) शब्द का तात्पर्य उन बालकों से होता है, जो वैधानिक रूप से किसी अन्य दम्पति के द्वारा गोद लिये जाते हैं। इन दत्तक पुत्रों के अध्ययन इसलिए महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि भिन्न जीनी संरचना के बालक किसी भिन्न वातावरण में पलते पोषते हैं। इससे वातावरण एवं वंशागति के प्रभावों का अध्ययन सरलतापूर्वक किया जा सकता है।

इस विधि में इन बच्चों के कई समूह बनाये जाते हैं। समूहों का आधार इनके नवीन माता-पिता का सामाजिक आर्थिक स्तर होता है। इन आर्थिक तथा सामाजिक लक्षणों के आधार पर इन बच्चों को तीन वर्गों में विभक्त किया जाता है :

(i) उत्तम घर (Good Homes)

(ii) औसत घर (Average Homes)

(iii) निर्धन घर (Poor Homes)

अध्ययन के लिए इन घरों के बच्चों का चुनाव यादृच्छिक रूप से (randomly) किया जाता है। इसके आधार पर यह ज्ञात किया जाता है कि वे बच्चे जो किसी भिन्न परिवेश से उत्तम गृहों में गोद ले लिए जाते हैं उनका विकास पर्यावरणीय घटकों से कितना प्रभावित होता है। वे बच्चे जो औसत एवं निर्धन गृहों में पलते हैं उन पर पर्यावरणीय कारकों का कितना एवं कैसा प्रभाव पड़ता है। इसके तुलनात्मक अध्ययन से वंशागति एवं पर्यावरण के घटकों की पृथक-2 माप की जा सकती है। उदाहरणस्वरूप, शिकागो (U.S.A.) में इस विधि से मानव के बौद्धिक अंक (I Q) का अध्ययन किया गया। परिणामों से विदित हुआ कि 1 Q का स्तर

दत्तक गृहों के स्तर से सम्बन्धित होता है। इनके बौद्धिक अंक के औसत इस प्रकार पाये गये :

(i) उत्तम गृह - 48 दत्तक पुत्रों ने औसत बौद्धिक अंक 112 प्वाइंट प्राप्त किये।
(ii) औसत गृह - 39 दत्तक पुत्रों ने औसत बौद्धिक अंक 105 प्वाइंट प्राप्त किये।
(iii) निर्धन गृह - 27 दत्तक पुत्रों ने औसत IQ अंक 96 प्वाइंट प्राप्त किये।

इस प्रकार यह अध्ययन इंगित करता है कि पर्यावरण का प्रभाव बच्चे के बौद्धिक विकास पर पर्याप्त रूप से पड़ता है। लेकिन ये अध्ययन प्रायः त्रुटियुक्त प्रतिदर्श चुनाव से पक्षपाती हो जाते हैं। इससे इस विधि को एक विश्वसनीय अध्ययन विधि नहीं माना जाता है।

5. अनाथ बालक अध्ययन विधि (Orphan Children Method)

अनाथ बच्चे उन बच्चों को कहते हैं जिन्हें उनके जैविक माता-पिता जन्मोपरान्त अवैध सम्बन्ध के कारण गोपनीय ढंग से त्याग देते हैं या उन्हें अनाथालयों में भेज देते हैं। इन अनाथालयों में इन बालकों का एक समान पालन पोषण होता है। इन सभी बच्चों का जैविक स्वरूप भिन्न-भिन्न होता है। भिन्न-2 आनुवंशिकता वाले बालकों का जीनी प्ररूप भी भिन्न होता है। यदि इन बच्चों के पूर्व जीनी प्ररूप एवं शारीरिक लक्षण ज्ञात हो जायें जब इनका अनाथालय में प्रवेश होता है। इसके पश्चात् प्रत्येक माह, वर्ष यदि इनका अध्ययन किया जाय, तो पर्यावरणीय कारकों के प्रभावों को समझा जा सकता है।

इस विधि से इंग्लैण्ड में अनाथ बच्चों का अध्ययन किया गया। इस अध्ययन में उन बच्चों को समाविष्ट किया गया जो औसत 6 माह से 1 वर्ष के मध्य अपने जैविक माता-पिता के द्वारा विशिष्ट गृह-अनाथालय (Orphanage) में डाल दिये गये। ये बच्चे लगभग 10 वर्षों तक साथ-साथ रहे तथा विद्यालयों में विद्यार्जन किया। इनका पालन पोषण, शिक्षा-दीक्षा, व्याधि-उपचार आदि इनके वास्तविक माता-पिता से भिन्न हुआ। चूँकि इनके माता-पिता के व्यवसाय ज्ञात नहीं थे इसलिए इनकी IQ क्षमता की तुलनात्मक अध्ययन नहीं हो सका। लेकिन भिन्न-2 व्यवसाय के माता-पिता के IQ अंक को प्रयुक्त किया गया। इससे सम्बन्धित अन्य अध्ययनों से यह संकेत मिला है कि सामान्य तथा उच्च स्तर के माता-पिता वाले बच्चों को IQ

अंक आनुवंशिक पदार्थों से नियन्त्रित होता है। यद्यपि इस लक्षण से अन्य पर्यावरणीय कारक सहसम्बन्धित होते हैं (जो दत्तक पुत्र तथा यमजों के अध्ययन बताते हैं) फिर भी इस अध्ययन के परिणामों का खण्डन नहीं किया जा सकता।

6. जैव-रासायनिक विधि
(Bio-Chemical Method)

मानव जनसंख्या में एक संस्थिति पर पाये जाने वाले जीन के जीनी प्ररूप एक जैसे नहीं होते। कभी-2 एक लक्षण के लिए उत्तरदायी तथा कभी एकरूपी (Monomorphic), कभी 'द्विरूपी' (Dimorphic) तथा कभी-2 बहुरूपी (Poly morphic) के लिये उत्तरदायी होते हैं। जीन के ये भिन्न-2 जीनी स्वरूप उद्विकासीय प्रक्रियाओं जैसे-उत्परिवर्तन, वरण आदि के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं। मानव जनसंख्या में जीन के इस बदलते व्यवहारों का अध्ययन अनेकों आनुवंशिक लक्षणों के माध्यम से किया जाता है। गत दशकों में, जैव रासायनिक लक्षणों का प्रयोग, जीन ने इस व्यवहार के अध्ययन में किया जाने लगा। इससे जीन के व्यवहार को गहनता से समझने में और मदद मिली।

प्रोटीन, एन्जाइम जैसे जैव रासायनिक पदार्थों को पृथक करने के विविध विधियों तथा प्रोटीन की रचना की पहचान हेतु विश्लेषण विधियों के विकास से जैव रासायनिक अध्ययनों में एक क्रान्ति की लहर आ गयी। प्रोटीन का पृथक्करण तथा पहचान निम्नलिखित तीन विधियों से किया जाने लगा :

1. जेल-फिल्ट्रेशन (Gel Filtration)
2. आयन-विनिमय क्रोमैटोग्राफी (Ion-Exchange Chromatography)
3. इलेक्ट्रोफोरेसिस (Electrophoresis)

1. जेल फिल्ट्रेशन (Gel Filtration)

इस तकनीक से प्रोटीन के आणविक भार के आधार पर उसे पृथक किया जाता है। इसमें 'सेफाडेक्स (Sephadex)' से भरे हुए स्तम्भों से प्रोटीन मिश्रण को पार कराया जाता है। 'सेफाडेक्स' पालीसैक्राइड के कई संयुक्त स्तरों को कहते हैं। इन स्तरो में पाँच रन्ध्र होते हैं। वह प्रोटीन जो उच्च आणविक भार का होता है सेफाडेक्स स्तर में प्रवेश नहीं करता तथा वह स्तम्भों (Column) के बाहर पहले ही आ जाता है।

2. आयन-विनिमय क्रोमैटोग्राफी (Ion–Exchange Chromatography)

यह वह तकनीक है जो आयन आवेश (Charge) के आधार पर प्रोटीन को पृथक करती है। DEAE ग्लूकोज से एक स्तम्भ को भर दिया जाता है जो धनावेश का होता है। इस सतम्भ में तत्पश्चात् प्रोटीन मिश्रण भर दिया जाता है। जब प्रोटीन DEAE ग्लूकोज के द्वारा आकर्षित किये जाते हैं तो ऋणावेशी प्रोटीन इनसे अपेक्षाकृत अधिक बँध जाते हैं। इसके पश्चात् यह मिश्रण भिन्न-2 बफर घोलों से धुल जाता है। ph विविधता से प्रोटीन के बँधों के आवेश बदलने से ये भिन्न गति से छूट जाते हैं।

3. इलेक्ट्रोफोरेसिस (Electrophoresis)

जब प्रोटीन मिश्रण को एक विद्युत परिपथ पर संचालित कराया जाता है तो वे आणविक भार तथा आवेश के आधार पर पृथक हो जाते हैं। ये प्रोटीन 'अक्राइलामाइड जेल' अथवा 'स्टार्च जेल' के विद्युत परिपथ पर संचालित कराये जाते हैं। जब प्रोटीन को विद्युत आवेश दिया जाता है तो वे धनावेश से ऋणावेश ध्रुव की ओर संचालित होते हैं। जब प्रोटीन का आवेश अधिक हो तथा आणविक भार कम हो, तो वह प्रति इकाई समय में अपेक्षाकृत अधिक दूरी तक संचालित होगा।

इस प्रकार जब प्रोटीन/एन्जाइम पृथक कर लिये जाये तो अमीनों अम्ल के अनुक्रम के लिए विश्लेषित किये जा सकते हैं। इसके लिए विधियाँ जैसे- 'एडमैन डिग्रेडेशन विधि' (Edman Degradation Method) का प्रयोग किया जाता है। यदि प्रोटीन का विश्लेषण के लिए फिनाइलीसोथियोसाइनेट (Phenylisothiocynate) एवं मध्यम अम्ल का प्रयोग करते हैं तो बाहरी दिशा के अमीनों अम्ल (Aminoterminal) पृथक हो जाते हैं जिनका विश्लेषण इसी विधि से किया जा सकता है।

इस प्रकार प्रोटीन के पृथक्करण एवं विश्लेषण के अतिरिक्त दो अन्य आधुनिक तकनीकों से जैविक अणुओं जैसे DNA एवं RNA का विश्लेषण भी किया जाता है। इनका विश्लेषण निम्नलिखित दो विधियों से किया जाता है :

(I) मैक्सम गिलबर्ट विधि (Mazum Gilbert Method)

(II) सदर्न, नार्दर्न एवं ब्लाटिंग विधि (Southern, Northern & Western Blotting Technique)

मैक्सम गिलबर्ट विधि

इस विधि DNA अणु की अनुक्रमणिका (Sequencing of DNA) बना ली जाती है। DNA चार प्रतिबन्धी एन्जाइमों से द्विखण्डित करवा लिये जाते हैं जिससे DNA भिन्न-2 क्षार से कट जाते हैं। इनमें से प्रत्येक खण्ड की लम्बाई एक समान नहीं होता ये क्षारों की स्थिति का प्रतिनिधित्व करते हैं। अन्त में इन चारों प्रकार के प्रतिदर्शों को चार समानान्तर जेल में विद्युत परिपथ में आवेशित किया जाता है जिससे क्षार की पृथक-2 स्थिति प्रदर्शित होने लगती है।

सदर्न, नार्दर्न एवं वेस्टने ब्लाटिंग विधि

यह तकनीके क्रमशः DNA, RNA तथा प्रोटीन की उपस्थिति को स्पष्ट करती है। DNA के लिए सदर्न ने एक तकनीक को बताया जिससे DNA की विद्यमानता प्रदर्शित हो जाती है इसलिए, इसे सदर्न ब्लाटिंग तकनीक कहते हैं। इस विधि में प्रतिबन्धी एन्जाइमों से DNA द्विखण्डित किया जाता है। इसके खण्डों को जेल इलेक्ट्रोफोरेसिस से पृथक करते हैं। इसके पश्चात् वे DNA खण्ड नाइट्रोसेलूलोज फिल्टर पेपर पर रख दिये जाते हैं। इसी से मानकों के आधार पर संकरित कराये जाते हैं। इससे DNA के स्थल प्राप्त किये जा सकते हैं। जिन्हें बाद में विश्लेषित किया जा सकता है। इसी विधि से RNA के अणुओं का स्थल ज्ञात किया जाता है। इस विश्लेषण विधि का सर्वप्रथम वर्णन नार्दर्न (Northern) ने किया था।

वेस्टर्न ने ब्लाटिंग तकनीक से प्रोटीन की स्थिति का पता लगाया। इसके लिए सर्वप्रथम प्रोटीन को विद्युत परिपथ पर पृथक कर लिया जाता है। फिर उन्हें नाइट्रोसिलूलोज़ फिल्टर पेपर पर रखकर सोखा दिया जाता है। इसके बाद प्रतिपिण्ड (Antibody) रख दिये जाते हैं। इससे एण्टीजन-एण्टीबाडी काम्पलेक्स बन जाता है, जिसके आटो डॉयग्राफी से लगे हुए समतलित प्रतिपिण्ड पहचाने जा सकते हैं।

7. प्रतिरक्षा वैज्ञानिक विधि
(Immunological Method)

ये विधियाँ प्रतिजन-प्रतिपिण्ड प्रतिक्रियाओं पर आधारित होती हैं। प्रतिपिण्ड एक प्रकार के बड़े प्रोटीन अणु है इन्हें पाँच वर्गों में विभक्त किया जाता है :

(i) Ig A
(ii) Ig G
(iii) Ig D
(iv) Ig E
(v) Ig M

ये प्रतिपिण्ड प्रोटीन की चार श्रृखलाओं से बने होते हैं। जिनमें दो अधिक आणविक भार की होती है जब कि दो कम भार वाली होती है। दो हल्की भार वाली श्रृंखला में 'कॉपा' (K) तथा 'लैम्ब्डा' (L) कही जाती है तथा भारी दो श्रृखलायें इन सभी प्रतिपिण्डों में भिन्न-2 होती हैं जैसे 1gA में 'गामा' (γ), IgM में 'म्यूटा' (μ), IgA में 'अल्फा' (a), IgD में 'डेल्टा' (∂), IgE में 'एप्सीलॉन (E)'। कम भार वाली दोनों प्रोटीन श्रृंखलायें एक साथ एक 'प्रतिपिण्ड अणु' में नहीं होती होती।

प्रतिपिण्डों की श्रृंखलायें दो क्षेत्रों में विभक्त होती हैं। एक क्षेत्र सदैव स्थिर रहता है तथा दूसरा क्षेत्र सदैव परिवर्तित होता रहता है। इसके इन गुणों के आधार पर ये 'स्थायी' एवं परिवर्तनीय क्षेत्र कहे जाते हैं।

ये सभी प्रोटीन प्रतिपिण्ड सभी व्यक्तियों में होते हैं लेकिन इनमें आनुवंशिक भिन्नता पायी जाती है। इस विविधता को 'इम्युनोग्लोब्यूलिन एलोटाइप्स' कहा जाता है। 'एलोटाइप्स' का निर्माण प्रतिपिण्डों के 'स्थायी क्षेत्र' में परिवर्तन के फलस्वरूप होता है। ये परिवर्तन हल्की तथा भारी दोनों प्रतिपिण्ड श्रृंखलाओं में देखा गया है। भारी श्रृंखलाओं में दो प्रकार के परिवर्तन पाये गये हैं :

(i) Gm प्रणाली - भारी श्रृंखला 1gG से सम्बन्धित विभेद
(ii) Am प्रणाली - भारी श्रृंखला 1gA से सम्बन्धित विभेद

इसके अतिरिक्त हल्की श्रृंखलाओं में भिन्न विभेद देखे गये हैं :

(a) InV प्रणाली - हल्की श्रृंखला 'कापा' से सम्बन्धित विभेद
(b) QZ प्रणाली - हल्की श्रृंखला 'लैम्बडा' (L) से सम्बन्धित विभेर।

उक्त अधिकांश विभेद एक ही संस्थिति (Locus) पर विद्यमान बहुएलीलो (multiple alleles) अथवा निकटस्थ सहलग्न जीन-संस्थिति की अभिव्यक्ति के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं। इन 'एलीलो' अथवा 'विकल्पी' की आवृत्ति भिन्न-2 मानव समुदायों में भिन्न होती है। प्रतिपिण्डों के ये विभेद मानव के प्रतिरक्षावैज्ञानिक

अध्ययनों में प्रयोग किये जाने लगे हैं। कुछ प्रतिजन मानव शरीर में प्रविष्ट कराने पर प्राप्त प्रतिपिण्डों को पृथक करके परिशुद्ध किया जा सकता है। इन प्रतिपिण्डों को विद्युत परिपथ से (Electrophoretically) भी अध्ययन किया गया है जिससे इनके 'अमीनो अम्ल संगठन' पहचाने गये हैं। अध्ययनों से यह विदित हुआ है कि भिन्न-2 व्यक्तियों से पृथक किया गया प्रतिपिण्ड, विभिन्न श्रृंखलाओं के अमीनो अम्ल के संगठनों में विविधता प्रदर्शित करते हैं। उदाहरण स्वरूप, Rh रुधिर समूह के कारकों को इसी सिद्धान्त के आधार पर खोजा गया है जो रहीसस बानर से 'ऐप्टीसीरम' प्राप्त किया जाता है। इसी प्रकार यदि मानव प्रतिपिण्ड को 'खरगोश' के शरीर में प्रविष्ट कराया जाये तो वे खरगोश में प्रतिजन के समान क्रिया करके मानव प्रतिपिण्ड के विरुद्ध एक नवीन प्रतिपिण्ड का निर्माण करते हैं। इस प्रकार खरगोश का 'एण्टी सीरा' प्राप्त करके इससे भिन्न-2 मनुष्यों के 'रुधिर प्रतिदर्श' विश्लेषित किये जा सकते हैं। सभी प्रतिदर्श चूँकि विविधता प्रदर्शित करते हैं अतः विभिन्न समुदायों के विभेदों को उजागर किया जा सकता है।

8. गुणसूत्र विश्लेषण विधि
(Chromosomal Analysis Technique)

मानव में वंशागति के अध्ययन हेतु गुणसूत्रों का विश्लेषण किया जाता है। गत अध्याय-4 में मानव गुणसूत्रों के विश्लेषण की विस्तृत चर्चा की गयी थी जिससे गुणसूत्रों की आकारिकी, आणविक तथा रासायनिक संरचना के विभिन्न आयाम प्रकाश में आये। यद्यपि वहाँ पर मानव के गुणसूत्रों को सात समूहों में विशिष्ट लक्षणों के आधार पर विभक्त किया गया था, लेकिन ये गुणसूत्र स्पीशीज, सवस्पीशीज़ की भिन्नता ही नहीं रखते बल्कि मानव स्पीशीज (जाति) के अन्तर्गत भी सूक्ष्म विभेदों को भी प्रदर्शित करते हैं अर्थात् ये गुणसूत्र एक जनसमूह के स्तर पर भी विशिष्टतायें दर्शाते हैं। इन विशिष्टताओं को अध्ययन करने के लिए मुख्यतः निम्न तीन तकनीकों का प्रयोग किया जाता है :

(i) गुणसूत्री पट्टीकरण (Chromosomal Banding)

(ii) प्रवाहन कोशिकामिति (Flow Cytometry)

(iii) दैहिक कोशिका संकरण (Somatic Cell Hybridization)

गुणसूत्री पट्टीकरण (Chromosomal Banding)

जैसा कि अध्याय-3 में उल्लेख किया गया था कि गुणसूत्र सूत्री विभाजन की मध्यावस्था में स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होते हैं। इसलिए पट्टीकरण के लिए कोशिका या तो ऊतकों से एकत्र की जाये जो अस्थि मज्जा (Bone Marrow) के समान सक्रिय रूप से विभक्त होती रहती है या तो 'कल्चर' या 'संवर्धन प्रयोग' (culture) में इन्हें विभक्त होने के लिए उत्प्रेरित किया जाय। 'किडनी-बीन' (Kidney-beans) से निकाला गया एक प्रोटीन अंश फाइटोहीमोग्लुटिनिन (Phytohaemoglutinin) से डी. एन. ए. संश्लेषण एवं विभाजन, को उत्प्रेरित करता हुआ पाया गया है। यह संश्लेषण एवं विभाजन, लिम्फोसाइट कोशिका के संवर्धन में घटित हुआ। गुणसूत्र विश्लेषण के लिए यह आवश्यक होता है कि उसे मध्यावस्था में स्थिर रखा जाये इसलिए यह कार्य 'कॉल्चीसाइन' (Colchicine) को मिश्रित करने से पूर्ण हो जाता है। काल्चीसाइन तर्कु-तन्तुओं का विकास अवरुद्ध हो जाता है जो कोशिका विभाजन में साधक प्रतीत होता है। इसके बाद इन कोशिकाओं पर लवण घोल फैला दिया जाता है जिससे गुणसूत्र फैल करके विखर जाते हैं। इसके बाद इन कोशिकाओं को उपर्युक्त पदार्थों से स्थिर कर दिया जाता है। तत्पश्चात् इन विखरी कोशिकाओं को स्लाइड पर छोड़ देते हैं। इसे वायु में सुखा करके पट्टि प्रतिरूपों को देखने के लिए अभिरंजित कर दिया जाता है। इन स्लाइड को अभिरंजित करने के लिए निम्न चार अभिरंजकों वाली तकनीकें प्रचलित हैं :

a. Q पट्टीकरण (Q Banding)
b. G पट्टीकरण (G Banding)
c. C पट्टीकरण (C Banding)
d. R पट्टीकरण (R Banding)

a. Q पट्टीकरण :

इस तकनीक में क्वीनाक्राइन (Quinacrine) अभिरंजक का प्रयोग किया जाता है। निश्चित गुणसूत्र के उद्दीपक क्षेत्रों पर पट्टियाँ प्रकट होती हैं जिसे उद्दीप्त सूक्ष्मदर्शी से प्रेक्षित किया जाता है। ये पट्टियाँ A-T क्षारों को अधिक दर्शाती हैं।

b. G पट्टीकरण :

इस तकनीक में जिम्सा (Giemsa) अभिरंजक का प्रयोग किया जाता है जिससे गहरे अभिरंजक क्षेत्र जैसी पट्टियाँ प्रकट होती हैं।

c. C पट्टीकरण :

इसमें जिम्सा अभिरंजन के पूर्व विरल अम्ल तत्पश्चात् संगठित क्षार तथा गर्म सलाइन का प्रयोग स्लाइड पर करते हैं। इससे हिस्टोन प्रोटीन स्थान से हट जाते हैं। इस स्थिति में सेंट्रोमियर क्षेत्र, विशेषकर गुणसूत्र -1, 9, 16 तथा y; का तीव्रतापूर्ण अभिरंजित हो जाता है। सैटलाइट के सघन क्षेत्र अथवा डी.एन.ए. अनुलिपि, C-पट्टी के रूप में प्रकट होते हैं। इसके आधार पर वैयक्तिक विविधताओं का अध्ययन किया जा सकता है।

d. R पट्टीकरण :

इस तकनीक में जिम्सा अभिरंजन के पूर्व सलाइन से गर्म किया जाता है। यह G-तकनीक के विपरीत पट्टीकरण विधि है। इसमें गुणसूत्री प्रोटीन के भिन्न गति से नष्ट होने की प्रतिक्रिया से पट्टी प्रारूप विकसित हो जाते हैं। इन पट्टियों के आधार पर प्रत्येक व्यक्ति के अलग-2 गुणसूत्रों की तुलना की जा सकती है। ये संरचनात्मक बहुरूपता 'विषमरूपता' (Heteromorphism को कहते हैं। यह 'विषमरूपता' साधारण मेंडलीय विधि से वंशानुगत होती है। इसके आधार पर गुणसूत्री वंशानुगता का भी अध्ययन किया जा सकता है।

(ii) प्रवाहन कोशिकामिति (Flow Cytometry)

यह गुणसूत्र विश्लेषण की एक आधुनिक विधि है। इसमें कोशिकाओं को विखण्डित कर दिया जाता है। उद्दीपक अभिरंजकों से अभिरंजित किया जाता है। चयनित विधि से इस प्रकार गुणसूत्र रंग जाते हैं। तत्पश्यात् एक लेजर बीम में प्रवाहक चैम्बर से होते हुए गुणसूत्रों को पतले जेट के समान आगे बढ़ाया जाता है। इससे गुणसूत्र उद्दीप्त होते हैं जिन्हें जाँच उपकरण से माप लिया जाता है। चूँकि उद्दीपन की मात्रा, गुणसूत्र के आकार पर आधारित होती है अतः इस तकनीक से त्वरित कैरियोटाइप करना सम्भव होता है।

(iii) दैहिक कोशिका संकरण (Somatic Cell Hybridization)

गुणसूत्री तकनीकें इतनी विकसित हो गयी हैं कि दो भिन्न जीवों की कोशिकाओं को संकरण कराना एक सरल तरीका प्रतीत होता है। इस तकनीक से मानव की कोशिकाओं का संकरण अन्य जीवों से कराया जाता है। उदाहरस्वरूप चूहे एवं मानव की दैहिक कोशिका की संकर कोशिका विकसित की गयी है। इन संकर कोशिकाओं में मानव गुणसूत्र दूर कर दिये जाते हैं। जब एक संकर कोशिका विभाजित होती है, इनमें कुछ गुणसूत्र प्राप्त किये जाते हैं। इससे गुणसूत्रों के कुछ विशिष्ट प्रोटीनों का अध्ययन सरलता से कर सकते हैं।

9. DNA पुनर्संयोजन अथवा रिकाम्बिनेंट तकनीक (Recombinant Technique)

प्रायः इस तकनीक का प्रयोग जीन संरचना के विश्लेषण, आनुवंशिक विकारों का परीक्षण, आणविक बहुरूपता का निरीक्षण तथा भ्रूण के लिंग निर्धारण में किया जाता है। इस तकनीक में मुख्यतः 'प्रतिबंधी इण्डोन्यूक्लीजेज' का प्रयोग करके DNA खण्डों की उपत्ति की जाती है। इन खण्डों का सम्मिलत यथोचित वेक्टरों (प्लास्मिड, फेज़ अथवा कॉस्मिड) में किया जाता है। इन वेक्ट्रों को एक मेजवान जीवों (प्रायः जीवांणु E-कॉली) में प्रविष्ट कराया जाता है। परिणामस्वरूप एक विशिष्ट डी.एन.ए. अनुक्रम को लिये हुए क्लोनों को अगला चुनाव सम्भव होता है। यहाँ इन प्रमुख तकनीकों का वर्णन किया जा रहा है।

1. प्रतिबन्धी-इण्डोन्यूक्लीज (Restriction Endonuclease)

वह प्रोटीन जो एक विशेष कार्य में संलग्न रहते हैं, उस कार्य की पूर्णता को उत्प्रेरित करते हैं, उन्हें उत्प्रेरक या 'एन्जाइम' कहा जाता है। कुछ 'एन्जाइम' पानी के साथ रासायनिक प्रतिक्रिया करके 'न्यूक्लिक अम्लों' को विघटित करते हैं। इस श्रेणी वाले 'एन्जाइमों' को 'न्यूक्लीज' (Nuclease) कहा जाता है। वह न्यूक्लीज जो किसी जैविक पदार्थ जैसे- डी.एन.ए, आर.एन.ए. आदि के आन्तरिक क्षेत्र में ही क्रिया सम्पन्न करे, 'इन्डोन्यूक्लीज़' के नाम से जाना जाता है। चूँकि ये 'इन्डोन्यूक्लीज' DNA, RNA जैसे जैविक पदार्थों के आन्तरिक क्षेत्र के 'न्यूक्लिक अम्ल' विघटित हो जाते, इसके फलस्वरूप डी.एन.ए./आर.एन.ए. की 'पाली

न्यूक्लयोटाइड' राइबोटाइड श्रृंखला टूट जाती है। इस टूटन या खण्डन क्रिया से डी. एन.ए./आर.एन.ए. की श्रृंखलायें परिसीमित या प्रतिबंधित हो जाती है। डी.एन. ए./आर.एन.ए. जैविक पदार्थ की श्रृंखलाओं को परिसीमित या प्रतिबन्धित करने वाले प्रोटीन उत्प्रेरकों या एजाइमों को ही 'प्रतिबन्धी-इण्डोन्यूक्लीज' (Restriction Endonuclease) कहते हैं।

प्रतिबन्धी इण्डोन्यूक्लीज़ चार प्रकार के होते हैं :

(i) Eco RI

(ii) Hha I

(iii) Bal I

(iv) Hae III

इन चारों प्रतिबन्धी इण्डोन्यूक्लीज़ों के नाम 'जातीय' (generic) एवं 'तनाव सम्बन्धी' (Strain अथवा To Streach tightly) होता है। इनके नामों के पहले अक्षर जातीय, दो अक्षर इस जाति के विशिष्ट नामों के होते हैं। इसका चौथा अक्षर उस जाति के विशिष्ट तनाव से लिया जाता है। इनकी रोमन अंक किसी जीवाणु से इनके पृथक होने का क्रम होता है। उदाहरणस्वरूप 'Eco RI' प्रतिबन्धी इण्डोन्यूक्लीज़ इस्वेरीशिया कॉली (Escherichia coli) जीवाणु से प्राप्त एन्जाइम है। इसके नाम का पहला अक्षर 'E' इस्वेरीशिया से, अक्षर 'Co' इस जीवाणु के विशेष नाम 'Coli' से, चौथा अक्षर - R इस जीवाणु के विशिष्ट तनाव या स्ट्रेन -'R Y B' से लिया गया है। इस प्रतिबन्धी इण्डोन्यूक्लीज का रोमन अंक- 1, 'इस्वेरीशिया कॉली' जीवाणु से इसके पृथक होने का क्रम है। इसी प्रकार अन्य प्रतिबन्धी-इण्डोन्यूक्लीजों के नामकरण क्रमशः हैक्मॉफाइलस हीमो-लाइटिकस (Hacmophylus Haemolyticus), ब्रेवीवैक्टीरियम एल्बिडम (Brcvibactirium - albidum), हीमोफाइलम एजिप्टिकस (Haemophylum aegypticus) जीवाणुओं के प्रथम नाम, विशिष्ट नाम, उनके तनाव तथा पृथकता क्रम पर आधारित है। इन प्रतिबन्धी इण्डोन्यूक्लीज उत्प्रेरकों को 'प्रतिबन्धी इण्डोन्यूक्लीड' (Restriction Endomiclead) भी कहते हैं। ये डी.एन.ए. में पालीन्यूक्लियोटाइड के विशिष्ट भाग (चार से छः अवशेषों residues का लम्बा क्षेत्र) को पहचाने जाते हैं जिसके फलस्वरूप DNA के इन्हीं स्थलों को खण्डित कर देते हैं। इनके जीवाणुओं में इस प्रकार के कार्यों के आधार पर ही इनकों 'प्रतिबन्धी

एन्जाइम' कहते है। ये एन्जाइम DNA के विशेष स्थल पर अवगुण्ठन करके बाहर से आने वाली पालीन्यूक्लियोटाइड के अवशेषों या क्षारों को उसी स्थल पर प्रतिबन्धित कर देता है अर्थात् रोक देते हैं। प्रतिबन्धन के इस बिंदु को प्रतिबंधन स्थल (Restriction Site) कहते हैं। जब डी.एन.ए. के साथ 'मिथाइल समूह' होता है तो प्रतिबंधी इण्डोन्यूक्लीज डी.एन.ए. के खण्ड कर सकने में सक्षम नहीं होते क्योंकि मिथाइल समूह डी.एन.ए. को ऐसे समय सुरक्षा प्रदान करता है।

प्रतिबन्धी इण्डोन्यूक्लीज के कई वर्ग खोजे जा चुके हैं। वर्ग-I प्रतिबन्धी इण्डोन्यूक्लीज DNA की विशिष्ट श्रृंखला एवं अनुक्रम को पहचान तो लेते हैं लेकिन DNA का अवगुण्ठन उस विशेष स्थल पर नहीं कर पाते। वर्ग-II के प्रतिबन्धी स्थल के अन्तर्गत ही अवगुण्डित करते खण्डित कर देते हैं। इसके फलस्वरूप सुपरिभाषित DNA के खण्ड प्राप्त हो जाते हैं। इनका उपयोग 'आनुवंशिक अभियान्त्रिकी' के लिए 'आणविक क्लोनिंग' में किया जाता है।

यह पांया गया है कि कुछ प्रतिबन्धी एन्जाइम 4 क्षार-समूहों की पहचान करते हैं तथा कुछ 5 अथवा 6 क्षार-समूह को पहचान पाते है। चारों प्रतिबन्धी एन्जाइम के 'पहचान-अनुक्रम' को यहाँ तालिका में दर्शाया जा रहा है :

Sl. No.	प्रतिबन्धी इण्डोन्यूक्लीज	पहचान अनुक्रम
1.	Eco R I	5' G•AATTC3'
		3'CTTAA•GS
2.	Hha I	5'GCG•C3'
		3'C•GCG5'
3.	Bal I	5'TGG•CCa3'
		3'ACC•GGT5'
4.	Hae II	5'GG•CC3'
		3'CC•GG5'

नोटः गहरे बिन्दु वे खण्ड-स्थल हैं जहाँ प्रदर्शित प्रतिबन्धी एन्जाइम डी.एन.ए. की पालीन्यूक्लियोटाइड श्रृंखला को काट देते हैं।

2. डी.एन.ए. लाइगेज़ (DNA Ligase)

डी.एन.ए. लाइगेज एक प्रकार का प्रोटीन एन्जाइम है। यह डी.एन.ए. के फास्फोडाइस्टर बन्धों को पुननिर्मित करता है। इससे एकल रज्जुकी खण्डों के मध्य

अविशिष्ट स्थल बंद हो जाता है। इस एन्जाइम की उस समय आवश्यकता होती है जब डी.डी.ए. की पुनरावृत्ति, पुनर्संयोजन तथा इसकी क्षति का पुनः निर्माण हो रहा होता है। अतः डी.एन.ए.-लाइगेज डी.एन.ए. खण्ड को जोड़ने वाले एन्जाइम हैं।

3. क्लोनिंग वेक्टर (Cloning Vectors)

आनुवंशिकविद् यदि प्रतिबन्धी एन्जाइम के द्वारा डी.एन.ए. को दूसरे खण्डों से जोड़ना जानता है, तो वह कीमेरी कणों (Chimaeric molecules) का सृजन कर सकता है। लोक मान्यताओं के अनुसार कीमेरा एक क्रूर वन्य पशु अथवा मनुष्य था जिसका शेर का सिर, बकरे का शरीर तथा सांप की पूँछ थी।

जिस जैविक पदार्थ के साथ डी.एन.ए. श्रृंखलाएँ पुनः जुड़ती हैं। उसे 'वेक्टर' कहते हैं। वेक्टर में परिणाम एवं दिशा तय करने की क्षमता स्वतः होती है। दूसरे शब्दों में वेक्टर एक प्रकार के आणविक वाहन हैं जो प्रस्तावित डी.एन.ए. खण्ड को कोशिकाओं (Host Cells) में ले जाकरके प्रवेश करा देते हैं। ये कोशिकायें प्रायः जीवाणु कोशिकायें होती हैं। वहीं इनकी पुनरावृत्ति का गुण होता जिससे प्रविष्ट डी.एन.ए. की वृद्धि हो करके मेजबान कोशिका बन जाती है। विशिष्ट प्रतिजैविकों से प्रतिरोध करने की क्षमता होती है जिससे कि वे जीवाणु जो किसी विशेष प्रति जैविकों को लिए हुए होते हैं उनका चुनाव हो सके। यह कई प्रतिबन्धी स्थलों को अपने साथ ले जाता है जिससे विविध प्रकार के 'बाहनी' डी.एन.ए. अनुक्रम किसी विशेष्ज्ञ डी. एन. ए. श्रृंखला में प्रविष्ट हो जायें। ये वेक्टर मुख्यतः तीन प्रकार के खोजे जा चुके हैं :

(I) प्लास्मिड (Plasmids)

(II) बैक्टीरियोफेज (Bacteriophages)

(III) कॉस्मिड (Cosmids)

प्लास्मिड (Plasmids)

कई जीवाणु अतिरिक्त गुणसूत्री, छोटा, वृत्ताकार तथा द्विरज्जुकी डी.एन.ए. रखते हैं जिससे उनकी सामान्य वृद्धि नहीं हो पाती। यदि पराबैंगनी विकीर्णन अथवा अन्य रासायनिक विधियों से यह प्लास्मिड दूर हटा दिया जाये, तो कोशिका सामान्य

रूप से पुनः वृद्धि करती है। यह प्लास्मिड प्रायः वृत्ताकार होता है लेकिन कभी-2 रेखीय भी होता है जैसे- स्ट्रेप्टोकॉसी (Streptococci)।

ये प्लास्मिड जीवाणु गुणसूत्र से संगठित हो सकते हैं तथा इन्हें किसी जीवाणु की अन्य कोशिका में स्वतन्त्र रूप से स्थानान्तरित किया जा सकता है। ये जीवाणु कोशिका में एक विशिष्ट लक्षण उत्पन्न करते हैं। वे प्लास्मिड जो रासायनिक पदार्थों के क्षरण को प्रेरित करने के लिए जीन के वाहक होते हैं, उन्हें क्षरणकारी प्लास्मिड कहते हैं। ये प्लास्मिड जटिल चयापचयी प्रतिक्रियाओं हेतु जीन को ले जाते हैं। इस प्रकार प्लास्मिड कई प्रकार की क्रियाएँ कर सकने में समर्थ होते हैं। आनुवंशिक अभियन्त्रिकी में इनका प्रयोग वेक्टर की तरह से किया जाता है जो बाहरी DNA के सुयोग्य वाहक की भूमिका निभाते हैं।

बैक्टीरियोफेज (Bacteriophages)

इन्हें 'फेज' की कहा·जाता है। विषाणु, जीवाणुओं में संक्रमण करके प्रोटीन से घिरा DNA को रख लेता है। जब जीवाणु में संक्रमण काल होता है तो वे अपना DNA जीवाणु में प्रविष्ट कर देते हैं जिससे DNA की बार-बार पुनरावृत्ति से जीवाणु फट जाता है। यही डी.एन.ए. की सैकड़ों अनुलिपियाँ बन जाती है। इस प्रकार विषाणुओं के DNA (डी.एन.ए.) को प्रतिबन्धी एन्जाइमों से खण्डित करके बाहरी डी.एन.ए. इसमें प्रविष्ट कराया जा सकता है। इनमें डी.एन.ए. की 10 kb मात्रा होती है। इन विषाणु का वेक्टर के समान प्रयोग किया जा सकता है।

कॉस्मिड (Cosmids)

जीन स्थानान्तरण के लिए यह तीसरे प्रकार के वेक्टर हैं। इनका विकास 1978 में बारवॉरा होम्स (Barbere Homms) तथा जॉन कालिनस (John Collins) ने किया। ये वे वेक्टर हैं जो विषाणु (Phase) के Cos स्थल से प्राप्त किये गये हैं, जैसे जीवाणुओं से प्लास्मिड एवं लैम्बडा प्राप्त किये गये हैं।

4. डी. एन. ए. संग्रह (DNA Library)

DNA लाइब्रेरी या संग्रह जीवाणुओं में बढ़े हुए वेक्टरों का संग्रह है। जो एक प्रदत्त जाति के जीनोम के कुल DNA के अनुक्रमों की कम से कम एक प्रति अवश्य रखता है। DNA लाइब्रेरी के निर्माण में कई तैयारी करनी पड़ती है। इन तैयारियों

में - प्रतिबन्धि एन्जाइम के द्वारा किसी जीनोमी DNA का पाचन, इसका पृथक्करण इसका वेक्टर से बन्धन (जो उन्हीं प्रतिबन्धी एन्जाइम से काटे जाते हैं), वेक्टर का जीवाणु अथवा यीस्ट में स्थानान्तरण इन जीवाणुओं को पोषकोंयुक्त एगर जेल पर प्लेटो या किसी डिशों में संवर्धित कर लिया जाता है। ये जीवाणु एक उपनिवेश या समूह घर बनाते हैं। एक समूह घर के सभी बैक्टीरिया एक समान वेक्टर DNA रखते हैं।

DNA अनुक्रमों हेतु जिस लाइब्रेरी के निर्माण हेतु खोज की जाती है वह कई कार्यों हेतु मुख्यतः तीन विधियाँ अपनायी जाती हैं- आनुवंशिक, प्रतिरक्षा वैज्ञानिक एवं आणविक संकरण। इन तीनों विधियों के द्वारा क्रमशः जीन अनुक्रमण प्रतिपिण्ड अनुक्रम एव आणविक संकरण हेतु वेक्टर संरक्षित तथा संवर्धित किये जाते हैं।

5. प्रतिबन्धी मानचित्रण (Restriction Mapping)

डी. एन. ए. खण्डों को एक दूसरे पर रखकर निरीक्षणकरने हेतु प्राप्त खण्डों के समूहों का उत्पादन तत्पश्चात् उनकी क्रमबद्धता मानचित्रण में की जाती है। इस प्रकार एक DNA के अनुक्रमण करने के लिए सबसे पहले क्रमबद्धता मानचित्रण आवश्यक होता है। दो प्रतिबन्धी इन्जाइम के इस स्वतन्त्र रूप से डी.एन.ए. का पाचन किया जाता है, उनके पृथक टुकड़े पुनः आपसी समझौते से इन्हीं एन्जाइमों के द्वारा पाचित कर लिए जाते हैं अर्थात् वह खण्ड जो पहले एन्जाइम के द्वारा बनाया जाता है वह दूसरे एन्जाइम के द्वारा बनाये गये खण्ड के शेष टुकड़े को पचाता है।

6. डी. एन. ए. अनुक्रमण (DNA Sequencing)

जीन क्लोनिंग का मुख्य उद्देश्य डी.एन.ए. में न्यूक्लियोटाइडों के अनुक्रम का निर्धारण करना है। अनुक्रम निर्धारण के दो तरीके हैं। इन दोनों प्रकारों से केवल कुछ सौ क्षारों के लम्बे DNA का अनुक्रमण किया जाता है।

पहली 'मैक्सम एवं गिलबर्ट' (Maxum & Gilbert) विधि में डी.एन.ए. कण के खण्ड किये जाते हैं। यह खण्ड विशिष्ट क्षारों C G A तथा T पर किये जाते हैं। इन चारों पृथक प्रतिदर्शों में प्रतिक्रियायें उत्पन्न की जाती है तथा इन DNA को विद्युत परिपथ पर एक ही जेल में एक दूसरे के समानान्तर रखा जाता है।

तत्पश्चात आटोरेडियोग्रेफी से इन इलेक्टोफोरेटिक पट्टियों के अनुक्रम को पढ़ लिया जाता है। दूसरी विधि में जिस डी.एनं.ए. का अनुक्रमण करना है उसे पहले एक-रज्जुकी विषाणु DNA करते हैं। यह विभिन्न प्रतिबन्धी एन्जाइमों के कार्यस्थलों की सूचना देती है। ये प्रतिबन्धी एन्जाइम का प्रयोग छोटा तथा आपस में लिपटे DNA खण्डों को बनाने के लिये किया जाता है जिसे मैक्सन गिलबर्ट विधि से अनुक्रमित कर लेते हैं।

डी. एन. ए. तकनीक के उपयोग
(Uses of DNA Technique)

मानव के अध्ययनों में डी.एन.ए. तकनीकों के प्रमुख उपयोग निम्नलिखित हैं:

(i) जीन संरचना का विश्लेषण (Analysis of Gene Structure)
(ii) आनुवंशिक विकारों का परीक्षण (Diagnosis of Genetic Disorders)
(iii) RFLP हैंप्लोटाइप (RFLP Haplotypes)
(iv) VNTR लक्षण (VNTR)
(v) CA आवृत्ति (CA Repeat)
(vi) भ्रूण डी. एन. ए. परीक्षण (Foetal DNA Diagnosis)

(i) जीन संरचना का विश्लेषण (Analysis of Gene Structure)

प्रतिबन्ध मानचित्रण से यह सम्भव हो गया कि डी.एन.ए. खण्ड के क्षेत्र में कौन से जीन हैं तथा उनका क्रमविन्यास क्या है। यह ज्ञान बीटा ग्लोबिन जीन क्षेत्र के अध्ययन से हुआ। इस क्षेत्र में 7 जीन पाये गंये हैं। इनमें दो सूडोजीन तथा E Gy Ay Delta एवं Bita हैं। इसके समकक्षी विन्यास के 5 प्रकार्यात्मक जीन गोरिल्ला, चिम्पैंजी तथा पुरानी दुनिया के बानरों में नहीं पाया गया है इससे इनके पूर्व पृथक्करण का संकेत मिलता है। प्रत्येक ग्लोबिन जीन लगभग 1.5 kb (Kilobase, 1 kb=1000 base pairs) लम्बाई का है। यह जीन-समूह लगभग 60 kb लम्बाई को रखता है। यथोचित 'प्रोब' (Probes) के प्रयोग से एक स्थल पर 'प्रोब' का संकरण कराकरके एक विशेष गुणसूत्र के विशिष्ट क्षेत्र पर जीन की स्थिति जानी जा सकती है। उदाहरणस्वरूप इस तकनीक के प्रयोग से यह जानना सम्भव हुआ है कि गुणसूत्र-11 की छोटी भुजा के सेंट्रोमियर के निकट β ग्लोबिन जीन स्थित हैं।

इस प्रकार पुनर्संयोजन डी.एन.ए. तकनीक में DNA प्रोब (खण्ड) समान अनुक्रम से संकरण कर सकता है तथा इसकी रेडियोधर्मिता इसकी उपस्थित का संकेत देती है। ये डी.एन.ए. 'प्रोब' विविध प्रकार के कार्य करते हैं। एक, ये किसी भी सूक्ष्म जीवी या विषाणु के डी.एन.ए. को पहचान सकते हैं। दो, यदि पूर्ण रूप से संकरण न हुआ हों तो उससे उत्पन्न जीन में परिवर्तन पा उत्परिवर्तन को ये पहचान सकते हैं। तीन ये 'प्रोब' डी.एन.ए. फिगर-प्रिटिंग के रूप में लाये जा सकते हैं। प्रत्येक व्यक्ति का डी.एन.ए. विशिष्ट एवं अत्यधिक परिवर्तनीय क्षेत्रों से युक्त होता है जिसमें क्षारों के छोटे-2 खण्ड विशिष्ट रूप से अनुलिपित होते हैं। यदि यह डी.एन.ए. प्रोब (परीक्षण) डी.एन.ए. की उपलब्ध पट्टियों के आधार पर किया गया तो कुछ व्यक्तियों में इसके समान अनुक्रमित होने वाली श्रृंखलायें खोजी जा सकती है जैसे अपराध संज्ञान में इसका प्रयोग किया जाता है। यदि कभी-2 डी. एन.ए. परीक्षणों का प्रयोग करते हुए यह पाय गया है कि निर्धारित डी.एन.ए. की पर्याप्त मात्रा नहीं है जिससे कि इन तकनीकों का प्रयोग किया जा सके, तो PCR तकनीक (Polymerase Chain Reaction) बहुत ही उपयोगी है जिससे एक जीन की कई हजार प्रतियाँ बनाई जा सकती हैं।

(ii) आनुवंशिक विकृतियों के परीक्षण (Diagnosis of Genetic Disorders)

आनुवांशिक विकृतियों के परीक्षण दो विधियों से किये जाते हैं :

(a) प्रत्यक्ष तकनीक

(b) अप्रत्यक्ष तक़नीक

(a) प्रत्यक्ष तकनीकः सर्वप्रथम सामान्य जीन के लिए डी.एन.ए. प्रोब निर्मित किये जाते हैं। ये 'प्रोब' एक विशेष डी.एन.ए. तकनीक 'प्रोबिंग तकनीक' से बनाये जाते है। इन्हें दो विशेष वर्ग के डी.एन.ए. के संकरण से बनाया जाता है। एक तो उस व्यक्ति का डी.एन.ए. जिसे कोई विकृति है तथा दूसरे सामान्य व्यक्ति के DNA को परस्पर संकरण कराया जाते हैं। इनसे प्राप्त विशेष अनुक्रम, जिन्हें अंकित कर लिया जाता है, 'प्रोब' के नाम से जाने जाते हैं। इस विधि से कॉनर एवं उनके सहयोगियों ने सन् 1983 में सिकेल-सेल जीन का निर्धारण किया। इन लोगों ने सामान्य β ग्लोबिन जीन एवं सिकेल-सेल जीन के लिए DNA प्रोब का संश्लेषण किया। तत्पश्चात लेवल सामान्य व्यक्ति के DNA को सामान्य ग्लोबिन जीन के लिए

संश्लेषित DNA के साथ संकरित किया। जो DNA प्रोब सिकिल जीन के लिए संश्लेषित किया गया है उसे किसी सिकिल सेल जीन से प्रभावित व्यक्ति से संकरित करवाया। यह विधि प्रत्यक्ष इसलिए कही जाती है क्योंकि DNA का विश्लेषण प्रतिबन्धी एन्जाइमों के प्रयोग के बिना किया जाता है। यह विधि इस तथ्य पर आध ारित है कि यदि जीन किसी एक डी.एन.ए. अणु अथवा डी.एन.ए. के क्षार के कारण विकृत है तो DNA संकरण से पहचान लिया जा सकता है।

प्रत्यक्ष विधि की कुछ सीमायें हैं क्योंकि उसी समय प्रयोग किया जा सकता है तब सामान्य प्रोटीन के विषय में ज्ञान हो। इसके mRNA तथा DNA के न्यूक्लियोटाइड के विषय में भी जानकारी हो। तत्पश्चात् ही इन सूचनाओं के आधार पर विकृत DNA का पता लगाया जा सकता है। इस दृष्टिकोण को अग्रगामी आनुवंशिकी भी कहते हैं क्योंकि प्राप्त सूचनाओं के आधार पर विकारों की खोज की जाती है।

(b) **अप्रत्यक्ष विधिः** जब कोई ऐसा आनुवंशिक विकार हो जिसमें mRNA का ज्ञान न हो, ऐसी स्थिति में DNA स्वरूप में उत्पन्न परिवर्तनों का पता लगाया जाता है, तत्पश्चात् विकृत प्रोटीन को खोजा जाता है। चूँकि यह विधि प्रत्यक्ष विधि के ठीक विपरीत है इसलिए इसे अप्रत्यक्ष विधि कहते हैं।

इस विधि से DNA में स्थिति विविधता का अध्ययन किया जाता है। तत्पश्चात् DNA की इस विविधता के सम्बन्ध निर्दिष्ट रोग से स्थापित किये जाते हैं। यह सम्बन्ध कुछ इस प्रकार से स्थापित किया जाता है, उदाहरण स्वरूप, यदि विविधता k, रोग ℓ से सम्बन्धित किया जाता है तो यह ज्ञात होता है कि एक व्यक्ति में k स्थित है जिसके साथ रोग ℓ भी उपस्थित है। इस दृष्टिकोण से DNA के प्रतिबन्धी एन्जाइमों के द्वारा खण्ड बनाये जाते हैं चूँकि प्रत्येक व्यक्ति 200 क्षारों के बाद हरबार वैषम्य प्रदर्शित करते हैं तथा प्रतिबन्धी एन्जाइम इन्हें एक निश्चित स्थल पर खण्डित कर देते हैं। इन सभी में विविधता पाई जाती है। इन विविधता को प्रदर्शित करने वाले खंण्डों को RFLP अर्थात् (Restriction Fragment Leangth Polymorphism) कहते हैं। इन बहुरूपता के लिए अनुमान किया जाता है कि 'प्वाइंट म्यूटेशन' या बिन्दु उत्परिवर्तन, विलोपन, अभिवृद्धि आदि के कारण उत्पन्न हुई होगी। कैसे भी हो, इन खण्डों को जेल इलेक्ट्रोफोरेसिस या जेल विद्युत परिपथ से पहचाना जा

सकता है। ये जब विद्युत परिपथ पर संचलित होते हैं तो संचलन की गति इनके आकार एवं लम्बाई पर निर्भर करती है। इस परिवर्तित संचलन से उन्हें पहचान लिया जाता है। RFLP अध्ययनों को चार भागों में बाँटा गया है :

1. विलोपन निर्धारक RFLP
2. विकल्पी संहलग्न RFLP
3. संस्थिति सहलग्न RFLP
4. उत्परिवर्तन विशेष RFLP

1. विलोपन निर्धारक RFLP

प्रतिक्रमणी ट्रांसक्रिप्टेज़ एन्जाइम के प्रयोग के द्वारा mRNA से DNA का संश्लेषण किया जाता है। ग्लोबिन प्रोटीन हेतु एक विशेष प्रकार की रुधिर कोशिका रेटीकुलोसाइट से प्राप्त किया जा सकता है तथा ग्लोबिन DNA को इसी कोशिका से संश्लेषित कर सकते हैं। इस प्रकार के DNA की cDNA या कॉपी DNA कहते हैं। ये cDNA के प्रोब थैलासीमिया रोग से सम्बन्धित विलोपन में प्रयोग किये जा सकते हैं। इससे सम्बन्धित भ्रूण के रोगों का भी पता लगाया जा सकता है। भ्रूण DNA का विश्लेषण प्रतिबन्धी एन्जाइम से तथा प्रतिबन्धी खण्डों, का पृथक्करण एवं प्रोब निर्माण cDNA से किया जा सकता है।

2. विकल्पी सहलग्न RFLP

अध्ययनों से यह पाया गया कि अफ्रीकी नीग्रो (कैरीबियन) में Hpa I प्रतिबन्धी एन्जाइम के प्रयोग से 7.0 kb एवं 7.6 kb लम्बे खण्ड उत्पन्न हुए जो β ग्लोबिन जीन से सम्बन्धित होते हैं। इस समुदाय में इसकी आवृत्ति अत्यधिक कम (3%) है। जब कि सिकेल सेल ग्लोबिन जीन के खण्ड 13.0 kb लम्बे पाये गये। इस रोग से सम्बन्धित जीन के प्रतिबन्धी खण्डों की आवृत्ति लगभग 90 प्रतिशत पायी गयी। ये विशेष प्रकार के DNA खण्ड विकल्पी सहलग्न RFLP कहते हैं।

3. संस्थिति सहलग्न RFLP

इस प्रकार के अध्ययन DNA प्रोब विधि से किये गये, जिसके वंशावली अध्ययन से यह ज्ञात हुआ कि एक RFLP किसी विशेष विकृति से सम्बन्धित हैं। अन्य परिवारों में इस प्रकार का RFLP पाया गया लेकिन सभी परिवारों में इसकी

आवृत्ति नहीं मिली, जिससे यह संकेत मिलता है कि यह RFLP केवल एक संस्थिति से सहलग्न है न कि एक विकल्पी अथवा जीन से। जिन रोगों से यह सहलग्न पाया गया है उनमें से प्रमुख - थैलासीया, ड्कीनिन मांसपेशी बहुरूपता, हटिंगटन कोरिया आदि हैं।

4. उत्परिवर्तन विशेष RFLP

क्षारों का उत्परिवर्तन प्रतिबन्धी स्थलों में परिवर्तन उत्पन्न कर सकता है जिससे RFLP में विविधता की और वृद्धि होगी। सिकिल सेल एनीमिया जीन में हुए GAG से GTG का उत्परिवर्तन एक प्रतिबंधी स्थल को दूर हटा सकता है जो स्थल एन्जाइम DdeI (CTNAG) अथवा एन्जाइम mst II (CCTNAGG) के लिए अति महत्त्वपूर्ण है। इस प्रकार प्रतबंधी एन्जाइम के प्रयोग से उत्परिवर्तन का निर्धारण किया जा सकता। इसके निर्धारण के लिए सामान्य DNA तथा पचित DNA का β ग्लोबिन DNA प्रोब के क्लोन से सदर्न ब्लाट संकरण विधि का प्रयोग किया जाता है। यह दृष्टिकोण वहां उपयुक्त हो सकता है जहाँ एक प्रतिबंधी स्थल पर कोई विलोपन देखा जाये। यह β थैलासीमिया में प्रयुक्त नहीं हो सकता। मानव में अभी तक जो 5000 एकल जीन विकृतियाँ पहचानी गयी है उनमें लगभग 1500 विकृतियाँ क्लोन के प्रयोग वाली पुनर्संयोजन DNA तकनीक प्रयोग की गयी है। इनमें से प्रमुख विकृतियों को यहाँ एक तालिका में दर्शाया जा रहा है:

क्र. सं.	विकृति (Disorder)	आणविक विकृति का स्वरूप	वंशागति
	X-सहलग्न (X-Linked)		
1.	हीमोफीलिया-A	जीन उत्परिवरिवर्तन	X-सहलग्न अप्रबल विलोपन, प्रवेशन
2.	हीमोफीलिया-B	जीन उत्परिवर्तन,	X-सहलग्न अप्रबल विलोपन
3.	डयूकीन/वेकर मांसपेशी	विलोपन विकलांगता (Beeker Mascular Dystrophy)	X-सहलग्न अप्रबल
4.	क्रानिक ग्रैन्यूलोमैशस रोग	विलोपन	X-सहलग्न अप्रबल

क्रमशः

क्रमशः

	अलिंगसूत्री (Autosomy)		
1.	अल्फा-1 एण्टीट्रिप्सन	जीन उत्परिवर्तन डिफीसियेंसी	अलिंगसूत्री अप्रबल
2.	एण्टीथ्राम्बिन-III	विलोपन डिफीसियेंसी	अलिंगसूत्री प्रबल
3.	कांजीनिटल एड्रीनल	जीन उत्परिवर्तन हापरप्लेसिया ड्यू टु 21-हाइड्रोइलेज़ सिफीसियेंसी	अलिंगसूत्री अप्रबल
4.	सिस्टिक फाइबोसिस	विलोपन	अलिंगसूत्री अप्रबल
5.	संबृद्धि हारमोन	विलोपन डिफीसियेंसी (दुर्लभ फेमिला फार्म, GH एण्टीवाडील के साथ)	अलिंगसूत्री अप्रबल
6.	न्यूरोफाइब्रोमैटॉसिस टाइप-I (वॉन रेकलिघौसेन रोग)	विलोपन	अलिंगसूत्री प्रबल
7.	अस्टियोजेनेसिस इम्परफेक्टा (टाइप लीथल-नवजातों में)	जीन उत्परिवर्तन, कोलैजेन जीन में आंशिक विलोपन	अलिंगसूत्री प्रबल
8.	फिनाइलकीटोनूरिया	जीन उत्परिवर्तन, विलोपन	अलिंगसूत्री अप्रबल
9.	टै-सैक्स रोग	विलोपन, जीन उत्परिवर्तन	अलिंगसूत्री अप्रबल

(iii) RFLP हैप्लोटाइप (RFLP Haplotype)

यद्यपि एक विशेष प्रतिबन्धी के एक ही स्थल पर डी.एन.ए. के खण्ड किये या नहीं, यह सरलता से पहचाना जा सकता है, लेकिन विविध प्रकार के एन्जाइमों के प्रयोग से अतिरिक्त विविधता दर्शायी जा सकती है। ये एन्जाइम डी.एन.ए. को कुछ विशेष विभिन्न स्थलों पर अवगुण्टित करके अपेक्षाकृत निकटवर्ती सहलग्न

स्थलों पर खण्डन कर सकते हैं जिससे हैप्लोटाइप उत्पन्न होने की सम्भावना अधिक हो सकती है। आणविक आनुवंशिकी में हेप्लोटाइप प्रतिबन्धी खण्ड स्थलों का वह समूह है जो एक दूसरे से निकटवर्ती सह-लग्नता प्रदर्शित करें तथा किसी जीन से सानिध्य दर्शाये। इस प्रकार RELP के अतिरिक्त अन्य विविधतायें भी मानव जीनोम में खोजी जा चुकी है जो डी.एन.ए. स्तर पर असख्यों बहुरूपताओं के अस्तित्व की ओर संकेत करता है।

(iv) वैरियेबल नम्बर टेण्डेम रिपीट लक्षण (VNTR–Variable Number Tandem Repeat)

यह आणविक लक्षण सर्वाधिक विविधता प्रदर्शित करता है जिसका कारण एक छोटे DNA अनुक्रम के टेन्डेम आवृत्ति की परिवर्तनीय संख्या है। यह परिवर्तनीय संख्या मेंडलीय सिद्धान्तानुसार वंशानुगत होती है। इनकी लम्बाई के विभेद सम्भवतः मीयॉसिस के पुनर्संयोजन अथवा माइटॉसिस विभाजन के समजात क्रोमिटिडों के विनिमय के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं। ये विभेद डी.एन.ए. पुनरावृत्ति के दौरान रज्जुकी के एक दूसरे पर लिपटकर फिसलने के कारण भी उत्पन्न हो सकते हैं। यदि आवृत्ति इकाई के DNA अनुक्रम के अन्तर्गत कोई उपयुक्त प्रतिबन्धी एन्जाइम खण्डन न करे तो इनके उपयोग से VNTR के अधिकाधिक विभेदों को अध्ययन किया जा सकता है। ये लक्षण RFLP से बहुत अधिक परिवर्तनीय होते हैं। मानव में इस प्रकार के कई VNTR पाये गये हैं। उदाहरणस्वरूप ये मानव इसलिए जीन के निकटस्थ तथा अल्फा ग्लोबिन संस्थिति पर देखे गये हैं। इनकी अल्फा ग्लोबिन संस्थिति से सहलग्नता एक उस संस्थिति की सहलग्नता का सूचक है जिससे पॉली सिस्टिक किडनी रोग का सम्बंध पाया गया है। इस प्रकार इस ज्ञान के आधार पर प्रभावित परिवार में इस रोग की सम्भावना का पता लगाया जा सकता है। मानव के ये अधिकाधिक परिवर्तनीय क्षेत्र सम्पूर्ण जीनोम में विस्तृत है। ये लगभग 10-15 क्षार युग्म के मूलानुक्रम (Consequence) है। यदि इन मूलानुक्रमों का 'प्रोब' तैयार कर लिया जाये तथा उनका उपयोग किया जाये तो इन अधिकाधिक परिवर्तनीय DNA खण्डों के प्रारूप पहचाने जा सकते हैं। यह तकनीक जो जेफरेज़ के द्वारा विकसित की गयी है वह अनूठी है तथा किसी भी व्यक्ति को पहचानने में विशिष्ट है, इसका नाम 'फिंगरप्रिंटिंग' (Finger Printing) है।

विशिष्ट DNA अनुक्रम को तुरन्त पहचानने के लिए 'मिनीसैटलाइट' में इनके पार्श्व में चारों ओर दगा देने से इनमें मिनी-सैटलाइट में चमक उत्पन्न हो जाती है जिससे मानव जीनोम में इनकी स्थिति को पहचान लिया जाता है।

मिनी सैटेलाइट, डी.एन.ए. के छोटे सूक्ष्म खण्ड हैं जिनकी अनुक्रम की आवृत्ति हजारों बार होती है। इसलिए ये सूक्ष्म खण्ड अत्यधिक परिवर्तनीय है। ये निकटवर्ती सम्बन्धियों में समानता तथा गैर सम्बन्धियों में पूर्णतः भिन्न होते हैं। इनकी आवृत्ति संख्या की यह भिन्नता, उत्परिवर्तन के द्वारा इनके अनुक्रम आवृत्ति के विलोपन अथवा वृद्धि से उत्पन्न होती है। इसके फलस्वरूप इस बहुरूपता का वैकल्पिक नाम 'टैण्डम आवृत्ति की परिवर्तनीय संख्या' या 'वैरियेबल नम्बर टैण्डम रिपीट' (Variable number Tandem Repeat-VNTR) रखा गया है। चूँकि एक या एक से अधिक समान मूल पूर्वज अनुक्रमों से अनेकों आवृत्त अनुक्रम (Repeated Sequences) विकसित होते हैं, अतः प्रत्येक अतिपरिवर्तनीय संस्थिति अन्य संस्थितियों से भी कुछ अनुक्रम समानता रखते है। यह तथ्य तब प्रदर्शित किया जा सकता है जब इन समान संस्थितयों का 'एक प्रोब' के समान उपयोग करके पहचाने जाने वाले अनुक्रमों के साथ संकरण करायें जाय। जेफरेज एवं उनके सहयोगियों ने 'बहुसंस्थिति प्रोब' (Multi-Locus Probes) का वर्णन किया है। ये प्रोब मायोग्लाबिन जीन के इन्ट्रान (Intron of Myoglobin Gene) तथा अन्य अलिगसूत्री जीन के संकरण से उत्पन्न किये गये। फाडलर एवं उनके सहयोगियों ने सन् 1988 में उपयुक्त प्रोब को इंसुलिन तथा अल्फा ग्लोबिन से उत्पन्न किये। ये चूँकि गैर सम्बन्धी इस प्रकार की संख्या आवृत्ति में भिन्नता रखते थे, इसलिए डी.एन.ए. खण्ड जो व्यक्तियों के डी.एन.ए. से ये जेल इलैक्ट्रोफोरेसिस से पृथक किये जा सकते हैं। इन संख्या आवृत्ति में विभिन्नता के कारण दोनों DNA पूर्णतः भिन्न प्रारूप देंते हैं। इसके विपरीत यदि दोनों सगे सम्बन्धी हों तो DNA प्रोफाइल अत्यधिक समान होते हैं। डी. एन. ए. प्रारूपों की समानता का स्तर सम्बन्धों की निकटता पर निर्भर करती है। DNA प्रारूपों की यह समानता तथा विषमता सदर्न ब्लाटिंग तकनीक से निर्धारित की जा सकती है। इस प्रकार प्राप्त DNA फिंगरप्रिंट के अभिलेख, किसी अपराधी या वैयक्तिक पहचान हेतु सुरक्षित रखे जा सकते हैं। DNA प्रोफाइल का इसके अतिरिक्त भी कई क्षेत्रों में उपयोग किया जा सकता है।

(V) CA आवृत्तियाँ (CA Repeat)

अत्याधुनिक अनुसंधानों से यह ज्ञात हुआ है कि मानव जीनोम में लगभग 50.1 लाख टैण्डम आवृत्तियों की परिवर्तनीय संख्याओं के समूह स्थित हैं। यह समूह डाईन्यूक्लियोटाइड-CA:GT के सूक्ष्म टैण्डम आवृत्तियाँ हैं। इन्हें CA आवृत्तियों के नाम से जाना जाता है। इन आवृत्तियों की विशेषता यह है कि एक युग्मनज यमजों के अतिरिक्त किन्हीं भी दो व्यक्तियों में एक समान नहीं होती। वंशावली अध्ययनों से यह ज्ञात हुआ है कि ये आवृत्तियाँ मेण्डलीय सिद्धान्तों के अनुसार ही वंशानुगत होती है। अध्ययनों से यह भी ज्ञात हुआ है कि ये आवृत्तियाँ मानव रोगों की अनुमानित संस्थित से भीं सहसम्बन्ध रखती है।

(VI) भ्रूण डी.एन.ए. परीक्षण (Foetal DNA Diagnosis)

पुनर्संयोजन डी.एन.ए. तकनीक में युवाओं/प्रौढ़ों के DNA उनकी रुधिर कोशिकाओं, ब्यूकल स्मियर आदि से प्राप्त किया जाता है। लेकिन जन्म-पूर्व परीक्षण हेतु भ्रूण का DNA प्राप्त करना पड़ता है। इसे एम्नियोसंटेसिस (Amniocentesis) विधि से निकाला जाता है। लेकिन यह विधि पूर्णतः सन्तोषजनक नहीं है क्योंकि इस विधि से गर्भधारण की पूर्व अवस्था में DNA प्राप्त नहीं किया जा सकता। इसकी वैकल्पिक तकनीक कारियानिक विली (Chorianic Villi) की 'वायोप्सी' (Biopsies) है। इस तकनीक से प्रथम तीन माह में गर्भ DNA प्राप्त किया जा सकता है। इस तकनीक में एक इण्डोस्कोपी उपकरण को गर्भाशय में प्रवेश कराकरके कोरियानिक विली की बायोप्सी प्राप्त कर ली जाती है। शुद्ध भ्रूण का लगभग 100 mg DNA गर्भधारण के छठे अथवा दसवें माह में प्राप्त कर सकते हैं। इस तकनीक की सफलता के लिए PCR या पॉलीमरेज़ चेन रिएक्सन विधि का अनूठा योगदान है। जिसके फलस्वरूप कम से कम मात्रा में प्राप्त डी.एन.ए. का विश्लेषण सम्भव हो सकता है। बुगावन एवं उनके सहयोगियों ने सन् 1988 में भ्रूण परीक्षण द्वारा यह सिद्ध किया कि डी.एन.ए. विश्लेषण के लिए भ्रूण कोशिकाओं का संवर्धन (Culture) आवश्यक नहीं है। कोगन एवं उनके सहयोगियों (1987) ने DNA शुद्धीकरण को अनावश्यक बताते हुए भ्रूण के डी.एन.ए. खण्डों को y गुणसूत्र के लिए पहचानने में सफल हुए। इससे भ्रूण परीक्षण त्वरित गति से सम्भव हो गया है।

❑❑❑

7

जनसंख्या आनुवंशिकी
(Population Genetics)

जैविक लक्षणों की वंशागति की क्रियाविधियों का अध्ययन आनुवंशिकी में किया जाता है। जब किसी एक लक्षण अथवा अनेकों लक्षण की वंशागति क्रियाविधियों का अध्ययन जनसंख्या या जनसमुदाय के स्तर पर किया जाता है तो अध्ययन शाखा को 'जनसंख्या-आनुवंशिकी' (Population Genetics) कहते हैं। इसके अन्तर्गत किसी एक लक्षण के पता लगने पर प्रायः कुछ प्रश्नों का समाधान खोजा जाता है। यह लक्षण कैसे उद्विकसित हुआ? जनसंख्या में इसकी कितनी आवृत्ति है? यह आवृत्ति किसी एक जनसंख्या में अधिक तथा दूसरी में कम क्यों है? क्या यह लक्षण भविष्य में भी अस्तित्ववान रहेगा अथवा नहीं? यह जनसंख्या में घटता बढ़ता कैसे है? आदि। दूसरे शब्दों में 'जनसंख्या आनुवंशिकी का उद्देश्य किसी जनसमुदाय की जीनी संरचना, तथा उससे सम्बन्धित नियम तथा सिद्धान्तों का अध्ययन करना है जो उस संरचना का नियन्त्रण एवं स्वरूप प्रदान करते हैं।'

प्रत्येक जनसमुदाय विभिन्न जीन प्ररूपों से बने होते हैं। ये जीनप्ररूप एक समुदाय में अपनी निश्चित आवृत्ति रखते हैं। लेकिन जन आनुवंशिक अध्ययन की आधारभूत इकाई एक "जीन" है न कि "जीनप्ररूप"। वस्तुतः जीनप्ररूप किसी

जीन का अनुवांशिक स्वरूप होता है। वह जीन का एक भाग है। जीन के दूसरे भाग को लक्षण-प्ररूप (Phenotype) कहते है। किसी भी जीन का व्यक्त रूप लक्षण प्ररूप कहलाता है तथा जीनी स्वरूप 'जीनप्ररूप' कहा जाता है। प्रत्येक जनसमुदाय इन्हीं जीनी प्ररूपों के विशिष्ट समूहों के द्वारा पहचाना जाता है। अतः किसी जनसमुदाय की आनुंवशिकी को समझने के लिए जीन आवृत्ति के आंकड़े एक आवश्यक तथा प्राथमिक आवश्यकता है।

कॉवली स्फोर्ज़ा एवं बाड्मर (Cavalli Sforga and Bodmer 1971) के शब्दों में "जनसंख्या आनुवंशिकी वंशानुगत लक्षणों की विविधताओं के स्रोत एवं स्वभाव से सम्बन्धित हैं। इसमें जनसमुदाय के किसी लक्षण हेतु उत्तरदायी जीन की आवृत्ति के परिदर्तनों का अध्ययन किया जाता है। उन परिस्थितियों का भी अध्ययन किया जाता है जिससे आनुवंशिक संतुलन उद्विकासीय बलों से प्रभावित होते हैं।"

इसप्रकार यह इंगित होता है कि जनसंख्या आनुवंशिकी, आनुवंशिकी की वह शाखा है जो एक जनसंख्या में होने वाले आनुवंशिक तथा उद्विकासीय बलों के प्रभावों का अध्ययन करता है। इसके अध्ययन की विधियां प्रत्यक्ष रूप से निर्धारित आनुवंशिकी सिद्धान्तों तथा मानव जनसंख्या की सीमा रेखा से सम्बद्ध होती है। इसमें **जनसंख्या** का विशेष महत्व होता है। यह तब तक अध्ययन के योग्य नहीं होती जब यह सुनिश्चित न हो जाये कि प्रस्तावित जनसंख्या एक मेंडलीय जनसंख्या है। अतः **"मेंडलीय जनसंख्या"** जनसंख्या अनुवंशिकी की मौलिक आवश्यकता है। इसे डॉब्जान्सकी (Dobzhansky) ने इस प्रकार परिभाषित किया है:

"यह अन्तर्जनित व्यक्तियों का वह प्रजननात्मक समुदाय है जिसका जीनपूल एक ही होता है।"

किसी मेण्डलीय जनसंख्या में अनेको छोटे-छोटे उपमेंडलीय जनसमूह हो सकते है। स्पीसीज (Species) एक सर्वाधिक बड़ा जनसमूह है। प्रत्येक स्पीसीज एक दूसरे से भिन्न इसलिये होते है क्योंकि प्रत्येक जनसमुदाय के जींनपूल में भिन्नता पायी जाती है। जीनपूल या जीन समिष्ट किसी प्रजननशील जनसमूह के सभी जीनों का समूह होता है। मानव प्रजातियां, 'जीनपूल' या जीन समीष्ट किसी प्रजननशील जनसमूह के सभी जीनों का समूह होता है। मानव प्रजातियां, मेंडलीय जनसंख्या के

जीवन्त दृष्टांत हैं। ये मानव प्रजातियां जीनपूल की भिन्नता के कारण एक दूसरे से भिन्न होती है। ये भिन्नतायें सामान्यतया लक्षण प्ररूप में ही परिलक्षित होती है। लेकिन इन जनसंख्याओं के मध्य जीन विनिमय निरन्तर रूप से होता है जिससे जीनपूलों में सम्भावित एवं वास्तविक जीन प्रवाह होता रहता है।

मेण्डलीय समुदाय की महत्वपूर्ण विशिष्टता यह है कि इनका प्रजनन पृथक होता है। इसके सदस्य अपने वैवाहिक सम्बन्ध उसी समूह में करते हैं। साधारणतया प्रजननशील समूह जनांकिकी के आधार पर अत्यन्त छोटा होता है। इनकी प्रजनन पृथकता कई कारकों पर निर्भर करती है। इन काकरकों में भौगोलिक अवरोध अत्यन्त सुस्पष्ट कारक है। इसके अतिरिक्त धार्मिक, सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक कारक होते हैं। भौगोलिक बाधाओं के कारण पृथक प्रजनन के अनेको उदाहरण है जैसे- ग्रीन लैण्ड के एस्कीमों, प्रशान्तमहासागरीय क्षेत्र के पिटकैर्न, बंगाल की खाड़ी में अण्डमानीज आदि। धार्मिक तथा सांस्कृतिक अवरोध के कारण फिलिस्तीन के समारिटन तथा भारत स्थित कोचीन के यहूदी मिल नहीं पाते। वे जनसमुदाय जो फ्रेंच, जर्मन, इटालियन, रसियन आदि भाषायें बोलते है, अन्य किसी जनसमूह से विवाह करना उचित नहीं मानते।

इस प्रकार एक मेण्डलीय समूह में सन्तान जनन हेतु सक्षम एवं सुयोग्य युगल होते हैं। फलस्वरूप इसके समस्त सदस्य वैवाहिक, पितृजता अथवा समान वंशजता के बन्धनों से संयुक्त होते है। मेंन्डलीय समूह का जीवन्त दृष्टान्त स्वयं मानव जाति है जिसकी जनसंख्या विशाल है इससे छोटी मेंडलीय जनसंख्या -वर्तमान मानव प्रजातियां पुनः और छोटे मेंडलीय समूहों में विभक्त होती हैं जैसे- भाषाई, धार्मिक, राष्ट्रीय, आर्थिक, आदि। अतः भाषाई, धार्मिक, राष्ट्रीय, आर्थिक आदि समूह मेण्डलीय समूह हो सकते हैं यदि उस समूह के समस्तसदस्य परस्पर वैवाहिक या रक्त सम्बन्धों से जुड़े हों। भारत में वर्णाश्रम व्यवस्था (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) मेण्डलीय जनसंख्या हैं। प्रत्येक जातियां तथा जनजातियां अन्तर्विवाही होती हैं, ये सभी विशिष्ट मेण्डलीय जनसंख्यायें हैं। इन जातियों में भी वैवाहिक पृथकता पायी जाती है जिससे एक जाति में ही कई मेण्डलीय समूह पाये जाते हैं। उदाहरणस्वरूप ब्राह्मण जाति में कान्यकुब्ज, सरयूपारी, सनाढ्य आदि पृथक-पृथक अन्तर्विवाही समूह होते हैं। ये समूह दूसरे ब्राह्मण समूहों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित नहीं करते

है। इन समूहों में अपने समूह के सदस्यों में ही विवाह-सम्बन्ध स्थापित करनें की प्रवृत्ति पायी जाती है। ये सभी समूह एक मेण्डलीय जनसंख्यायें हैं। क्षत्रियों या राजपूतों में वैवाहिक परम्परा भिन्न होती है। इनमें अनेकों वंश होते हैं। सभी वंश वहिर्विवाही है। लेकिन क्षेत्रीयता के आधार पर इस जाति में कई उपसमूह दृष्टिगत होते हैं जैसें- मैदानी भाग (गंगा-यमुना मैदानी क्षेत्र) के राजपूत हिमालय पहाड़ी क्षेत्रों के राजपूतों में विवाह की प्रवृत्ति नहीं पाई जाती है। राजपूताना क्षेत्र (राजस्थान) के क्षत्रिय पश्चिमी बंगाल उड़ीसा के कथित क्षत्रियों में विवाह नहीं करते। अन्य शब्दों में क्षत्रिय जाति में भौगोलिक बाधाओं, क्षेत्रीयता आदि के आधार कई समूह एवं उपसमूह होते हैं, जिन्हें एक मेण्डलीय समूह कह सकते हैं। इसीप्रकार वैश्य एवं शूद्रों में असंख्यों मेण्डलीय समूह हैं। ये सभी समूह पृथक एवं विशिष्ट 'जीनपूल' या जीन-समष्टि' को प्रदर्शित करते हैं। जिसके फलस्वरूप इन समूहों में आकारिक एवं आनुवंशिक भिन्नतायें पाई जाती हैं जैसे राजपूताना के क्षत्रिय लम्बे, श्वेतांग, लम्बी एवं ऊँची नासिक वाले होते हैं। जबकि बंगाल क्षेत्र के कथित क्षत्रिय मध्यम कद, श्यामल तथा छोटी एवं दबी नाक आदि लक्षणों को प्रदर्शित करते हैं। मैदानी क्षेत्र के क्षत्रिय मध्यम कद, श्वेत-श्याम त्वचीय रंग के होते हैं। जबकि हिमालय क्षेत्रीय कथित क्षत्रिय छोटे कद, श्वेतपीत त्वचीय रंग के लक्षणों को प्रदर्शित करते हैं। ये सभी आकारिक भिन्नतायें इनके विशेष 'जीनपूल' के कारण प्रदर्शित होती हैं। इनका यह जीनपूल सदैव स्थायी नहीं रहता अपितु इसमें कई आनुवंशिक एवं पर्यावरणिक कारणों से परिवर्तन होता रहता है।

यह स्पष्ट है कि मेण्डलीय जनसंख्या, जन-आनुवंशिकी की एक खुली प्रयोगशाला है। आनुवंशिक प्रयोगशाला में जिसप्रकार एक अनुसंधानकर्ता अपनी इच्छानुसार पौधों में, जंतुओं में मिलन करवाता है। अपने प्रयोग को संचालित तथा नियन्त्रित करता है, वे प्रयोग मानव जनसंख्या में सम्भव नहीं है। इसमें प्रयोगशाला अनुसंधानकर्ता न तो संचालन कर सकता है, और न ही नियंन्त्रण कर सकता है। ये प्रयोगशाला स्वतःसंचालित होती है। उस समुदाय के वैवाहिक रीति-रिवाजों से संचालित होती है तथा सांस्कृतिक एवं सामाजिक संरचना के नियमों के अनुसार नियन्त्रित होती है। अतः मेण्डलीय जनसंख्या का सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व विवाह-प्रतिरूप या मिलन है। किसी भी मानव समुदाय का मिलन प्रतिरूप उसके जीनपूल के स्थायित्व अथवा

परिवर्तन का नियंन्त्रण करता है। जिस प्रकार जन-आनुवंशिकी के अस्तित्व की कल्पना मेण्डलीय जनसंख्या के बिना नहीं की जा सकती है उसी प्रकार मिलन-प्रारूप के बिना मेण्डलीय जनसंख्या की कल्पना मात्र भी नहीं की जा सकती है।

जैसा कि यह बताया जा चुका है कि मेण्डलीय जनसंख्या के जीनपूल, उस जनसंख्या की समस्त जीनी आवृत्तियों का योग है। दूसरे शब्दों में किसी जनसंख्या का प्रजननशील समूह की सभी प्रकार की जीन-आवृत्तियों का संकुल 'जीन-पूल' या जीन-समष्टि' कहा जाता है, इसलिए 'जीन-पूल' को समझने के लिए जीन-आवृत्ति (Gene Frequency) को जान लेना आवश्यक होगा।

जीन आवृत्ति
(Gene Frequency)

इसके पूर्व यह स्पष्ट किया गया था कि मानव समूह में पाये जाने वाले प्रत्येक आनुवंशिक लक्षण किसी न किसी 'जीन' से सम्बद्ध होते हैं। वे लक्षण जो आकारिक है, किसी न किसी जीन समूह से सम्बद्ध होते हैं। आकारिक लक्षण के लिए कितने जीन सम्बद्ध होते है, इसका अनुमान करना अत्यन्त कठिन तथा विवादग्रस्त है। आनुवंशिक लक्षण, चूंकि किसी एक जीन से नियंन्त्रित होते हैं इसलिए इसका लक्षण प्ररूप (Phenotype) तथा जीन-प्ररूप (Genotype) सरलता से ज्ञात किया जा सकता है। उदाहरण स्वरुप कुछ मानवों में 'फिनाइल-थार्यो-कार्बामाइड घोल" (Phenyl–Thio–Carbamide Solution) की स्वादक क्षमता होती है, कुछ व्यक्ति इस रसायन घोल को चखने में पूर्णतः अक्षम होते हैं। यह स्वादक क्षमता के लिए उत्तरदायी जीन को "T" से सम्बोधित किया जाता है। इस जीन के दो विकल्पी– T एवं t होते हैं। T– विकल्पी, प्रभावी तथा, अप्रभावी विकल्पी–t होता है। इस जीन के दो लक्षण प्ररूप–स्वादन एवं अस्वादन क्षमता है जब कि तीन इनके जीन प्ररूप TT, tt तथा Tt हैं।

आनुवंशिक लक्षणों के लक्षण प्ररूप को ज्ञात करना सरल है क्योंकि इसका प्रत्यक्ष रूप से पता लगाया जा सकता है लेकिन प्रत्यक्ष रूप से जीन प्ररूप का ज्ञान विरले ही हो पाता है क्योंकि यह सुनिश्चित करना अत्यन्त कठिन है कि कौन सा युग्म किन-किन जीनों को समावेश किये हुए है। ऐसी स्थिति में एक जीन के

अवलोकित लक्षण प्रारूप की आवृत्ति से निष्कर्ष निकाला जाता है। यदि अप्रभावी समयुग्मजी के लक्षण प्ररूप की आवृत्ति ज्ञात होती है, तो इसके आधार पर इसके जीन-प्ररूप की आवृत्ति ज्ञात की जा सकती है।

हम यहाँ स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि जनसंख्या आनुवांशिकी में दो प्रकार की आवृत्तियों की अवधारणा प्रस्तुत की गयी है:- पूर्ण आवृत्ति (Absolute Frequency) तथा सापेक्ष आवृत्ति (Relative Frequency) । उदाहरण के लिए यदि हम एक द्विगुणित जनसंख्या में एक जीन के दो विकल्पी-A तथा a मान लें तो इसके जीनी प्ररुप AA, Aa तथा aa होंगें। इनकी दोनों आवृत्तियां इस प्रकार होंगी:

जीनप्ररुप	पूर्णआवृत्ति	सापेक्ष आवृत्ति
AA	N_1	$P_{11} = N_1/N$
Aa	N_2	$P_{12} = N_2/N$
aa	N_3	$P_{22} = N_3/N$
योग	**N**	**1**

इस तालिका में तीनों जीन प्ररुपों की पूर्ण आवृत्ति क्रमशः N_1, N_2 तथा N_3 है। जबकि सापेक्ष आवृत्ति P11, P12 तथा P22 है। यहां पर यदि A जीन (विकल्पी) की आवृत्ति "p" है तथा q a जीन (विकल्पी) की आवृत्ति है तो :

$p = P_{11} + \frac{1}{2} P_{12}$ एवं $q = P_{22} + \frac{1}{2} P_{12}$ है- जहां $p+q=1$ हैं।

एक मेण्डलीय जनसंख्या में जीन प्ररुपों की सापेक्ष आवृत्तियां परिवर्तित हो सकती है। यह आवृत्ति परिवर्तन या तो किसी विशेष जीन आवृत्ति के परिवर्तन से होता है या उस जनसंख्या के किसी विशेष मिलन प्रारुप को स्वीकार लेने से होता है। किसी एक विशाल मेण्डलीय जनसमुदाय की जीन आवृत्ति में परिवर्तन के लिए उत्तरदायी तीन प्रमुख उद्विकासीय बल- उत्परिवर्तन, वरण एवं प्रसारण होते हैं। अन्तःप्रजनन, अयादृच्छिक मिलन आदि सामाजिक मिलन व्यवस्थायें प्रत्यक्ष रुप से जीन-प्ररूप की आवृत्ति को परिवर्तित करते हैं। भले ही जीन आवृत्ति स्थिर मान लिया जाये। इसके अतिरिक्त जीन अपसरण, पृथक्करण तथा संकरण उद्विकासीय

बल हैं जो किसी भी मेण्डलीय जनसंख्या की जीन आवृत्ति में परिवर्तन ला सकते हैं। इनमें जीन अपसरण उस समय अधिक सक्रिय होता है जब किसी मेण्डलीय समूह की जनांकिकी छोटी हो।

जीन आवृत्ति का आंकलन हार्डीवीनवर्ग सिद्धान्त पर आधारित है। इस सिद्धान्त के अनुसार एक जनसंख्या की जीन आवृत्तियां पीढ़ी दर पीढ़ी स्थायी रहती है यदि उन पर उद्विकासीय बलों का प्रभाव न हो। इस सिद्धान्त की सर्व सम्मत मान्यता से एक जनसंख्या की जीन आवृत्तियां की कुछ विधियां प्रस्तावित की गयीं। इनमें से की विधियों में "बर्नस्टीन पद्धति" (Bernstien Method) अत्यधिक सरल एवं प्रत्यक्ष सांख्यंकीय विश्लेषणों पर आधारित है। इस विधि में हागवेन, हाल्डेन, फिशर, राइट्स आदि प्रख्यात जनसंख्या-आनुवंशिकी के प्रणेताओं ने संशोधन किये। इस प्रकार इस विधि का अनुसरण करते हुए किसी जनसंख्या के जीन आवृत्ति का आंकलन करना चाहें, तो आनुवंशिकी के सांख्यकीय अनुपातों को आधार मानना होगा। इस सांख्यकीय सम्भावना के अनुसार अप्रभावी समयुग्मजी का अनुपात 1/4 होता है। इस प्रकार यदि अप्रभावी समयुग्मजी जीन की पूर्ण आवृत्ति ज्ञात कर ली जाये, तो इसकी सापेक्ष आवृत्ति सरलता से आंकलित की जा सकती है, उदाहरणस्वरुप यदि विहार की उरांव जनजाति में स्वादक 65 प्रतिशत एवं अस्वादक 35 प्रतिशत है। अप्रभावी समयुग्मजी जीन की आवृत्ति निम्न प्रकार से आंकलित की जायेगी :

यदि $tt=(1-q)^2$

$=.35$

$t=\sqrt{.35}$

$=0.59$

चूंकि स्वादक जीन के दो विकल्पी होते हैं तो प्रभावी विकल्पी की दर इस प्रकार ज्ञात की जा सकती है :

$$p = 1-q$$
$$= 1-0.59$$
$$= 0.41$$

उक्त प्रभावी विकल्पी की आवृत्ति के आधार पर प्रभावी समयुग्मजी TT की आवृत्ति ज्ञात कर सकते हैं :

$p^2 = (0.41)^2$
$= .1681$

फिर विषमयुग्मजी Tt की आवृत्ति इस प्रकार होगी :

$2pq = 1 - p^2 - q^2$
$= 1 - .1681 - .3500$

अतः $= 0.4819$

इसप्रकार उक्त बर्नस्टीन पद्धति का अनुसरण करते हुए किसी भी जीन आवृत्तियों को ज्ञात किया जा सकता है। यदि किसी जीन के ज्ञात विकल्पी दो से अधिक हैं जैसे- बहुविकल्पी- ABO, Rh आदि तो उसकी आवृत्ति के आंकलन का मान निम्न प्रकार से निकाला जा सकता है:

$p + q + r +$---------------- -= 1

हार्डी-वीनबर्ग सिद्धान्त
(Hardy-Weinberg Law)

जनसंख्या आनुवंशिकी के क्षेत्र में सन् 1908 में दो वैज्ञानिकों ने अत्यधिक महत्वपूर्ण योगदान किये। दोनों व्यक्तियों ने स्वतन्त्ररुप जनसंख्या में जीन आवृत्तियों के विश्लेषण की सरल गणितीय विधि विकसित की। ये दोनों महान विशेषज्ञ क्रमशः इंग्लैण्ड एवं जर्मनी के थे। ये दोनों जी०एच०हार्डी (G.H. Hardy) इंग्लैण्ड के एक सुयोग्य गणितज्ञ थे तथा विलहेम बीनबर्ग (Wilhelm Weinberg) जर्मन के एक प्रसिद्ध चिकित्साविद थे। यद्यपि उस समय इनका यह महान योगदान मेंडलीय आनुवंशिक सिद्धान्तों पर कार्य करने वाले आनुवंशिकविदों के द्वारा नहीं जाना गया, लेकिन कालान्तर में वींसवी शदी के तीसरे दशक के पश्चात् जनसंख्याओं में जीन वितरण से सम्बन्धित अध्ययनों का महत्वपूर्ण भाग बन गया।

इस विद्धान्त के अनुसार एक जनसंख्या में विकल्पी एक दूसरे से सम्बन्ध स्थापित करते हुए एक सन्तुलन (equalibrium) स्थापित करते हैं। उदहारण स्वरूप यदि दो विकल्पी किसी विशाल एवं पृथक जनसंख्या में समान अनुपात में घटित होते हैं तो यदि उनमें से एक का वरण दूसरे की अपेक्षा अधिक न हो, उनमें से एक विकल्पी दूसरे की भांति प्रायः उत्परिवर्तित न हो, तो इस विद्धान्त की उपेक्षा के अनुसार पीढ़ी दर पीढ़ी ये विकल्पी समान अनुपात में बनें रहेंगे। इनमें से चाहे

कोई विकल्पी प्रभावी हो तथा दूसरा अप्रभावी है, या दोनों सह प्रभावी हों, इसका प्रभाव इस जीनी सन्तुलन (genetic equalibrium) पर नहीं पड़ेगा। चूंकि यह सत्य है कि हम जन-आनुवंशिक अध्ययनों में किसी विशाल एवं पृथक जनसंख्या का 'प्रतिदर्श समूह' (Sample -population) का ही अध्ययन कर पाते हैं, सम्पूर्ण जनसंख्या का नहीं, फिर भी यह जीनी संतुलन इन अध्ययनों में व्यावहारिक एवं उपयोगी हैं क्योंकि एक प्रतिदर्श समूह पूर्ण रूप से एक विशाल जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करता है। अतः प्रतिदर्श समूह चयन गणितीय विधि सम्मत अध्ययन की तकनीक है।

संक्षेप में, यह सिद्धान्त अत्यन्त वस्तुनिष्ठ एवं सन्तुलित है, यदि निम्न अवधारणायें साकार हों।

(i) जीन आवृत्ति में उत्परिवर्तन, वरण एवं प्रसरण के कारण से कोई परिवर्तन न आये,

(ii) जनसंख्या संख्या में विशाल हो; तथा

(iii) एक जीन प्ररूप के प्रत्येक सदस्य को, किसी दूसरे जीन-प्ररूप के प्रत्येक सदस्य से मिलन सम्बन्ध स्थापित करने में उन्हें समान अवसर प्राप्त हों।

उक्त अवस्थाओं के घटित होने पर जनसंख्या की जीन-आवृत्ति पीढ़ी दर पीढ़ी स्थिर हो जायेगी। लेकिन प्राकृतिक मानव-जनसंख्याओं में उक्त अवधारणा विरले ही साकार हो पाती हे। उक्त में से निम्न दोनों अवधारणायें परस्पर विरोधाभासी है। क्योंकि विशाल जनसंख्या में प्रत्यके जीन आवृत्ति के प्रत्येक सदस्य कभी भी विशेष युवती मिलन सम्बंध स्थापित करने के समान अवसर कभी भी प्राप्त नहीं कर सकते क्योंकि मिलन व्यवस्था पर भौगोलिक विस्तार, बाधाओं एवं सामाजिक-सांस्कृतिक तथा आर्थिक प्रतिमानों का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है।

यदि हार्डी वीनवर्ग सिद्धान्त का प्रयोग जीन आवृत्ति की गणना मे करें तो द्विनामी सन्तुलन (Binomal equation) के अनुसार दो विकल्पी (A, a) वाले जीन की आवृत्ति b तथा q है तो इसके जीन प्ररूप की आवृत्ति में सख्यातिक अनुपात निम्न प्रकार का होगा।

$P+q = 1 \ (A+ a =1)$

चूंकि प्रत्येक जीन के जीन प्ररूप में दो विकल्पियों की संहति होती हे। इनका विकल्पी स्वरूप प्रभावी (AA) तथा अप्रभावी (aa) होता है। इन भिन्न विकल्पी संहति वाले दो स्त्री पुरूष जब सहवास करते है तो उनसे तीसरी पीढ़ी में तीन प्रकार के विकल्पी रूप प्राप्त होते हैं : प्रभावी समयुग्मजी (AA) अप्रभावी समयुग्मजी (aa) विषमयुग्मजी (Aa)। इस प्रकार यह तीन विकल्पी रूप पाये जा सकते हैं। उस जनसंख्या में इनके जीन प्ररूपों की आवृत्ति इस प्रकार होगी :

जीन प्ररूप	AA	Aa	aa	= 1
आवृत्ति	P^2	$2pq$	q^2	= 1

हार्डी-वीनवर्ग के सिद्धान्त के अनुसार उक्त विकल्पियों के मिलन अगली पीढ़ी में भी स्थायी होंगे। इनके मिलन प्रारूप निम्न तालिका में प्रदर्शित किये जा रहे हैं:

विभिन्न प्रकार के मिलन (संगमों) की आवृत्तियां

O	O	AA p^2	Aa $2pq$	aa q^2
AA	p^2	p^4	$2p^3q$	p^2q^2
Aa	$2pq$	$2p^3q$	$4p^2q^2$	$2pq^3$
aa	q^2	p^2q^2	$2pq^3$	q^4

उक्त तालिका से प्राप्त मिलन आवृत्तियों के आधार पर जब सन्ततियों में निर्दिष्ट जीन की आवृत्ति देखी जाती है तो वह उसकी आवृत्ति में कोई परिवर्तन नहीं पाया जाता इसके अनुपात को निम्न तालिका में दर्शाया जा रहा है :

मिलन प्रकार तथा सन्ततियों के जीन प्ररूप

माता/पिता	मिलन प्ररूप	सन्तति आवृत्तियां		
O	(आवृत्तियां)	AA	Aa	aa
AA × AA	P^4	P^4	_	_
AA × Aa Aa × AA	$4p^3q$	$2p^3q$	$2p^3q$	_
Aa × Aa	$4P^2q^2$	p^2q^2	$2p^2q^2$	p^2q^2
Aa × aa aa × Aa	$4pq^3$	_	$2pq^3$	$2pq^3$
aa × aa	q^4	_	_	q^4
Total	**$(1)^2$**	**$= (p^2$**	**$2pq$**	**$q^2)^2$**

इस प्रकार उक्त तालिका से यह प्रभावित होता है कि पीढ़ी दर पीढ़ी (सन्ततियों) में भी जीन-प्ररूपों की आवृत्ति उसी अनुपात में स्थिर रहती है जिस अनुपात में यह जनकों में पायी जाती है। इस सिद्धान्त का उपयोग बहुविकल्पियों- ABo, Rh, MNs आदि में भी किया जा सकता हैं।

हार्डी वीनबर्ग सिद्धान्त तथा यादृच्छिक मिलन (Hardy-Weinberg Law and Random Mating)

हार्डी वीनबर्ग सिद्धान्त मुख्य रूप से तभी सत्य प्रमाणित हो सकता है जब किसी जनसंख्या में यादृच्छिक मिलन व्यवस्था (Random mating) प्रचलित हो। यदि किसी जनसंख्या में यादृच्छिक लैंगिक मिलन की व्यवस्था उस समुदाय की एक परम्परा है तथा उद्‌निकासीय बलों का प्रभाव शून्य है तो इस सिद्धान्त के अनुसार जीन आवृत्तिया पीढ़ी दर पीढ़ी स्थिर रहेंगी। लेकिन मिलन व्यवस्था के अनेकों रूप ऐसे हैं जो यादृच्छिक प्रकार से विचलित होते हैं। ये मिलन, जो पूर्णतः यादृच्छिक नही हैं, इन्हें आयादृच्छिक मिलन कहते हैं। अयादृच्छिक मिलन यादृच्छिक मिलन के विपरीत् मिलन व्यवस्था है। चूंकि वर्तमान मानव जनसंख्याओं में यादृच्छिक मिलन व्यवस्था का प्रचलन विरले ही घटित होती है अतः इससे यह संकेत मिलता है कि मिलन व्यवस्था के विचलक (अयादृच्छिक मिलन) आनुवंशिक संतुलन को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं।

अयादृच्छिक मिलन (Non- Random Mating)

चाहे मनुष्य जिस कारण से भी विवाह या लैंगिक सम्बन्ध स्थापित करता हो, इन सम्बन्धों के अनेकों कारण होते हैं जिन्हें उल्लिखित करना कठिन है। हो सकता है किसी पुरूष को किसी युवती के बाल अच्छे लगते हों, किसी को उसकी मुस्कान, किसी को जंघाये, किसी को वक्षस्थल आदि' अनेकोंनेक कारण हो सकते हैं जिसके फलस्वरूप एक युवक किसी युवती से लैंगिक सम्बन्ध या विवाह करने के लिए अथक प्रयास करता है। इसके विपरीत एक युवती भी अपने मनपसंद वर या युवक के साथ सहवास करने की इच्छा रख सकती है। लेकिन युवक एवं युवती के मध्य लैंगिक संबन्धों को समाजिक बैधता विवाह के द्वारा ही प्रदान की जाती है। कभी-कभी ये लैंगिक सम्बन्ध विवाहेतर सम्बन्धों की श्रेणी में आते हैं जब युवक एवं युवती विवाह के पूर्व अथवा पश्चात् भी लैंगिक सम्बन्ध बनाये रखते हैं। कभी-कभी कोई समुदाय

सम्बन्धों को मान्यता देता है, कभी-कभी इन सम्बन्धों के प्रति कठोर बर्ताव किया जाता है। कुछ ऐसे भी मानव समाज है, जो वैवाहिक नियमों को कठोरता से व्यावहारिक बनाते हैं तथा युवक/युवती अपनी स्वेक्षा प्रकट नहीं करते। कुल मिलाकर इन सभी वैवाहिक/लैंगिक सम्बन्धों को पूर्वाग्रह एवं परम्परायें ही नियन्त्रित एवं संचालित करती हैं। ये सभी मिलन-सम्बन्ध, अयादृच्छिक मिलन कहलाते हैं।

आयादृच्छिक मिलन मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं :

(i) चयनित मिलन (Assortative mating)

(ii) अन्तः प्रजनन (Inbreeding)

(i) चयनित मिलन

चयनित मिलन का तात्पर्य उन विवाहों लैंगिक सम्बन्धों से है जिसके लिए वह समुदाय समान या असमान लक्षणों वाले व्यक्तियों के विवाह/सहवास के लिए प्राथमिकता प्रदान करता है। जब चयनित लैंगिक मिलन समान वाह्य शारीरिक लक्षणों में हों, तो ऐसी मिलन व्यवस्था को' भावात्मक चयनित मिलन (Positive Assortative Mating) कहते हैं। उदाहरणस्वरूप अनेकों अध्ययनों से यह पता चला है कि औपचारिक शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों में यह प्रवृत्ति होती है कि वे औपचारिक शिक्षा प्राप्त वर/वधू या युवक/युवती से वरण करना चाहते हैं। शिक्षित युवती, किसी अशिक्षित पति की इच्छा नहीं करती है। इसी प्रकार लम्बी युवतियां, लम्बे युवको से विवाह करना उचित मानती हैं। छोटे कद के पुरूष निश्चित रूप से छोटे कद की स्त्रियों को चाहते हैं जिसे वे उस पर प्रभावी हो सके। विवाह के पूर्व माता-पिता एवं अन्य सगे सम्बन्धी इन समान लक्षणों का विशेष ध्यान रखते हैं।



चित्रः 30 अयादृच्छिक मिलन के कुछ बाधक तत्व

इस प्रकार के अनेको भावात्मक मिलन प्रकारों के हैं। सेवल राइट (Sewall wright 1921) ने इस क्षेत्र में विशेष रूप से योगदान किया है। हार्डी-वीनबर्ग सन्तुलन इन चपनात्मक विवाहों से कितना प्रभावित होता है, इसका आंकलन सरलता से किया जा सकता है। चूंकि भावात्मक चयन विवाह में समान लक्षणों का वरण तेजी से होता है, फलस्वरूप अगली पीढ़ियों में समयुग्मजता की वृद्धि तथा विषमयुग्मजता का अपघटन होगा। यदि विषमयुग्मजता का आगामी पीढ़ियों में ह्रास होगा तो निम्न लिखित हार्डी-वीनवर्ग सन्तुलन में परिवर्तन अपरिहार्य होगा :

$$(A + B)^2 = (1)^2$$
$$A^2 + 2AB + B^2 = 1$$

या $\frac{1}{4}A^2 + \frac{1}{2}AB + \frac{1}{4}B^2 = 1$

यदि हम इसे 100 से गुणा करें :

तो, $25/\%A^2 + 50\%AB + 25\%B^2 = 100\%$

लेकिन भावात्मक चयन विवाहों के पश्चात् सन्तति पीढ़ियों में यह सन्तुलन भिन्न होगा। यदि 10 पीढ़ियों तक विषमयुग्मता मात्र 1.0 प्रतिशत अपघटित होती रहे, तो बहुत भारी परिणाम दृष्टिगत होंगे। बर्डसेल (1976) के अनुसार जनसंख्या में जीन आवृत्तियों का सन्तुलन निम्नलिखित हो जायेगा :

$$49.5\ A^2 + 1.0\ AB + 49.5\ B^2 = 100\%$$

इस प्रकार का लैंगिक/वैवाहिक चयन प्रारूप बहुत छोटी अवधि अन्तराल में किसी भी मानव जनसंख्या के विषमयुग्मजी जीन प्ररूपों का विलोपीकरण कर देगी। लेकिन यदि हम उक्त सम्भावना को और जटिल बनाये तो वैवाहिक चयन प्रारूप इतनी त्वरित गति से परिवर्तन नहीं ला सकेंगे। ज्ञातव्य हो कि वैवाहिक सम्बन्धों में अनेकों जीन-प्ररूप क्रियाशील होते हैं। ऐसी स्थिति में मान लें कि दूसरे जीन प्ररूप की विषमयुग्मजता बढ़कर 8.8 प्रतिशत हो गयी है। तीसरे जीन प्ररूप में विषमयुग्मजता 23.3 प्रतिशत तक ही हो। अतः इन जीन प्ररूपों के संयोग से किसी जनसंख्या में विषमयुग्मजता की अपघटन दर अधिक नहीं होगी। समाज वैवाहिक सम्बन्धों से जितने अधिक जीन प्ररूप क्रियाशील होंगे, सन्तति पीढ़ियों में उतनी ही विषमयुग्मजता कम होगी।

विषमयुग्मजी ह्रास के उक्त मॉडल आकलन में शत प्रतिशत भावात्मक चयन

विवाह माने गये है। लेकिन किसी भी जनसंख्या में ये चयन विवाह शत प्रतिशत नहीं होते। यदि हम इस प्रकार के 50 प्रतिशत विवाह माने तो गणना के अनुसार विषमयुग्मजता 33.3 प्रतिशत हो जायेगी। इस परिस्थिति में भी यह चार जीन-प्ररूपों की संयुक्त विषमयुग्मजता (43-1) के लगभग समान ही है। लेकिन क्या 50 प्रतिशत विवाह यथार्थ रूप से भावात्मक चयन द्वारा सम्पन्न हो पाते हैं? वस्तुतः कुल विवाहों/लैंगिक सम्बन्धों की अल्प संख्या ही इस विधि से पूर्ण हो पाती है। ऐसी स्थिति में विषमयुग्मजता पुनः वृद्धि करती है। फिर भी स्थिति में यह नहीं कहा जा सकता कि इस प्रणाली से एक जनसंख्या समयुग्मजा वृद्धि नहीं करती अथवा जनसंख्या सन्तुलन परिवर्तित नहीं होता।

यहां वर्तमान मानव समूह के एक यथार्थ क्षेत्रीय अध्ययन का दृष्टान्त प्रस्तुत करना युक्तियुक्त प्रतीत होता है। जेम्स स्प्यूहलर (James spuhler, 1962) ने मिशीगन के ऐन अरबर (Ann Arbor) की जनसंख्या का अध्ययन किया इस अध्ययन में 1000 व्यक्तियों को चयन किया। इनमें 3/4 विवाहित युगल थे। इन्होंने इन समान लक्षणों वाले युगलों के शरीर के 43 भिन्न-भिन्न पहलुओं का चयन किया इनमें शरीर की विभिन्न मापें भी समाविष्ट हैं। कुल प्रेक्षणों में 14 लक्षण अर्थात् 42.6 प्रतिशत लक्षण भावात्मक चयन विवाह के लिए साक्ष्य प्रस्तुत नहीं करते। शेष 57.4 प्रतिशत विवाहों में कुछ भावात्मक साक्ष्य पाये गये। इन 29 लक्षणों में 5 लक्षण सांख्यकीय रूप से महत्वहीन है लेकिन 24 लक्षग अर्थात् 55.8 प्रतिशत लक्षण स्पष्टतः भावात्मक चयन विवाह के पक्ष में साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं। स्प्यूहलर ने यह भी अवलोकित किया कि ये सभी लक्षण एक दूसरे से अत्यधिक सहसम्बद्ध हैं। इनकी पृथक जैविक वंशागति नहीं होती जैसे-शारीरिक लम्बाई, भार, चौड़ाई, परिधि आदि। संक्षेप में, 'ऐन-अरबर' के लोगों में समान शारीरिक गठन वाले युवक/युवतियों में विवाह की प्रवृत्ति पायी जाती है, जिसके फलस्वरूप जनसंख्या सन्तुलन में विभेद उत्पन्न होते हैं।

यदि चयनात्मक मिलन प्रारूप के प्राप्त आंकड़ो के सन्दर्भ में अतीत कालीन मानव समाजों (प्रातिनूतन काल) का विश्लेषण करें तो इन तथ्यों में संशोधन करना पड़ेगा। प्रातिनूतन कालीन मानव का अधिकांश समय खाद्य सामग्री एकत्रित करने, आखेट करने वन्य प्राणियों से आत्म रक्षा करने में ही व्यतीत हो जाता होगा। दूसरे स्त्रियों की संख्या कम होने के कारण चयनात्मक विवाह की पद्धति व्यावहारिक नहीं

होगी। इन प्राचीन समाजों में स्त्रियों का आदान-प्रदान (विनिमय) की प्रथा प्रचलित होने से चयनात्मक मिलन प्रारूप जनसंख्या के आनुवंशिक सन्तुलन के परिवर्तन महत्वपूर्ण प्रमाणित नहीं होते।

वर्तमान मानव प्रजातियों के निर्माण में इन विवाहों की विशिष्ट भूमिका रही हैं अधिकांशतया आदिम समुदायों में प्राथमिकताओं के आधार पर विवाहों की परम्परा पायी जाती है। यह प्राथमिकतायें प्रायः समान लक्षणों वाले जीवनसाथी के चुनावों में देखी गयी है।

(b) नकारात्मक चयन मिलन या विवाह (Negative Assortive Mating)

नकारात्मक चयन विवाह या लैंगिक सम्बन्ध वे जैविक सम्बन्ध है जिसके द्वारा किसी एक जनसंख्या में युवक अथवा युवतियों में विषम लक्षणों के प्रति आकर्षण देखा जाता है। इसमें क़िन्हीं दो भिन्न वाह्य शारीरिक लक्षण वाले युगलों में विवाह या लैंगिक सम्बन्ध की प्रवृत्ति होती है। इस प्रवृत्ति का प्रत्यक्ष प्रभाव हार्डी बीनबर्ग के जनसंख्या सन्तुलन सिद्धान्त पर पड़ता है। इस सामाजिक प्रक्रिया के प्रभावों का गणितीय आकलन भी सिवल राइट (Sewal Wright 1921) ने किया है। इनके गणितीय मॉडल से यह भविष्यवाणी की गयी थी कि नकारात्मक चयन मिलन प्रारूप से समयुग्मजता घटती है तथा विषमयुग्मजता की पुनः वृद्धि होती है। राइट के अनुसार एक जनंसख्या में दस सन्तति पीढ़ियों में विषमयुगमजता 50 प्रतिशत से बढ़कर 66.7 प्रतिशत हो जायेगी। दस सन्तति पीढ़ियों के पश्चात् 16.7 प्रतिशत अतिरिक्त बढ़ी हुई। विषमयुग्मजता किन्हीं कारणों से और अधिक वृद्धि नहीं कर पाती। जब इस संदर्भ में चार जीन प्ररूपो की गणना एक साथ की गयी तो विषमयुगमजता 50 प्रतिशत से बढ़कर केवल 53.3 प्रतिशत तक ही रह सकी। इस प्रकार यह सूचनार्थ कहा जा सकता है कि इस प्रकार के चयनात्मक विवाह से जनसंख्या सन्तुलन अपेक्षाकृत कम प्रभावित होता है। इसलिए यह कहा जा सकता हैं कि यदि सभी व्यक्ति अथवा अपने विपरीति शारीरिक लक्षणों की युवती अथवा युवक क़े साथ विवाह या लैंगिक सम्बन्ध स्थापित न करे तो उन सम्बन्धों के फलस्वरूप बढ़ी विषमयुग्मजता की जनसंख्या स्तर पर महत्वपूर्ण नहीं है।

कर्ट स्टर्न (1973) ने इस संदर्भ में एक उदाहरण का उल्लेख किया है। इनके अनुसार यूरोपीय लोगों में लाल रंग के सिर के बाल के प्रति विपरीत लिंग में आकर्षण पाया गया है। भूरे एवं गहरे बाल के स्त्री अथवा पुरुष लाल रंग के पुरुष अथवा स्त्री से विवाह या लैंगिक सम्बन्ध स्थापित करने की प्रवृत्ति होती है। इसी प्रकार आस्ट्रेलिया महाद्वीप के दक्षिणी तट पर बसी हुई बीरांगु जनजाति में जनक एवं जननी अपने गहरे रंग वाले पुत्र का विवाह, किसी हल्के अथवा पूर्णतः रंजक विहीन- ब्लांड पुत्री से करते है। इसके फलस्वरूप नकारात्मक चयन विवाहों में वृद्धि होती है।

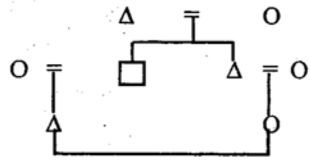
भारत में उत्तर प्रदेश की भोक्सा जनजाति का अध्ययन वर्तमान लेखक ने किया। इस जनजाति में यह अवलोकित किया गया कि गहरे तथा श्यामल त्वचीय रंग के पुरुष में गौर वर्ण एवं सुन्दर गठन की लड़की के साथ विवाह एवं लैंगिक सम्बन्ध स्थापित करने की प्रवृत्ति होती है। इसके फलस्वरूप संततियों में विषमयुग्मजता की वृद्धि देखी गयी है। प्रायः बिहार की निम्न जातियों की स्त्रियों में उच्च जाति के पुरुषों के प्रति आकर्षण की प्रवृत्ति पायी जाती है। इसके फलस्वरूप प्रायः ग्रामीण उच्च जातीय पुरुष के साथ निम्न जातीय स्त्री लैंगिक सम्बन्ध स्थापित करती है। प्रेक्षणों से यह ज्ञात होता है कि इनकी सन्तति जनसंख्या में विषमयुग्जता की वृद्धि हुई है। भारतीय महा नगरियों में भी छोटे कद की लड़कियों में बड़े कद के युवक के साथ विवाह करने की प्रवृत्ति देखी गयी है लेकिन इसके दृष्टान्त अति अल्प हैं।

(ii) अन्तःप्रजनन (Inbreeding)

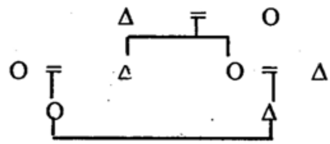
जब किसी जनसमूह के व्यक्तियों में अपने सम्बन्धियों से ही विवाह या लैंगिक सम्बन्ध स्थापित करने की प्रवृत्ति हो, तो इस मिलन प्रारूप को अन्तः प्रजनन कहते हैं। अन्तःप्रजनन को अन्य शब्दों में आनुवंशिक समरक्तता के रूप में जाना जा सकता है। समरक्तता या अन्तः प्रजनन सामान्यतया सभी जनसमूहों या प्रजातियों में इसकी आवृत्ति सर्वाधिक होती है। अनेकों जनसमुदायों में ऐसे निमय है जो कि विवाह के लिए इच्छुक दो व्यक्तियों के मध्य अनुमत सम्बन्धों का नियन्त्रण करते हैं। अनेकों जनसमूहों में चाचा, चाची, भतीजे तथा चचेरे भाई बहनों आदि सम्बन्धों में वैवाहिक अनुमति प्रदान नहीं की जाती। लेकिन अनेकों जनसमुदायों में जैसे- भारतीय मुसलमान, दक्षिण भारत की जातियां, भारतीय जनजातियां आदि में चचेरे/ममेरे-फुफेरे/मौसेरे भाई बहनों में विवाह की प्रवृत्ति पायी जाती है। इन

- विवाह-प्रतिरूपों को निम्न चित्रों के द्वारा दर्शाया जा रहा है:

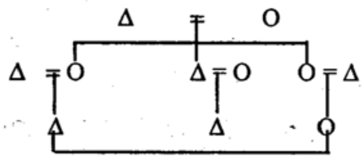
I. चेचेर भाई-बहिनः



II. ममेरे-फुफेरे भाई बहनः

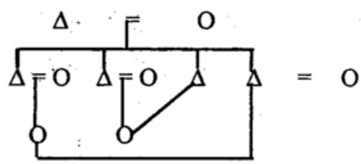


III. मौसेरे भाई बहनः

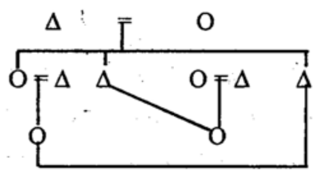


उक्त अन्तःप्रजनन या प्रजनन या समरक्त विवाहों के अतिरिक्त कुछ समुदायों में चाचा-भतीजी, मामा-भांजी तथा बुआ-भतीजा में वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने की प्रवृत्ति होती है। इन्हें निम्नांकित चित्रों से दर्शाया जा रहा है:

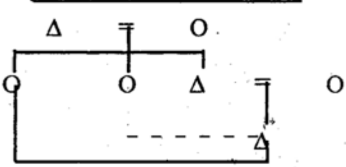
I. चाचा-भतीजी विवाहः



II. मामा-भांजी विवाहः



III. बुआ-भतीजा विवाहः



उल्लिखित विवाह कई सरल समाजों में वर्जित है लेकिन ऐसे प्रायः उदाहरण चर्चा में आते हैं। जब इन समाजों में निकट रक्त सम्बन्धी जैसे-मामा, चाचा, चचेरा/ममेरा/फुफेरा/मौसेरा भाई अपने तत्सम्बन्धी क्रमशः भांजी, भतीजी एवं चचेरी/मेमेरी/फुफेरी/मौसेरी बहन से वर्जित लैंगिक सम्बन्ध स्थापित करते हैं। इन अवैध लैंगिक सम्बन्धों के फलस्वरूप कई घटनाओं में सन्तति जनन भी देखा गया है। चित्रों में इन अवैध लैंगिक सम्बन्धों को बिंदु श्रृंखला से दर्शाया गया है।

अन्तःप्रजनन की उच्च सीमा समरक्तता या सगोत्रता (Consanguinity) कही जाती है। अन्तः प्रजनन हार्डी-वीनवर्ग जनसंख्या सन्तुलन को कितना प्रभावित करता है, इसका अनुमान स्वतः निषेचित पौधों पर हुए अध्ययनों से किया जा सकता है। इस प्रजनन के फलस्वरूप समयुग्मजता की त्वरित वृद्धि तथा विषमयुग्मजता का ह्रास होता है। स्वतः निषेचित पौधों पर हुए अध्ययन को निम्न तालिका में दर्शाया जा रहा है जिससे यह ज्ञात होता है कि पांचवी क्रमिक सन्तति पीढ़ी में विषम युग्मजता 100 प्रतिंशत से शून्य, एवं समयुग्मजता बढ़कर 100 प्रतिशत हो जाती है :

पीढ़ी क्रम	प्रभावी समयुग्मजता	विषमयुग्मजता	अप्रभावी	कुल
F1	0.0	1.0	0.0	0.0
F2	0.25	0.50	.25	.50
F3	0.375	0.25	0.375	0.75
F4	0.4375	0.125	0.4375	0.875
F5	0.5	0.0	0.5	1.0

सेवल राइट (Sewall Weight) ने अन्तः प्रजनन का कई विधियों से अध्ययन किया। इन्होंने समयुग्मजता की पहचान 4 स्तरों पर की। ये चारों स्तर स्वतः निषेचन भाई-बहन विवाह, प्रथम चेचेर/फुफेरे-ममेरे/मौसेरे भाई, बहन विवाह तथा द्वितीय चचेरे-ममेरे-मौसेरे भाई बहन विवाह हैं। इनके अध्ययन के परिणाम निम्न तालिका में दर्शाये जा रहे हैं।

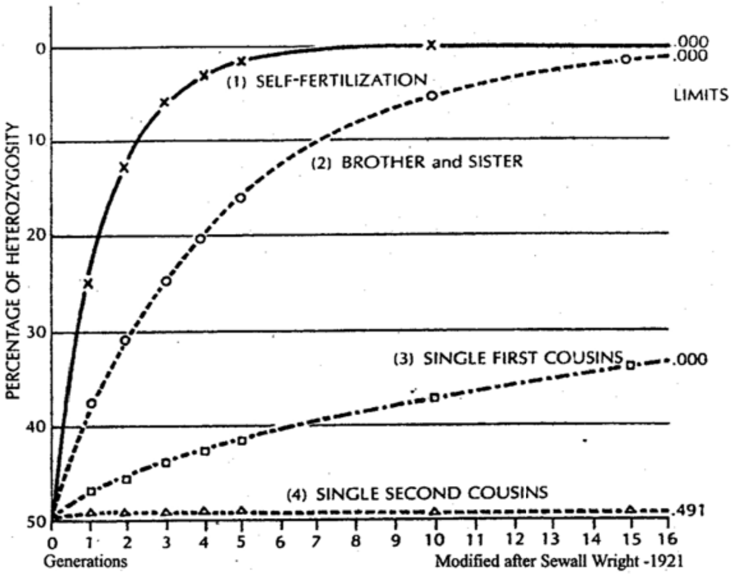
विभिन्न अन्तःप्रजननों के प्रभाव एवं विषमयुग्मजता का ह्रास

पीढ़ी क्रम	स्वतः निषेचन	भाई-बहन प्रजनन	एकल प्रथम चचेरे/ ममेरे मौसेरे भाईबहन	एकल द्वितीय चचेरे/ ममेरे मौसेरे भाई बहन
F0	0.500	0.500	0.500	0.500
F1	0.250	0.375	0.469	0.491
F2	0.125	0.312	0.453	0.491
F3	0.62	0.250	0.439	.491
F4	0.31	0.203	0.427	0.491
F5	0.016	0.164	0.416	0.491
F10	0.000	0.57	0.374	0.491
D15	0.000	0.020	0.344	0.491

यद्यपि उक्त स्वतः निषेचन मात्र पौधों में एवं वनस्पतियों में ही सम्भव है; भाई-बहन विवाह मानवों में पूर्णतः वर्जित है जिसे निकटाभिगमन या अगम्यागमन (Incest) कहते हैं। शेष दोनों प्रजनन की आवृत्तियाँ भी प्रत्येक जनसंख्याओं में परिवर्तित होती रहती है। लेकिन उक्त विषमयुग्मजता के क्रमिक ह्रास के परिणामों से यह अवश्य ज्ञात होता है कि निकटवर्ती अन्तःप्रजनन (Consanguinity) से समयुग्मजता की क्रमिक वृद्धि एवं विषमयुगमजता का क्रमिक ह्रास होता है।

अन्तःप्रजनन गुणांक
(Coefficient of Inbreeding)

राइट के द्वारा प्रतिपादित अन्तःप्रजनन का गणितीय मॉडल यद्यपि वर्तमान मानव समूहों में पूर्णतः व्यावहारिक नहीं होता जिससे विषमयुग्मजता का क्रमिक ह्रास देखा जा सके। लेकिन इस गणितीय मॉडल का उपयोग वर्तमान जनसमूहों के परिप्रेक्ष्य में अवश्य किया जा सकता है। दूसरे यह मॉडल इस प्रकार से विनिमित किया गया है जैसे दूसरे उद्विकासीय बलों के प्रभाव इसकी कार्य परिधि से बाहर हो। लेकिन उद्विकासीय बलों की अन्तक्रियाओं को इस गणितीय मॉडल के कार्यक्षेत्र के बाहर रखना एक गणितीय कल्पना हो सकती है, यथार्थ रूप नहीं।



चित्रः 31 अन्तःप्रजनन जिनके माध्यम से विषम युग्मजता घटती है।

ऐसी स्थिति में राइट के अन्तःप्रजनन मॉडल का मानव जनसंख्याओं से प्राप्त आंकड़ों द्वारा परीक्षण किया जा सकता है। इस मॉडल की सहायता से वर्तमान जनसमूहों की सगोत्रता का अध्ययन किया जा सकता है। राइट के गणितीय मॉडल से अन्तःप्रजनन के गुणांक (Coefficent of Inbreeding or Consanguinity) ज्ञात किया जा सकता है।

अन्तःप्रजनन के गुणांक से अन्तःप्रजनन एवं जनसमूह के सम्बन्धों का अनुमान लगाया जाता है। अन्तःप्रजनन को निम्न विधि से ज्ञात किया जा सकता है :

मान लें कि एक ऐसा समुदाय है जिसमें सभी व्यक्तियों की संख्या N है। इसमें दो ऐसे विषमयुग्मजी व्यक्ति है जिनमें एक जीन के दो विकल्पी हैं। ऐसी स्थिति में किसी भी युग्मनज में वंशागति के मूलभूत नियमों से दो समरूप विकल्पियों के एक ही स्थान पर आने की सम्भावना 1/2 N होगी। यह 1/2 N की सम्भावना, जो यादृच्छिक रुप से मिलने वाले युग्मकों के संयुक्त होने से बनती है, जिसके सदस्यों की सम्पूर्ण संख्या N है, एक पीढ़ी के अन्तःप्रजनन का गुणांक कहलाता है। अन्तः प्रजनन का यह गुणांक प्रत्येक अग्रिम पीढ़ी के साथ बढ़ता जाता है।

अगली पीढ़ी में भी यह गुणांक ज्ञात किया जा सकता है। चूंकि अगली पीढ़ी में भी नये जनकों द्वारा भिन्न-भिन्न प्रकार के युग्म उत्पन्न होंगे तथा अन्तःप्रजनन की सम्भावना पुनः 1/2 N होगी। इस पीढ़ी में विषम युग्मजी व्यक्तियों द्वारा उत्पन्न किये गये समरूप युग्मों के अतिरिक्त भी कुछ समरूप युग्म समयुग्मजियों के द्वारा उत्पन्न होंगे। इस पीढ़ी में यह बढ़ा हुआ अतिरिक्त अनुपात नये समयुग्मजियों की सम्भावना की अतिरिक्त वृद्धि करेगा जिससे उस पीढ़ी के समयुग्मजा की सम्भावना (1/2 N) में अतिरिक्त समयुग्मजियों द्वारा प्राप्त समरूप युग्म की सम्भावना (1– 1/2N) जुड़ जायेगी। अतः दूसरी पीढ़ी का अन्तःप्रजनन गुणांक निम्न होगाः

$F2=(1/2\ N)+(1-1/2\ N)F1$

अतः प्रत्येक अग्रिम पीढ़ी के गुणांक की गणना इस प्रकार की जा सकती है:

$F0=0$
$F1=1/2N$
$F2=1/2N+(1-1/2N)F1$
$F3=1/2N+(1-1/2N)F2$

अर्थात् वह जनसमूह जिसमें पीढ़ियों का मान N है उसमें अन्तः प्रजनन का गुणांक निम्नलिखित होगाः

$FN=1/2N+(1-1/2N)FN-1$

मानव समूहों में अन्तःप्रजनन की आवृत्ति

(Frequency of Inbreeding in Human Groups)

सभी मानव समूहों में अन्तःप्रजनन पूर्णतः नहीं होता लेकिन आंशिक रुप से लगभग सभी समुदायों में समाज स्वीकृत अथवा अस्वीकृत प्रजनन अवश्य होते हैं। मानव के प्राचीन इतिहास में अन्तःप्रजनन अत्यधिक परिमाण में हुआ है, लेकिन प्रत्यक्ष अन्तःप्रजनन की दर मानव सभ्यता के साथ-साथ घटी है। सीमित एवं ग्रामीण जनसमूहों में औद्योगिक एवं महानगरीय जनसमूहों की अपेक्षा अन्तःप्रजनन की सम्भावना अधिक होती है। फिर भी संसार के नगरीय केन्द्रों में अन्तःप्रजनन की प्रवृत्ति होती है। अन्तःप्रजनन की आवृत्ति का अनुमान विवाहों की संख्या से किया जाता है।

कुछ देशों के जनसमूहों में अन्तःप्रजनन की आवृत्ति को निम्न अंकित तालिका में दर्शाया जा रहा है :

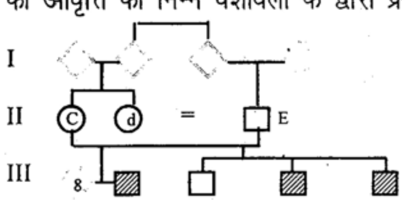
जनसमूह	अवधि	विवाहों की सम्पूर्ण संख्या	प्रथम सहोदर सन्तति विवाह
संयुक्त राज्य अमेरिका :			
बाल्टीमोर	1935–50	8,000	0.0005
वाटकाकाउन्टी	1830–1949	299	0.0408
उटाह	1870–1929	26,325	0.0007
उटाह आस्ट्रिया :	1930–50	15,306	0.0004
वियाना कैथोलिक	1929–1930	31,823	0.0053
फ्रांस :			
संम्पूर्ण देश	1876–1880	1,410,889	0.0103
संम्पूर्ण देश	1914–1919	1,350,683	0.0095
लवायर एतुसर	1944–1953	19,867	0.003
जर्मनी :			
बायेरियन पारिस	1898–1922	5,193	0.0067
बावेरिया	1926–1933	474,268	0.0020
स्वीडन :			
मजोला पारिश	1890–1949	843	0.0095
मोनियोनालुस्टा पारिश	1890–1949	191	0.0680
डेनमार्क :			
सम्पूर्ण देश	1900–1920	498	0.012
स्विटजरलैण्ड :			
एल्पाइन	1880–1933	77	0.039
एल्पाइन	1885–1932	139	0.007
ओबरमैट	1890–1932	52	0.115
इंग्लैण्ड :			
रोगी (चिकित्सालय)	1880–1925	'49,315	0.0061
आयरलैण्ड :			
काउन्टी टाइरान	1954	3,000	0.0020
काउन्टी टाइरान	1954	717	0.0139
भारत :			
पारसी (बम्बई)	1950	512	0.129
मराठा (बम्बई)	1950	137	0.117
जापान :			
हिरोशिमा	1949–1950	16681	0.0503
नागासाकी	1948–1949	10547	0.0371
स्यूजेन	–1948	776	0.124
फिजीद्वीप समूह :	1850–1895	448	0.297

संसार के अनेक देशों में कई कारणों से अन्तःप्रजनन की दर में गिरावट आती जा रही है। आधुनिक सभ्यता की अनेक विशेषताओं के कारण अन्तःप्रजनन के अनेकों जनसमूहों की सीमायें भंग हो रही है। इसके अनेकों कारण है जैसे- विश्वयुद्ध, यूरोपीय युद्ध, चीन, पाकिस्तान आदि अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध, गृह युद्ध, राजनैतिक सीमाओं के बाहर वृहतरूप से लोगों के प्रवसन, कुशल परिवहन एवं संचार व्यवस्था, शिक्षा, व्यवसायिक परिवर्तन, औद्योगिक विकास आदि। जैसे-जैसे प्रजननशील पृथक समूह की बाहरी सीमायें भंग होती जा रही हैं, वैसे-वैसे होमोसैपियंस सैपियन्स की जीनपूल में परिवर्तन आते जा रहे है। अन्तःप्रजनन की आवृत्ति कम होने से इन मेंण्डलीय जनसंख्याओं में विषमयुगमता की वृद्धि हुई है।

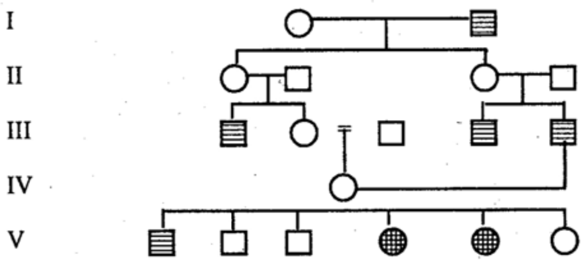
समयुग्मजता; बृद्धि एवं खतरे
(Homozygosity; Increase and Hozards)

अन्तःप्रजनन से समयुग्मजता की उत्तरोत्तर वृद्धि होती है। यह वृद्धि दो प्रकार की होती है; प्रभावी समयुग्मजता (A A) एवं अप्रभावी समयुग्मजता (a a)। इनमें प्रभावी समयुग्मजता आनुवांशिक रूप से उतना घातक नहीं होती जितना की अप्रबल समयुग्मजता। आनुवांशिक व्याधियाँ प्रायः अप्रबल समयुग्मजता से सम्बन्धित होती हैं। गत अध्यायों में कई ऐसे आनुवांशिक व्याधियों का उल्लेख किया गया है। जो या तो अप्रबल अलिंगसूत्री अथवा लिंग-सहलग्न गुणों वाली हैं जैसे वर्णान्धता, हीमोफीलिया, सिक्लीमिया, थैलासीमियाँ आदि।

अनेक वंशावलियों के विश्लेषण से ज्ञात होता है। कि रक्त सम्बन्धी माता-पिता की सन्ततियाँ आनुवंशिक व्याधियों के शिकार होते हैं। पियरसन, नेटलशिप एवं यूशर (1946) ने रंजकहीनता (Albinism) को अनेकों अन्तःप्रजनित परिवार में अवलोकित किया। इन्होंने रंजकहीनता (गत अध्यायों में वर्णन किया जा चुका है) की आवृत्ति को निम्न वंशावली के द्वारा प्रदर्शित किया है:



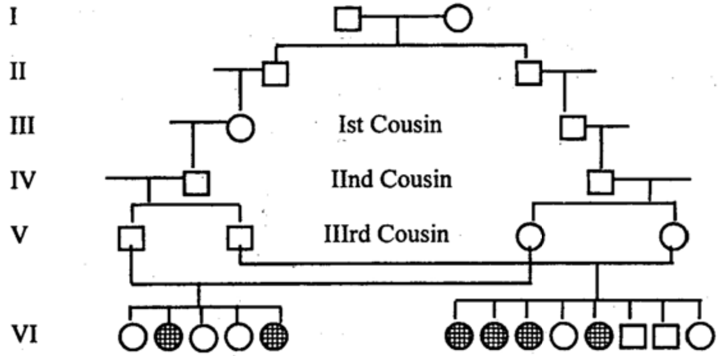
उक्त वंशावली में एक व्यक्ति (E) दो विवाह करता है इसकी दोनों पत्नियाँ चचेरी या मौसेरी बहनें है। एक पत्नी (C) 9 बच्चे जन्मते हैं जिनमें 1 बच्चा रंजकहीन होता है। दूसरी ओर दूसरी पत्नी (d) के तीन बच्चों में दो बच्चे रंजकहीन होते हैं। गेट्स (1946) ने अन्तःप्रजनन से उत्पन्न व्याधियों की ओर ध्यान आकर्षित किया। इन्होंने अप्रबल X - सहलग्न इक्थायोसिस बलगेरिस (Ichthyosis Vulgaris) नामक रोग की वंशावली प्रस्तुत की जो निम्न है:



उक्त वंशावली में त्वचीय रोग या इक्थायोसिस बलगेरिस के वितरण को गहरे रंग से दर्शाया गया है इस रोग का शिकार प्रथम पीढ़ी के जनक (पुरुष) हैं। चूंकि इस पीढ़ी में उसकी पत्नी सामान्य है अतः दूसरी पीढ़ी में अप्रबल विकल्पी जो इस रोग का नियंत्रण करते हैं, विषमयुग्मजता की स्थिति में प्रकट नही हो पाते। लेकिन तृतीय पीढ़ी में समयुग्मजता की स्थिति में चार मौसेरे भाई बहनों में से तीन में यह रोग पुनः प्रकट हो जाता है। उस समय इस रोग की आवृत्ति और बढ़ जाती है जब एक व्यक्ति अपनी मौसेरी बहन की बेटी से विवाह करता है। इस प्रकार के अन्तःप्रजनन या समरक्त विवाह से पाँचवी पीढ़ी की आधी सन्तानें इस भयानक रोग का शिकार हो जाते हैं।

इसी प्रकार स्वीडन जोग्रेन (Sjogren) के अध्ययनों की वंशावली मैकमिलन ने प्रकाशित किया। इन अध्ययनों के परिणाम ऊपर वर्णित वंशावलियों से हटकर तीसरे चचेरे भाई बहनों (3rd Cousins) के विवाहों से उत्पन्न खतरों को उजागर करते हैं। जोग्रेन ने 'जुवेनाइल एमैयूरॉटिक आइडियॉसी' (Juvenile Amauratic Idiocy) रोग की वंशावली प्रस्तुत की। इस रोग का शिकार बालक सर्वप्रथम 4 वर्ष से 7 वर्ष तक अंधा हो जाता है। तत्पश्चात् स्मृति शक्ति, तन्त्रिकातन्त्र, ज्ञानेन्द्रियों, शरीर में पंगुता आने लगती है। अन्त में 12 वर्ष तक की आयु में बालक मृत्यु का

शिकार होता है। इस रोग से प्रभावित बच्चे यौवन अथवा सन्तानोत्पत्ति आयु को कभी भी प्राप्त नही कर पाते। जोग्रेन ने इस रोग के आवृत्ति सम्भावना को निम्न वंशावली के माध्यम से प्रस्तुत किया:



उक्त बंशावली से यह स्पष्ट होता है कि सगे-सम्बन्धियों (रक्तसम्बन्धियों) के मध्य विवाह भले ही सुदूरवर्ती क्यों न हो लेकिन इस प्रकार के विवाह या लैंगिक सम्बन्धों से उत्पन्न सन्ततियों में आनुवंशिक रोगों के आवृत्ति की सम्भावना अपेक्षाकृत अधिक होती है। उक्त वंशावली का यदि विश्लेषण करें तो यह हम पाते है कि तीसरे स्तर के चचेरे/मौसेरे/फुफेरे/ममेरे भाई बहनों के विवाह से उत्पन्न सन्ततियों में किस अनुपात में 'आइडियासी' रोग उत्पन्न होता है।

नील एवं उनके सहयोगियों (Neel-et al) ने चचेरे/ममेरे/फुफेरे/मौसेरे भाई बहनों के मध्य वैवाहिक सम्बन्धों से उत्पन्न सन्ततियों में पायी जाने वाली आनुवांशिक व्याधियों का अध्ययन किया है। इनके अध्ययनों के परिणाम निम्न तालिका में दर्शाये जा रहे हैं:

क्रम	लक्षण (आनुवंशिक विकृति)	श्वेत	जापानी
1.	रंजकहीनता	18–24	37–39
2.	टे-सैक्स रोग	27–33	55–85
3.	इक्थायोसिस (त्वचीय रोग)	30–40	67–93
4.	पूर्ण रक्तवर्णान्धता (जन्म के समय)	11–21	39–51
5.	जीरोडर्मा रंजकता	20–26	37–43

उक्त तालिका में प्रदर्शित परिणामों से ज्ञात होता है। कि अन्तःप्रजनन के परिणाम अपेक्षाकृत जापानी लोगों में अत्यधिक घातक हैं। इस अध्ययन से यह भी संकेत मिलता है कि अन्य रोगों की अपेक्षा त्वचीय रोगों के आवृत्ति की सम्भावना अधिक होती है। डहेलवर्ग (Dahlberg–1929) ने जन समूह के आकार का सह-सम्बन्ध अन्तःप्रजनन से स्थापित किया। इन्होंने यह मत व्यक्त किया कि अन्तःप्रजनन की आवृत्ति किसी पृथक समूह के आकार के साथ घटती-बढ़ती है। यदि किसी पृथक समूह की जनांकिकी छोटी है, तो अन्तःप्रजनन की आवृत्ति अधिक होती है। इसके विपरीत अन्तःप्रजनन के आवृत्ति में कमी आती है यदि उस जनसमूह की जनांकिकी विशाल हो। अन्तःप्रजनन की आवृत्ति के बढ़ने से आनुवांशिक व्याधियों की आवृत्ति में भी वृद्धि होती है।

अन्तःप्रजनन का सम्बन्ध शिशु एवं बाल- मृत्युदर से पाया गया है। कई अध्ययनों से यह ज्ञात हुआ कि गर्भपात एवं मृत भ्रूण-जन्म की वृद्धि प्रथम स्तर के चचेरे... भाई बहन विवाहों के फलस्वरूप अधिक होती है। संयुक्त राज्य अमेरिका एवं फ्रांस में किये गये सर्वेक्षण से यह संकेत मिलता है शिशु, बाल, एवं वयस्क मृत्युदर अन्तः प्रजनित समूहों में अन्तर प्रजनित समूहों (Outbreeding group: marriage between unrelated person) की अपेक्षा अधिक होती है। इसी प्रकार व्याधियों, शारीरिक एवं मानसिक विकलांगता की आवृत्ति दर अपेक्षाकृत अन्तः प्रजनित जनसमूहों में अधिक होती है (सैटर एवं विवाह 1954, स्कल 1958, बुक 1956, रीस एवं होयेन 1958 बर्डसेल, 1976)।

इस प्रकार अयादृच्छिक मिलन-प्रारूप (Non Random-Mating) के प्रभावों की परिचर्चा से यह स्पष्ट होता है कि हार्डी-वीन वर्ग जनसंख्या संतुलन, अन्तःप्रजनन के फलस्वरूप परिवर्तित एवं संशोधित होता है। जीनी विषमयुग्मजता जिस अनुपात में अपघटित होती है, उसी अनुपात में समयुग्मजता की वृद्धि होती है। समयुग्मजता की वृद्धि दो रूपों में होती है; प्रबल एवं अप्रबल। अप्रबल समयुग्मजता की वृद्धि से आनुवंशिक विकृतियों की सम्भावना बढ़ जाती है। लेकिन प्राकृतिकवरण के क्रियाशील होने के फलस्वरूप घातक एवं अर्धघातक अप्रभावी समयुग्मज जीन लुप्त होते रहते हैं, जिससे जीन प्ररूपों एवं जीन की आवृत्तियों में परिवर्तन होता है। यदि इस स्थिति

में वरण क्रियाशील न हो तो जनसमूह के अस्तित्व के लिए एक संकट उत्पन्न हो सकता है। वैसे सदियों से अन्तःप्रजनन करते जनसमुदायों के अस्तित्व को विशेष खतरा नहीं होता (प्राकृतिक वरण की क्रिया के कारण) लेकिन यदि कोई जनसमूह अन्तःप्रजनन को तत्काल आत्मसात कर ले, तो समयुग्मजता के त्वरित वृद्धि से उसके अस्तित्व का खतरा उत्पन्न हो सकता है। यदि ऐसे जनसमूह का आकार (जनांकिकी) छोटा हो, तो खतरे की स्थिति और भी अधिक घातक हो जायेगी।

❑❑❑

8

उद्विकासीय आनुवंशिकी
(Evolutionary Genetics)

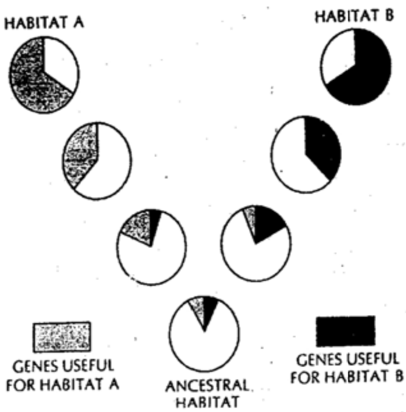
हार्डी बीनबर्ग का आनुवांशिक संतुलन जब जब टूटता है तब तब किसी जनसंख्या को परिवर्तन के मार्ग से गुजरना पड़ता है। वैसे भी इस सन्तुलन के स्थायी अस्तित्व की कल्पना एक प्राकृतिक जनसंख्या में करना एक अनुमानित तथा आर्दश मॉडल ही हो सकता है, कोई यथार्थ मॉडल नहीं हो सकता। इसीलिए हार्डी वीनवर्ग ने बड़ी चतुराई से आनुवंशिक सन्तुलन बनाये रखने के लिए कुछ विशेष परिस्थितियों को अपने सिद्धान्त का अनिवार्य भाग माना। इस आनुवंशिक सन्तुलन की विशेष परिस्थितियों में से एक- अर्थात् "यादृच्छिक मिलन" की परिचर्चा पूर्व पृष्ठों पर की जा चुकी है। जिससे यह स्पष्ट हो गया कि आनुवांशिक सन्तुलन में परिवर्तन की इकाई जीन-प्ररूप एवं विकल्पी आवृत्तियां हैं। किसी जनसंख्या की ये आवृत्तियां यदि परिवर्तित हुई तो जनसंख्या सन्तुलन में शीघ्र ही प्रतिस्थापन एवं संशोधन होता है जिसके फलस्वरुप विभेद उत्पन्न होते हैं जो एकत्र होकर कालान्तर में अन्ततः नवीन जनसंख्या या प्रजाति का निर्माण करते हैं। जनसंख्या सन्तुलन अथवा जीन-आवृत्तियों में परिवर्तन लाने वाले प्रमुख कारक निम्न हैं :

(i) उत्परिवर्तन (Mutation)

(ii) प्रवसन एवं संकरण (Migration and Hybridization)
(iii) प्राकृतिक वरण (Natural Selection)
(iv) जीन अपसरण (Genetic drift)
(v) पृथक्करण (Isolation)

(i) उत्परिवर्तन
(Mutation)

उत्परिवर्तन मौलिक आनुवंशिक पदार्थ में एक ऐसा परिवर्तन है जिससे डी०एन०ए० अणु में न्यूक्लियोटाइडों का सहसा प्रवेश अथवा निष्कासन होता है। न्यूक्लियोटाइडों के क्रम में सहसा इस परिवर्तन से नवीन वंगशानुक्रम लक्षण प्ररूप उत्पन्न होते हैं। इसे जीन उत्परिवर्तन (Gene or Point Mutation) कहते हैं। जब कोई सामान्य जीन (विकल्पी) उत्परिवर्ती विकल्पी में बदलता है तो उसे 'अग्रउत्परिवर्तन' कहते हैं। इसके विपरीत यदि उत्परिवर्ती विकल्पी सामान्य विकल्पी में बदलता है तो उसे 'प्रतिलोम उत्परिवर्तन' कहते हैं। इसीप्रकार यदि उत्परिवर्ती विकल्पी सामान्य विकल्पी पर प्रभावी होता है तो इसे 'प्रभावी उत्परिवर्ती' कहते हैं। जबकि, दूसरी ओर, यदि उत्परिवर्ती विकल्पी सामान्य विकल्पी पर अप्रभावी हो, तो 'अप्रबल उत्परिवर्तन' कहते हैं।



चित्र: 31 आनुवंशिक विभेदन; जनसंख्या की जीनी समुच्चय (Gene Pool) परिस्थिति एवं समय के अन्तराल में पृथक हो जाती है।

विभिन्न जीवों पर किये गये प्रयोगशाला अध्ययन से यह ज्ञात हुआ है कि स्वतः उत्परिवर्तन के अतिरिक्त भौतिक एवं रासायनिक, कारकों के फलस्वरुप भी उत्पन्न होते हैं। इन्हें 'प्रेरित-उत्परिवर्तन' कहा जाता है। प्रेरित उत्परिवर्तन के भौतिक कारक निम्नवत हैं :

(i) अल्फा किरण (ii) बीटा किरण (iii) न्यूट्रान (तीव्र) (iv) न्यूट्रान (तापीय)	कणीय विकिरण
(v) एक्स किरणें (vi) गामा किरणें (vii) पराबैंगनी किरणें	अकणीय विकिरण

इसके अतिरिक्त रासायनिक उत्परिवर्तकों की क्रिया के परिणामस्वरुप भी उत्परिवर्तन (प्रेरित) सम्भव हैं। रासायनिक उत्परिवर्तक निम्नलिखित हैं :

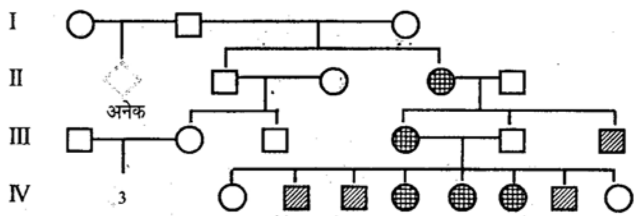
(i) मस्टर्ड गैस (ii) इथाइल मिथेन सल्फोनेट (iii) मिथाइल मिथेन सल्फोनेट	एल्काइलेटिंग कारक
(iv) 5–ब्रोमोयूरेसिल (v) 2–एमिनोप्यूरीन	क्षारक
(iv) एक्रिफ्लेविन (vii) प्रोफ्लेविन (viii) इथीडियम ब्रोमाइड	एक्रिडीन
(ix) नाइट्रस अम्ल	विएमिनीकरण कारक
(x) हाइड्राक्सिल अम्ल सोडियम एजाइड	अन्य उत्परिवर्तक

ज्ञात उत्परिवर्तकों में विकिरण (Radiation) एक योग्य उत्परिवर्तक है जिसका मानव पर सरलता से प्रभाव पड़ता है। यदि किसी ज्ञात लक्षण में सहसा परिवर्तन

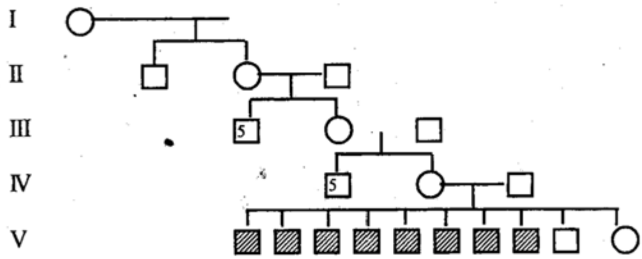
होता है। तो समान्यतया वह उत्परिवर्तन की कोटि में सम्मिलित किया जाता है। मानव में, अप्रभावी उत्परिवर्तनों का पता लगाना अत्यन्त कठिन है यद्यपि प्रभावी उत्परिवर्तनों को ज्ञात किया जा सकता है। प्रोटीन एवं एन्जाइमों के उत्परिवर्तन 'इलेक्ट्रोफोरेसिस तकनीक' से ज्ञात किये जा सकता है। इस तकनीक से एन्जाइमों को एक विद्युत परिक्षेत्र में संचलित किया जाता है। यदि एन्जाइमों के अमीनों अम्लों के क्रम में कोई परिवर्तन की क्रिया के परिणामस्वरुप हुआ। इस विधि से किसी भी विशेष प्रोटीन के लिए सूक्ष्म विभिन्नताओं को भी ज्ञात किया जा सकता है यद्यपि मानव की आकृति या व्यवहार में इसका विशेष प्रभाव नहीं पड़ता।

चूंकि युग्मनज उत्परिवर्तन दो प्रकार के होते है- अलिंगसूत्री एवं लिंगसूत्री। इनमें लिंगसूत्री उत्परिवर्तन दो लिंगगुणसूत्र X एवं Y से सम्बद्ध होते हैं। अतः इन्हें लिंगसहलग्न उत्परिवर्तन भी कहते हैं। ये उत्परिवर्तन भी प्रबल एवं अप्रबल जीन से सम्बन्धित होते हैं। अलिंगसूत्री उत्परिवर्तनों में प्रबल एवं अप्रबल जीन उत्परिवर्तन होते हैं। उदाहरण के लिए रेटिनाब्लास्टोमा (Ratinablastoma) एक प्रबल अलिंगसूत्री उत्परिवर्तन है जबकि फिनाइलकीटोनूरिया (Phenylketonuria) अप्रबल अलिंगसूत्री उत्परिवर्तन है। इसीप्रकार क्रमशः हीमोफीलिया (Haemophelia) X–सहलग्नक उत्परिवर्तन है जबकि पादजाल (Webbed Toe) Y–सहलग्न लिंगसूत्री उत्परिवर्तन का उदाहरण है।

उदाहरण 1 : डैनफोर्थ (Danforth 1914) में प्रभावी उत्परिवर्तन की वंशावली अमेरिकी शोध पत्रिका (Am. Journal of Ophthalmol. 31) में प्रकाशित करवाया। इसमें अप्रभावित जनकों के दो सन्ततियों में से एक (पुत्री) की आँख में सहसा मोतियाबिंद (Cataract) रोग प्रकट हुआ। अब इस पुत्री का विवाह एक सामान्य पुरूष से हुआ। उससे दो पुत्र एवं पुत्री उत्पन्न हुए जिनकी आँखों में भी मोतियाबिंदु था। अगली पीढ़ी में यह रोग पुनः कई सन्ततियों में पाया गयाः



उदाहरण 2 : बागूस (Boggs, 1934) ने अमेरिका पत्रिका- Am. J. Med. Science, (1881) में हीमोफीलिया रोग की एक वंशावली प्रकाशित की। जिससे यह पाया गया कि सामान्य व्यक्तियों के वंश में यह रोग सहसा पाँचवीं पीढ़ी में सामान्य माता-पिता के 8 सन्ततियों में से 6 में दृष्टिगोचर हुआ। यह वंशावली निम्न है :



उत्परिवर्तन आवृत्ति का निर्धारण
(Determination of Mutational Frequency)

उत्परिवर्तन की आवृत्ति का निर्धारण दो विधियों से किया जाता है प्रत्यक्ष विधि एवं अप्रत्यक्ष विधि।

(i) प्रत्यक्ष विधि

यह विधि प्रभावी उत्परिवर्तन के निर्धारण हेतु उपयुक्त है। यह मुख्यतः प्रमुख प्रभावी विशेषकों के सर्वेक्षण पर आधारित होती है जो सन्ततियों में तो दृष्टिगत होते हैं जबकि जनकों में पूर्णतया अनुपस्थित होते हैं। यह विधि चार अनुमानों पर निर्भर करती है कि :

(i) जीन की अभिव्यक्ति (Penetrance) पूर्ण है।

(ii) लक्षण किसी अप्रभावी विकल्पियों से उत्पन्न नहीं है।

(iii) लक्षण किन्हीं अ-आनुवंशिक अभिकारकों के द्वारा कभी भी उत्पन्न नहीं होता है तथा,

(iv) केवल एक ही जीन संस्थिति (Locus) के प्रभावी विकल्पी उस लक्षण को उत्पन्न करते हैं।

इन चारों अनुमानों में प्रथम दो कई वंशावलियों के द्वारा प्रमाणित हुए हैं

लेकिन शेष दो अनुमान विवादास्पद हैं। यदि इनमें से एक भी अनुमान भ्रामक एवं असत्य होता है तो एकल संस्थिति पर जीन के परिवर्तन के रूप में उत्परिवर्तन की दर का अनुमान अधिक हो जायेगा। उदाहरण के लिए यदि किसी 'फीनोकापी' या 'लक्षण प्रति' (Phenocopy) अथवा अप्रबल जीन की 'समयुग्मजता' को भ्रमवश प्रभावी उत्परिवर्तन के रूप में समझ लिया जाय, तो किसी भी जनसंख्या में इसकी आवृत्ति वास्तविकता से कहीं अधिक होगी। इसीप्रकार यदि एक उत्परिवर्तित लक्षण के लिए कई संस्थियों पर पाये गये परिवर्तित विकल्पी उत्तरदायी है, तो भी उत्परिवर्तन दर का अनुमान अधिक होगा क्योंकि भिन्न संस्थियों पर पायी जाने वाली विकल्पियों की उत्परिवर्तन दर भिन्न होती है जो एक सम्मिलित करने पर स्वतः अधिक हो जाती है। अतः उत्परिवर्तन आवृत्ति के प्रत्यक्ष अनुमान में निरीक्षण, पुनर्निरीक्षण अत्यावश्यक है।

उदाहरण 1 : कर्ट स्टर्न ने कापेनहैगेन चिकित्सालय के 94,075 बच्चों के जन्म के अभिलेख को प्रस्तुत किया। इतने जन्मों में 10 बच्चे 'कांड्रोडिस्ट्राफिक डार्फिज्म' (Chonodystrophic dawrphism) या आसामान्य बौनेपन का शिकार हुए। इनमें दो बच्चे प्रभावित माता-पिता से जन्में लेकिन शेष 8 बच्चों के माता पिता एवं उनके पूर्वज पूर्णतः सामान्य थे। इस आंकड़े के आधार पर यह पाया गया कि लगभग 12,000 जन्म में असामान्य बौना उत्परिवर्तन की क्रिया का परिणाम है। चूंकि डेनमार्क में इस लक्षण की वंशावलियां साधारण प्रभावी लक्षण वंशागति के नियमों को व्यक्त करती है। अतः इस लक्षण को उत्परिवर्तन का साक्ष्य माना गया।

इसकी दर का आंकलन इस प्रकार से किया गया। 12,000 जन्मों में 1 बौना बच्चा उत्परिवर्तित जीन के परिणाम स्वरुप उत्पन्न होता है तो इसका तात्पर्य यह हुआ कि 12,000 जन्मों के द्विगुणित युग्मक $12,000 \times 2 = 24,000$ हुए। अतः असामान्य बौनापन के लिए 1 उत्परिवर्तित जीन 24,000 युग्मक या जन्मों में सम्भाव्य है, तो जन्म में इस लक्षण के लिए उत्परिवर्तन की सम्भावना निम्न होगी :

24,000 युग्मक/जन्म = 1उत्परिवर्तन

1 युग्मक/जन्म= 1/24,000

या =.000041

अतः दर=4.1^{-5}

उदाहरण 2: 'रेटिनाब्लैस्टोमा' (Retinablastoma) रोग सम्बन्धित विकृति आंखों के रेटिना से है। इस रोगी की रेटिना में गिल्टी (Tumour) विकसित हो जाती है। यह बचपन में विकसित होता है तथा यदि शल्य चिकित्सा से आँखें बाहर न निकाल दी जाये तो रोगी की मृत्यु भी हो जाती है। यह आसामानय लक्षण उत्परिवर्तन की क्रिया के परिणामस्वरुप उत्पन्न पायी गयी है। यह विशेषक प्रभावी उत्परिवर्तन की कोटि में सम्मिलित किया गया है। सर्वेक्षणों के अनुसार मिशीगन में 1936–45 के मध्य सामान्य माता पिता के 1,054,985 बच्चों में 49 रेटिनाब्लैस्टोमा विशेषक वाले देखे गये। इस आंकड़े से नील एवं फाल्स (Neels and Falls) ने इस लक्षण के लिए उत्परिवर्तन दर 2.3^{-5} निकाली।

अप्रत्यक्ष विधि

यह विधि डैनफोर्थ ने सुझाई। कालान्तर में हाल्डेन, गन्थर व पेनरोज ने स्वतन्त्र रुप से इस विधि को विकसित किया। यह जनसंख्या आनुवंशिकी के सिद्धान्तों पर आधारित है। इस विधि को एक उदाहरण से विधिवत् समझ सकते हैं।

कांड्रोडिस्ट्रॉफिक बौनापन की आवृत्ति यदि अप्रत्यक्ष विधि से ज्ञात करें तो निम्न प्रकार की निगमन प्रणाली (Deduction system) का अनुसरण करना होगा।

डेनमार्क में हुए सर्वेक्षणों के अनुसार कुल जीवित एवं मृत 108 असामान्य बौने बच्चे उत्पन्न हुए। इनसे केवल 27 सन्ततियां पायी गयी जिनमें अनुमानतः लगभग आधी असामान्य बौनेपन की शिकार होंगी। अतः बौनेपन के लिए उत्तरदायी 108 विकल्पियों में मात्र 24×1/2=13.5 विकल्पी सन्ततियों में वंशागत हुए। इसलिए एक पीढ़ी के बाद असामान्य विकल्पी का अनुपात 13.5 : 108=0.125 रहा। असामान्य बौनों की सापेक्ष पुनरूत्पादन योग्यता (Relative–Reproductive Fitness) का पता इनके भाई–बहनों (Sibs) की पुनरूत्पादक क्षमता की सहायता से ज्ञात किया जा सकता है। इनके 457 सामान्य भाई–बहनों से 582 बच्चे उत्पन्न हुए। इसका तात्पर्य 457×2 सामांन्य युग्मक अर्थात् 914 युग्मक, 457 सामान्य भाई–बहनों से बनें जिनसे केवल 582/914 अर्थात् 0.6368 भाग युग्मकों से बच्चे उत्पन्न हुए। अतः सामान्य बौनेपन की सापेक्ष पुनरूत्पादक क्षमता f=0.125/0.6368=0.1963 होगी।

दूसरे शब्दों में सामान्य विकल्पियों के सापेक्ष में केवल 19.6 प्रतिशत असामान्य विकल्पी एक पीढ़ी में पारगमित होंगे जो अगली पीढ़ी में, अर्थात् 100–19.6=80.4 (या 1–f) प्रतिशत का विलोपन हो गया।

असामान्यता की आवृत्ति का सबसे अच्छा चिकित्सालय आंकड़ों से प्राप्त होता है जिसका वर्णन प्रत्यक्ष विधि में किया गया। वहाँ पर 94,075 जन्मों में 10 बौनों की दर का अनुमान किया गया या, जो :

X=10/94,075

इसे यदि सूत्र (1) में रखें तो 1–f तथा x का मान निम्न होगा :

u=1/2 (1–0.1963) 10/94,075=0.0000427.

यह उत्परिवर्तन दर का अनुमान अप्रत्यक्ष विधि से ज्ञात किया गया। अतः 10,0000 में 4.27 युग्मक (4.27×10^{-5}) अथवा 23,400 में 1 उत्परिवर्तन जो प्रत्यक्ष विधि के समकक्षीय मान (24,000 में 1) है। लेकिन इस सहमति को अधिक महत्व नही देना चाहिए क्योंकि अप्रत्यक्ष विधि पूर्णतया विवादमुक्त नही है।

नील (Neel, 1957) ने नेचुरल अकादमिक साइंस पत्रिका (43) में अनेकों विशेषकों की उत्परिवर्तनदर को प्रकाशित किया जो अनकों विद्वानों के द्वारा आंकलित की गयी थी, इसे निम्न तालिका में दर्शाया जा रहा है :

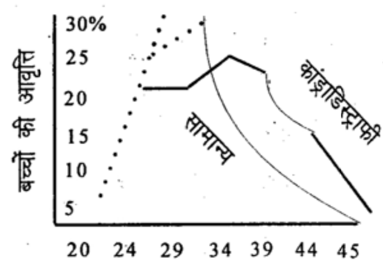
क्रम	विशेषक	उत्परिवर्तनदर प्रति 1 लाख युग्मक
	अलिंगसूत्री प्रभावी :	
1.	हटिंगटनकोरिया	10.1
2.	रेटिनाब्लेस्टोसिस	0.4
3.	वार्डेनबर्ग सिंड्रोम (असामान्य नेत्ररजंक, बधिरपन आदि)	0.4
4.	एनीरिडिया (नेत्र तारिका का अभाव)	0.5
5.	माइक्रॉफ्थैल्मस (छोटी आँख)	0.5
6.	मैरियन सिंड्रोम	0.5
7.	मस्कुलर डिस्ट्राफी(मांसपेशी विकृति)	0.8

क्रमशः

क्रमशः

8.	इपीलोइया (मस्तिष्क गिल्टी)	0.8–1.2
9.	लम्बी आँत की बहु पॉलीपॉसिस	1.3
10.	पेल्जर न्यूक्लियर विकृति (श्वेत रक्त कणिका के केन्द्रक का असामान्य आकार)	2.7
11.	कान्ड्राडिस्ट्राफी (बौनापन)	1–14
12.	न्यूरोफाइब्रोमोइटॉइसिस (केन्द्रीय तंत्रिका के ऊतक की गिल्टी)	10
	X–सहलग्न अप्रबल :	
1.	हीमोफीलिया (संयुक्त)	2–3.2
2.	ड्यूचीन–मस्कुलर डिस्ट्राफी	4.9

अप्रत्यक्ष विधि से प्राप्त उत्परिवर्तन दर से स्त्री एवं पुरुष युग्मकों की सम्भाव्य की दर का अनुमान नहीं हो पाता। चूंकि उत्परिवर्तन दर आयु एवं लिंग से प्रभावित होती है (जैसे पेड़ पौधों एवं जीवों पर हुए प्रयोगों से ज्ञात होता है) अतः यदि दर का आंकलन प्रत्यक्ष विधि से करे तो अधिक उपयुक्त होता है। मॉर्च (Morch) ने कांड्राडिस्ट्राफी का सम्बन्ध सामान्य स्त्री की मध्यवर्ती आयु के साथ देखा। इसे निम्न चित्र में दर्शाया गया है :



स्वतः एवं प्रेरित उत्परिवर्तन की दरें भिन्नता प्रदर्शित करती है। यह दरें 4×10^{-6} से 1×10^{-3} उत्परिवर्तन प्रति जीन प्रति पीढ़ी तक होती हैं। चूंकि अभी तक इन दरों का आंकलन विकृत लक्षणों के लिए ही किया गया है, अतः वास्तव में हम यह नहीं जानते है कि इस प्रकार की उत्परिवर्तन दरें सामान्य मानव जीन में किस प्रकार प्रतिनिधित्व करेंगी।

(ii) प्रवसन एवं संकरण
(Migration & Hybridezation)

प्रवसन वह प्रक्रिया है जब कोई व्यक्ति या व्यक्ति समूह अपने मूल निवास स्थान का किसी भी कारण से त्याग करके अन्य स्थान पर निवास करता है। जब कि संकरण प्रक्रिया से किसी एक जनसंख्या के जीनपूल में किसी अन्य (Foreign) जनसंख्या के जीन प्रवेश करते हैं। संकरण से किसी नवीन जीन की उत्पत्ति नहीं होती, बल्कि एक जीन का दूसरे स्थान पर प्रवाह होने से जीन आवृत्ति में परिवर्तन होता है। अतः प्रवसन एवं संकरण एक-दूसरे पूरक हैं। प्रवसन की परिणति संकरण होती है जब कि संकरण का साधन प्रवसन होता है। ये दोनों एक ही प्रक्रिया की दो प्रावस्थायें हैं।

यह प्रक्रिया नये जीन उत्पन्न तो नहीं करती, वरन् जनसमुदाय की जीनी संरचना को व्यापक रूप से प्रभावित करती है। प्रवसन का आंकलन संकर वंशज समूह के दो पूर्वज जनसमुदायों में हुए में हुए जीन मिश्रण की मात्रा से किया जाता है। इसकी गणना तींनों सम्बन्धित जनसमुदायों- (i) संकर समुदाय (ii) पूर्वज समुदाय (iii) वह जनसमुदाय जिससे प्रवाहित जीन आये हों। इसे निम्न सूत्र से ज्ञात कर सकते हैं :

$m=q^1-q^2/q^3-q^3$

यहाँ q1, q2 एवं q3 क्रमशः वह समुदाय जिससे जीन प्रवाहित हो, पूर्वज समुदाय वह समुदाय जिसमें प्रवाहित जीन प्रवेश किये हों। मिश्रण के परिमाण (Magnitude) की गणना अनेकों समुदायों में की गयी है। उदाहरण के तौर पर यूरोपीय उत्पत्ति वाले अमेरिकी जनसमुदाय एवं अफ्रीकी लोगों के मध्य मिश्रण गणनायें निम्न तालिका में दर्शायी जा रही है :

युग्म विकल्पी	पूर्वजजन समुदाय	जीन आवृत्ति	अमेरिकी अफ्रीकी	जीन आवृत्ति	अमेरिकी यूरोपीय	जीन आवृत्ति	m
Rh+/Rh–	ईव –I	0.547	बाल्टीमोर	0.446	न्यूयार्क–I	0.028	0.195
(R^0)	ईव –II	0.480	बाल्टीमोर	0.446	न्यूयार्क–I	0.028	0.075
	ईव –II	0.480	वाशिंगटन	0.449	न्यूयार्क–I	0.028	0.669
	द०प० नाइजीरिया	0.602	बाल्टीमोर	0.446	न्यूयार्क–I	0.028	0.272
	उ० नाइजीरिया	0.539	बाल्टीमोर	0.446	न्यूयार्क–I	0.028	0.182
MNS	द०प० नाइजीरिया	0.124	न्यूयार्क–I	0.160	न्यूयार्क–III	0.337	0.169
	द० नाइजीरिया	0.139	न्यूयार्क–I	0.160	न्यूयार्क–III	0.337	0.106
Jkb	अफ्रीका-I प०	0.217	न्यूयार्क-II	0.269	बोस्टव	0.447	0.200
PTC(T)	प० अफ्रीका-II	0.813	ओहियों	0.697	ओहियों	0.455	0.324

जीन मिश्रण की गणना करते समय तीन तथ्यों की मान्यता प्रदान की जाती है- (i) जीनों का प्रवसन पूर्णरुप से एक जनसमूह से दूसरें जनसमूह में होता है। (ii) विचारणीय युग्म विकल्पी से सम्बन्धित चयनात्मक विवाह नहीं होती। (iii) दो भिन्न जनसमुदायों के मध्य मिश्रण (Assortative Mating) के फलस्वरूप उत्पन्न युग्मनज प्रजननशील होते हैं। यदि ये प्रजननशील न हो तो किसी भी जीन का प्रवसन या संकरण न होता। लेकिन इसमें पूर्वज जनसमूह का निर्धारण करना कठिन होता है। मिश्रण के परिमाण का आंकलन तीनों में से प्रत्येक जनसमूह में किसी विशेष युग्मविकल्पी की आवृत्ति पर आधारित होता है। यदि पूर्वज समूह का चुनाव करने में त्रुटि हो जाये तो मिश्रण के परिमाण के आंकलन में त्रुटि की सम्भावना होती है।

कभी-कभी यह निर्धारित करना कठिन होता है कि जीन परिवर्तन क्या प्रवसन अथवा संकरण की प्रक्रिया के फलस्वरुप ही हुआ है? ऐसा इसलिए क्योंकि जीन प्रसरण की क्रिया भी इसी प्रकार का जीन परिवर्तन करती है। कभी-कभी इन दोनों विरोधी प्रक्रियाओं के परिणाम एक समान होते है। ऐसी स्थिति में एतिहासिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अध्ययनों की सहायता से यह पता लगाया जाता है कि किसी विशेष जनसमुदाय में प्रवसन के फलस्वरुप अन्तर-विवाह या बहिर्विवाह की घटनायें हुई है अथवा उस समुदाय के प्रवासियों के द्वारा लैंगिक सम्बन्ध स्थापित होने से विवाहेतर सम्बन्धों की आवृत्ति में वर्धन तो नहीं हुआ है? यह ज्ञात हो जाने पर प्रवसन एवं जीन अपसरण की क्रियाओं में भेद करना सरल हो जाता है। उदाहरण के लिए, यूरोपीय मूल के अमेरिकी निवासी कोलम्बस की खोज के बाद उस महाद्वीप पर तेजी से फैल गये। बंजर भूमि को उपजाऊ बनानें के लिए अत्यधिक श्रम की आवश्यकता थी इसलिये ये लोग अफ्रीकियों को श्रमिक एवं गुलामों के समान प्रयोग करने के लिए ले गये। धीरे-धीरे अफ्रीकी मूल के निवासियों की संख्या भी बढ़ती गयी। कालान्तर में इन दोनों जनसमूहों में मिश्रण तेजी से हुआ यह ऐतिहासिक एवं सामाजिक अभिलेखों द्वारा प्रमाणित होता है। अतः यूरोपीय मूल के अमेरिकी निवासियों में जीन परिवर्तन संकरण अथवा प्रवसन के फलस्वरुप हुआ यह ज्ञात हो जाने पर तीनों प्रकार के जनसमुदायों की जीन आवृत्यिों से मिश्रण की दर ज्ञात की जा सकती है।

कभी-कभी विभिन्न ऐतिहासिक अभिलेखों की सत्यता एवं विश्वसनीयता भी भिन्न होती है। वर्तमान समय में अफ्रीकी भागों में रहने वाले अधिकांश जनसमूहों की जीन संरचना वही नही है, जो कि 17 वीं से 19 वीं शताब्दी के मध्य में थी। आधुनिक अफ्रीका में जो जीन संरचना हम आज देखते हैं वह 10 पीढ़ियों पूर्व ऐसी नहीं होगी क्योंकि 17 वीं शताब्दी के पश्चात् अफ्रीका में लोगों का स्थानान्तरण हुआ है तथा यह सम्भाव्य है कि उसकी जीन आवृत्तियों पर प्राकृतिक वरण का कुछ प्रभाव हो। इसलिए किसी जनसमूहों के ऐतिहासिक एवं सामाजिक अभिलेखों का समय स्थान के संदर्भ में विश्लेषण भी आवश्यक है। राबर्ट्स एवं हिम्पोर्स (1962) ने तीन अमेरिकी जनसमुदायों- अफ्रीकी- यूरोपीय- भारतीय, के मध्य मिश्रण का अनुमान लगाया जो आठ रूधिर वर्गो पर आधारित हैं। इसे निम्न तालिका में प्रदर्शित किया जा रहा है:

प्रवसन या जीन प्रवाह

से (From)	को (To)	m
अफ्रीकी	यूरोपीय	0.054
यूरोपीय	अफ्रीकी	0.306
अफ्रीकी	भारतीय	0.048
भारतीय	अफ्रीकी	0
यूरोपीय	भारतीय	0.042
भारतीय	यूरोपीय	0.300

वर्कमैन, ब्लूमबर्ग तथा कूपर (1963) ने संयुक्त राज्य अमेरिका के ग्रामीण जनसमूहों में यूरोपीय मूल के अमेरिकाई एवं अफ्रीकी मूल के अमेरिकाइयों के मध्य जीन प्रवसन का आंकलन किया। इसके लिए अमेरिका अफ्रीकी तथा अमेरिकी-यूरोपीय मूल की जनसंख्या का प्रतिचयन (Sample) जार्जियां क्षेत्र से लिया। इन्होने रूधिरवर्गों, तथा प्रमुख प्रोटीन एवं एन्जाइमों के आधार पर अपना अध्ययन पूर्ण किया। इनके अनुमान निम्नतालिका में दर्शायें जा रहे हैं :

जीन	युग्म विकल्पी	m
ABO रुधिर वर्ग	A	0.107
ABO रुधिर वर्ग	B	0.218
Rh रुधिर वर्ग	R_0	0.113
Rh रुधिर वर्ग	R_1	0.095

क्रमशः

क्रमशः

Rh रुधिर वर्ग	r	0.129
MNS रुधिर वर्ग	S	0.143
किड रूधिर वर्ग	JK^a	0.167
P रुधिर वर्ग	P	0.094
डफी रुधिर वर्ग	Fy^a	0.109
PTC स्वादन क्षमता	T	0.446
सीरम हैप्टोग्लोबिन	Hp^1	0.42–0.70
हीमोग्लोबिन	Hb^1	0.46–.69
G–6–PD	G–6–PD	0.34–0.44
ट्रांसफेरिन	TfD^1	0.50

इसी प्रकार अण्डमान द्वीपसमूह में रहने वाले पिग्मी तथा कुछ ओशिनियाई द्वीप समूहों जैसे-पापुआ के मिश्रण का अनुमान ब्वायड ने लगाया। चूंकि विश्व के अधिकांश भूभागों में मिश्रण हुआ है, जैसे- आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड ओशीनिया, थाईलैण्ड, भारत, आदि। इसलिए इन भूभागों पर रह रही मिश्रित जनसंख्याओं में संकरण का अनुमान किया जा चुका है। कतिपय क्षेत्रों जहां पर आज भी प्रवसन एवं संकरण हो रहा हैं, उन जनसमूहों का अध्ययन तेजी से किया जा रहा है। लेकिन जीन प्रवाह की गतिशीलता आजकल शिक्षा में प्रसार, परिवहन के नये साधनों का विकास, संचार व्यवस्था का आधुनिकीकरण आदि के कारण काफी बढ़ गयी है। इसके फलस्वरूप मूल जनसंख्याओं की जीन संरचनायें भी तेजी से परिवर्तित हो रही हैं।

(iii) प्राकृतिक वरण
(Natural Selection)

प्राकृतिक वरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा कुछ जीनप्ररूप (Genotype) जनन एवं जीवन क्षमता में अन्यों की तुलना में श्रेष्ठता प्राप्त कर लेते है। यह जीव के जीवन चक्र की विभिन्न अवस्थाओं पर क्रिया करता जीवों में विकास की क्रिया को प्रेरित करता है। जो जीन प्ररूप परिवर्तित वातावरण के प्रति आनुकूलता के उच्चतम स्तर को प्रदृर्शित करते हैं, उन्हें वरण सततूरूप से प्रोत्साहित करता है। जो जीन परिवर्तित वातावरण के अनुकूलन में श्रेष्ठतम नहीं हो पाते, वे कालान्तर में नष्ट हो जाते हैं। अतः कई या दो या दो से अधिक जीन प्ररूप के उपस्थित होने पर प्राकृतिक वरण पर्यावरण के सर्वाधिक अनुकूल जीन प्ररूप को ही

पुनरूत्पादन के लिए प्रेरित करता है। उदाहरण के लिए, किसी जीन स्थिति पर दो जीन विकल्पी हों, तो तीन सम्भावित जीनप्ररूप (Genotype) होते हैं। PTC स्वादन क्षमता के जीन संस्थिति पर दो विकल्पी (T एवं t) होते हैं तथा इसके तीन जीन प्ररूप (TT, Tt एवं tt) होते हैं।

इसी प्रकार ABO रूधिर प्रणाली के जीन स्थिति (Gene Loci) पर तीन विकल्पी- A, B, एवं O होते हैं, जिससे सम्भावित 6 जीन प्ररूप- AA, AO, BO, BB, AB, एवं OO उत्पन्न होते हैं। इन जीन प्ररूपों में जो किसी वातावरण के सर्वाधिक अनुकूल होता है, प्राकृतिक वरण उसी जीन प्ररूप को पुनरुत्पादन के लिए प्रेरित करता है, जैसे- अफ्रीकी जनसमूहों में ABO रूधिर वर्गो में B विकल्पी का वरण होने से BO, BB एवं AB जीन प्ररुपों की आवृत्ति सर्वाधिक हैं। किसी जीनी संस्थिति पर निश्चित जीन विकल्पियों की संख्या ज्ञात होने पर जीन प्ररूपों की संख्या निम्न सूत्र से सरलतापूर्वक ज्ञात की जा सकती है :

$$N=n(n+1)/2$$

यहां N जीन प्ररूपों की संख्या हैं तथा n का तात्पर्य जीन विकल्पियों की कुल संख्या से है। चूंकि मानव जीनोम (Genome) में दो या तीन से अधिक युग्म विकल्पियों वाली असंख्यों जीन स्थितियां (geneloci) हैं, अतः सम्भावित जीन प्ररुपों की संख्या अनन्त है। जितना बड़ा जनसमूह (मेंडलीय) होगा, उतना ही सम्भावित बृहद जीन भण्डार होगा जिस पर प्राकृतिकवरण सदैव क्रियायें करता रहता है।

प्रायः ऐसे कई जीनोटाइप होते हैं जो बदलते वातावरण में अपनी जीवनक्षमता खो देते हैं लेकिन उस समुदाय के जीन पूल (Gene Pool) में भिन्न-भिन्न जीन प्ररूप उत्पन्न करने की क्षमता होती है जिसके फलस्वरूप उस समूह में जीन विकल्पियों में पुनर्सयोजन (Recombination) होने से परिष्कृत जीन प्ररूप उत्पन्न होते हैं जो वातावरण के अनुकूल होने पर उनका चयन बार-बार होता रहता है। इसप्रकार प्राकृतिक वरण किसी एक व्यक्ति के जीन विकल्पियों पर क्रियाशील नही होता, अपितु सम्पूर्ण समुदाय के जीन पूल पर क्रिया करता है। परिवर्तित वातावरण के अनुकूल होने के लिए सम्पूर्ण जनसमुदाय प्रतिक्रिया करता है। अतः अनुकूलन जो प्राकृतिकवरण की आवश्यक ईकाई है, वह बदले वातावरण के प्रति एक व्यक्ति की नहीं बल्कि सम्पूर्ण जनसमूह की प्रतिक्रिया है।

यदि कोई ऐसा जीनप्ररूप है जो वातावरण के अनुकूल होने में पूर्णतः अक्षम है, धीरे-धीरे अपनी प्रजनन क्षमता खो देता है। फलस्वरुप कालान्तर में उस जीन प्ररूप का विलोपन हो जाता है। वे जीन प्ररूप, जो घातक (Lethal) एवं अर्धघातक (Sublethal) होते हैं, किसी वातावरण में जीवन के लिए लाभप्रद न होने के कारण उनका नकारात्मक वरण होता है। क्योंकि जिन व्यक्तियों में ये हानिकारक लक्षण पाये जाते हैं, उस व्यक्ति की प्रजनन शक्ति (Reproductive Potency) क्षीण कर देते हैं, इससे इन जीन-प्ररुपों का पुनरूत्पादन नही हों पाता। उदाहरण के लिए वर्णान्धता (Colourblindness) हानिकारक लक्षण हैं। थारू जनजाति में इन लक्षणों की आवृत्ति अत्यल्प है। उत्तरी भारत की यह जनजाति प्रायः जंगली कंद-मूल, आखेट एवं खाद्य सामग्री एकत्रित करके अपना भरण-पोषण करती है। यदि इन हानिकारक विशेषकों का वरण होता, तो इनकी आवृत्ति बढ़ने से सम्पूर्ण जनसंख्या पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता क्योंकि जंगली खाद्य पदार्थो के एकत्र करने में अनेकों कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। यदि इन नेत्र विकारों की अधिकता होती तो प्रायः वनीय कींड़ो, जानवरों एवं सांपों के काटनें से मृत्युदर की वृद्धि होती, जिससे थारू जनसंख्या की वृद्धि या तो शून्य होती या नकारात्मक होती। इसलिए यह स्पष्ट होता है कि इन रोगों के लिए उत्तरदायी जीनप्ररूपों का प्राकृतिकवरण न होने से जिन व्यक्तियों में ये जीन प्ररूप (विशेषक) विद्यमान थे, उनकी प्रजनन क्षमता क्षीण हो गयी। वरण की क्रिया के फलस्वरुप इन जीन प्ररूपों की आवृत्ति अत्यल्प है, (सिंह, 1994)।

इसीप्रकार प्रकृतिवरण की क्रिया के बहुआयामी प्रभाव को एक अन्य उदाहरण से भी समझा जा सकता है। हीमोग्लोबिन-S(Hb-S) एक ह्ानिकारक लक्षण है। इससे रक्ताल्पता का रोग (Anaemia) होने से पीड़ित व्यक्ति की मृत्यु भी हो जाया करती है। लेकिन ये हानिकारक लक्षण थारू आदिवासियों में लाभप्रद सिध्द होता है क्योंकि थारूओं में मलेरिया (Maleria) महामारी से लड़ने की क्षमता प्रदान करता है। इसलिए मलेरिया युक्त वातावरण में जीवनोपयोगी होने से इस हानिकारक लक्षण Hb-S का सकारात्मकवरण होता है।



चित्र: 32 प्राचीन विश्व में फैलसीपरम मलेरिया का वितरण

वरण सिद्धान्त के अनुसार जीन आवृत्तियों के अन्तर वरण क्रिया के परिणाम हैं। किन्ही दो जनसमुदायों में एक ही जीन प्ररूप की दो आवृत्तियां-भिन्न अपेक्षिक योग्यतायें (Relative Fitness) हैं। इन्हें आकारिक एवं आनुवंशिक लक्षणों में खोज सकते हैं। इससें किसी एक जीन की अन्य युग्मविकल्पियों पर श्रेष्ठता का पता लगाया जा सकता है क्योंकि जीनप्ररूप अपनी श्रेंष्ठता को अनय जीन-प्ररूपों की अपेक्षा संवर्धित प्रजनन एवं संतति की जीवनक्षमता के रूप में व्यक्त करते हैं।

आगामी सन्तति पीढ़ी में किसी जीन-प्ररूप के बढ़े हुए अनुपात को 'डार्विनी योग्यता' (Darwinean Fitness), या वरणात्मक मूल्य (Selection Value) कहते हैं। अन्य शब्दों में इस प्रकार की आपेक्षिक वृद्धि को अनुकूली मूल्य (Adaptive Value) भी कहते हैं। इसमें वरण प्रभाव किसी विशेष युग्मविकल्प (Pair of Allele) पर कार्य करता है।

यदि किसी समुदाय में दो जीन प्ररूपों में से कोई एक 100 संतति उत्पन्न करता है जबकि दूसरे ज़ीन प्ररूप वाला व्यक्ति 90 संतति उत्पन्न करता है तो पहले की डार्विनी योग्यता या अनुकूली मूल्य 1.00 तथा दूसरे की .90 होगी। इससे यह स्पष्ट होता है कि दूसरा जीनप्ररूप 0.10 प्रतिशत अंक से पिछड़ जाता है या अयोग्य प्रमाणित होता है। इस 0.10 प्रतिशत अक्षमता का 'वरण का गुणांक' (Coefficient of Selection) या वरणांक-S (Selective Coefficient) कहते हैं। आपेक्षिक योग्यता-RF (Relative Fitness) को 1–s सूत्र से ज्ञात की जाती है। इस सूत्र का निरूपण इसलिए ऐसा किया जाता है क्योंकि s दोनों में से एक जीनप्ररूप का विपरीत या नकारात्मक वरण गुणांक है।

चूंकि वरण का प्रभाव किसी जनसमूह के सम्पूर्ण जीनोम (Genome) पर होता है इसलिए वरण का गुणांक अधिक से अधिक जीन प्ररूपों एवं जीन विकल्पियों के समूहों का एक साथ ज्ञात करना चाहिए, लेकिन एक समय में अनेकों युग्म विकल्पियों के संयोंगो का गुणांक कुशलतापूर्वक ज्ञात नहीं किया जा सका है। अतः प्रत्येक युग्म विकल्पी के संयोंगो की योग्यता का अध्ययन स्वतन्त्र रूप से प्रायः किया जाता है। शारीरिक मानवविज्ञान में, विषमयुग्मजता (Heterozygosity) पर वरण के अनुकूल प्रभाव होने के कारण निम्न वरण गुणांक की आंकलन पद्धति अत्यन्त लोकप्रिय है क्योंकि ऐसी स्थिति में वरण समयुग्मजता (Homozygosity) के पक्ष में

न होकर विषमयुग्मजता के पक्ष में होता है जिससे जनसमूह की आवृत्ति किसी मध्यमूल्य (विषमयुग्मजी) पर सन्तुलित होती है। प्रभावी एवं अप्रभावी विकल्पियों के अध्ययन में वरण-गुणांक को ज्ञात करने हेतु निम्न सूत्र का उपयोग किया जाता है:

$$\Delta = pq(s1p - s2q)/1 - s1p2 - s2q2$$

यहाँ p तथा q आवृत्तियों वाले युग्म विकल्पियों के वरण गुणांक क्रमशः s1 तथा s2 एवं P+q=1 है। Δq एक पीढ़ी के बाद जीन आवृत्ति में परिवर्तन है जहां पर वरण क्रिया S1 तथा S2 के परिणाम (Magnitude) में कार्य करती है।

(iv) जीन अपसरण
(Genetic Drift)

इसे 'प्रतिचयन त्रुटि' (Sampling Error) के नाम से भी जाना जाता है। इस कारक की खोज सीवेल एवं राइट् (Sewall and Wright) ने किया था, इस कारण से इसे 'सीवेल-राइट प्रभाव' (Sewall Wright Effect) भी कहते हैं।

प्रतिचयन त्रुटि गणित एवं सांख्यकी की गूढ़तम अवधारणा है जो किसी जनसंख्या के छोटे आकार में निरूपित होती है। बड़े आकार वाली जनसंख्या में इस कारक के प्रभाव की सम्भावना अत्यल्प होती है जबकि अत्यधिक लघु जनसमुदाय में यह जीन परिवर्तन में प्रभावशाली होता है। सिद्धान्ततः प्रतिचयन त्रुटि तब अधिक प्रभावशाली कारक है जब:

(i) किसी जनसमूह में वांछित युग्मविकल्प की आवृत्ति अत्यल्प हो,

(ii) उस समुदाय से व्यक्तियों का निरन्तर बर्हिगमन (Out migration) हो, तथा

(iii) विभेदी जनन क्षमता (Fertility–differential) एक समुचित अनुपात में हो।

वस्तुतः जीन अपसरण कोई आनुवंशिक प्रक्रिया नहीं है यह दुर्घटनाओं पर आधारित एक संयोग की प्रक्रिया है। जिसके फलस्वरुप एक अत्यन्त लघु जनसमुदाय में घातक दुर्घटनाओं का कम आवृत्ति वाले युग्म विकल्पी पर निर्णायक प्रभाव पड़ सकता है तथा उस जनसमूह से उस युग्मविकल्पी का विलोपन भी सम्भव हो सकता है। इस प्रक्रिया की व्याख्या एक उदाहरण से की जा सकती है। किसी 200 व्यक्ति वाले एक जनसमूह में 190 रूधिर वर्ग O के हैं तथा 10 रूधिर वर्ग A

के हैं। यहां इस स्थिति की सम्भावना हो सकती है कि 10 व्यक्ति जिनका रूधिर A है इनकी आवृत्ति O की अपेक्षा अत्यल्प है तथा ये दुर्घटनाओं से पारस्परिक समागम करके सन्ततियां उत्पन्न न कर पायें और यह युग्म विकल्पी विलोपित हो जाये। कोई भी घटना जो इन युग्म विकल्पियों के समागम (Mating) को रोकती है जैसे- दुर्घटना रोग, उपयुक्त पति अथवा पत्नी का आवृत्ति को कम करेगी। अतः ये घटनायें जो प्रत्यक्ष रूप से जीन-क्रियाओं से तो सम्बन्धित नहीं है लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से किसी युग्मविकल्पी के विलुप्त होने की प्रवृत्ति उत्पन्न करती हैं जिसके फलस्वरूप जीन-परिवर्तन होता है।

लघु जनसमूहों में जीन-अपसरण द्वारा प्रायः स्थिरीकरण उत्पन्न हो जाता है या कोई विकल्पी लुप्त हो जाता है। इससे एक जनसमूह में कोई एक विकल्पी स्थिर हो जाता है। जैसा कि उक्त उदाहरण में यह इंगित किया गया है। कि A रूधिर वर्ग के केवल 10 व्यक्ति है। इस युग्म विकल्पी का समागम अपसरण के फलस्वरूप न हो तो आगामी पीढ़ियों में इस विकल्पी का विलोपन होता जायेगा तथा O विकल्पी का स्थिरीकरण हो जायेगा।

जीन-अपसरण के परिमाण का निर्धारण किसी जनसमूह के प्रजननशील समूह (Reproduction group) जिसे 'प्रभावशील जनसंख्या' (Effective Population) भी कहते हैं, इसके अध्ययन से किया जा सकता है। प्रभावशील जनसंख्या का आकार वास्तविक जनसंख्या से कम होता है। इसमें वे सभी विवाहित व्यक्ति सम्मिलित किये जाते हैं जिनकी आयु 15–45 वर्ष के मध्य होती है।

प्रभावशील जनसंख्या को ज्ञात करने की सरल विधि नेई (Nei, 1965) ने बतायी है जिसमें t किसी जनसंख्या में प्रजनन की औसत आयु तथा Nm प्रतिवर्ष प्रजननशील आयु में पहुंचने वाले व्यक्तियों की संख्या है। यह सूत्र निम्न है :

$$Ne = t\,Nm$$

कॉवली एवं स्फोर्ज़ा (Cavalli–Sforza, 1971) ने स्त्री पुरूषों की प्रभावशील जनसंख्या का आंकलन पृथकरूप से करने का सुझाव दिया। उसके पश्चात् एक जनसमूह की सम्पूर्ण प्रभावशील जनसंख्या निम्नांकित सूत्र से ज्ञात किया जा सकता है:

$$Ne = 4Ne^{(m)}\,Ne^{(f)} / Ne^{(m)} + Ne^{(f)}$$

यहां Ne कुल प्रभावशील जनसंख्या है जबकि $Ne^{(m)}$ तथा $Ne^{(f)}$ क्रमशः पुरूष एवं **स्त्रियों** की प्रभावशील संख्या है।

प्रभावशील जनसंख्या का आकार ज्ञात होने पर जीन अपसरण का आंकलन निम्नलिखित सूत्र से किया जा सकता है:

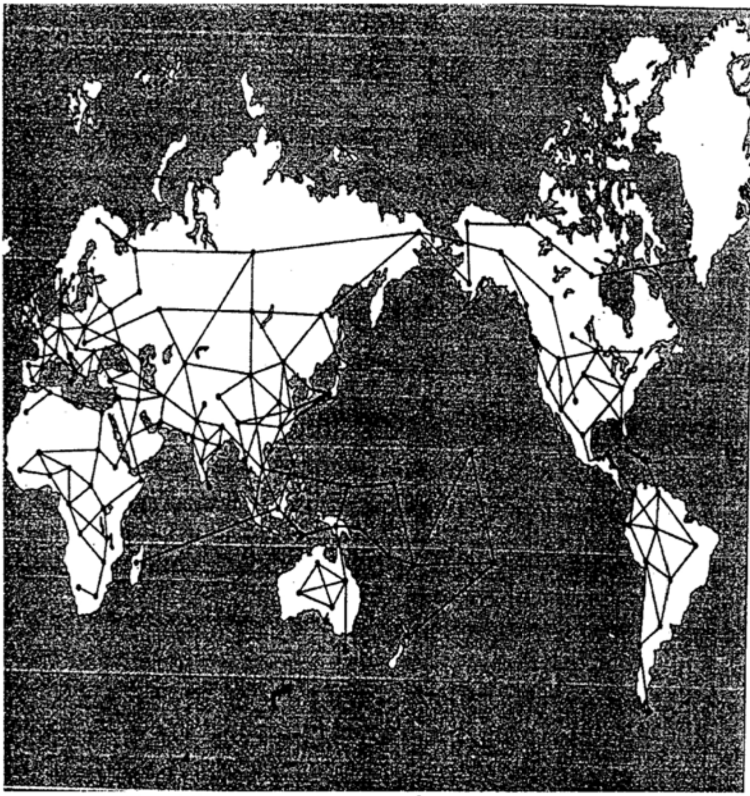
$$O^{-} \Delta q^2 = q(1-q)/2Ne$$

यहाँ O- एवं q उस युग्मविकल्प की आवृत्ति है जिसके लिए आनुवंशिक अपसरण (O- Δq^2) B की गणना की जा रही है। इस प्रकार उक्त सूत्रों का प्रयोग करके हम किसी जनसमूह की प्रभावशील जनसंख्या तथा जीन अपसरण का मान ज्ञात कर सकते है तथा इन संकेताक्षरों में राशियों का प्रयोग करते हुए किसी भी युग्म विकल्पी की आवृत्ति के लिए जीन-अपसरण निर्धरित किया जा सकता है।

(v) पृथक्करण
(Isolation)

यह कारक अन्य आनुवंशिक कारकों के साथ अन्तर्क्रियायें करके किसी जनसंख्या में जीन या विकल्पी परिवर्तन लाता हैं। कोई जनसमूह जो अपने पूर्वज समूह से भौगोलिक या पर्यावरणीय या प्रवसन आदि कारकों के फलस्वरूप पृथक हो जाता है वह यदि पृथक होकरके जनन करता रहे तो अपने पूर्वज समूह से भिन्न जीन संरचना को प्रदर्शित करने लगता है। यदि यह विलग समूह पुनः पूर्वज समूह से लैंगिक रूप से मिश्रित हो जाये तो ये भिन्नतायें समानताओं में विलीन हो जाती है। अतः पृथक्करण के लिए यह आवश्यक है कि सन्तति जनसंख्या पूर्वज समूह से भिन्न मिलन प्रारूप (Mating pattern) को अपनायें।

पृथक्करण के दो मूल तत्व हैं- स्थान एवं मिलन प्रारूप। इनमें मिलन प्रारूप किसी समुदाय की सामाजिक व सांस्कृतिक मान्यताओं तथा भौगोलिक परिस्थितियों से नियंन्त्रित होता है। यह मिलन प्रारूप एक निश्चित स्थान (सीमा रेखा) तक प्रभावशाली होता है। इनकी अन्तर्क्रियाओं के फलस्वरुप एक विशाल एवं विस्तृत जनसंख्या में कुछ पीढ़ियों उपरान्त' स्थानीय जनसंख्यायें (Local population) उत्पन्न होने लगती है। दूसरे शब्दों में स्थानीय जनसंख्यायें 'प्रजनन पृथकता' (Breeding Isolation) तथा भौगोलिक दशाओं की क्रियाओं के परिणामस्वरूप उत्पन्न होती है।



चित्रः 33 विश्व में आनुवंशिक अन्तर्सम्बन्ध की सम्भावित रेखायें

चूंकि भूतल पर परिवर्तन अबाधगति से होते रहते हैं। इससे अफ्रीका के कई जनसमूह पूर्वज समुदाय से पृथक हुए हैं या स्वेक्षा से अन्य प्रदेशों में प्रवास किया है। इन घटनाओं के फलस्वरूप उत्पन्न पृथकता ने विश्व के अनेकों जनसमूहों की आवृत्ति को परिवर्तित किया है जिसके साक्ष्य अमेरिकी एवं अफ्रीकी जनसमूहों से एकत्रित किये जा सकते हैं। लेकिन पृथक्करण विरले ही स्वतन्त्र रूप से किसी जनसमूह की जीनी आवृत्ति में परिवर्तन ला पाता है क्योंकि यह अन्य सहगामी कारकों जैसे- वरण, संकरण, प्रवसन, अपसरण आदि के साथ अधिक प्रभावशाली प्रतीत होता है। .

जीनी बहुरूपता एवं वरण
(Genetic Polymorphism and Selection)

जीनी बहुरूपता को 'किसी आनुवंशिक लक्षण के विभिन्न जीन प्ररूप' के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। सरल शब्दों में जीन बहुरूपता किसी एक विशिष्ट जीन भिन्न-भिन्न रूप हैं जो एक ही जनसंख्या के विभिन्न व्यक्तियों में व्यक्त होते हैं। विभिन्न व्यक्तियों में उस जीन के एक से अधिक विकल्पी, अपने भिन्न-भिन्न युग्म बनाते हैं। इन युग्म विकल्पियों के अनेको संयोग होने से एक ही जीन संस्थिति पर अनेकों जीनप्ररूप उस जनसंख्या में पाये जाते हैं। इन जीन प्ररूपों की आवृत्तियां विविधता को प्रदर्शित करती है। इन युग्म विकल्पियों की आवृत्तियां पीढ़ी दर पीढ़ी बदलती रहती है, जो युग्म विकल्पी बदलते वातावरण के अनुकूलन स्थापित कर सकने में सक्षम होता है उसकी प्रजननशीलता एवं जनन क्षमता उसी जीन संस्थिति (Locus) पर स्थित दूसरे विकल्पी से अधिक होती है। फलस्वरुप एक ही लक्षण के ये विशेष जीनप्ररूप प्रंकृति के अनुकूल होने के कारण बार-बार पुनरुत्पादित होते हैं।

यद्यपि उत्परिवर्तन इन आनुवंशिक बहुरूपताओं का अन्तिम स्रोत है, लेकिन बहुरूपी लक्षणों की आवृत्तियां सदैव 1प्रतिशत या उससे कुछ अधिक (p+q=1) रहती हैं। यदि इन बहुरूपताओं की कुल आवृत्ति 1 प्रतिशत से कम आये, तो यह मान लिया जाता है कि यह उत्परिवर्तन के कारण हुआ तथा उसके ऊपर वरण क्रियाशील है। उत्परिवर्तन किसी जनसंख्या में नये जीन उत्पन्न करता है, लेकिन फिर भी जनसंख्या की बहुरूपतायें उत्परिवर्तन की क्रिया पर निर्भर नहीं करती। चूंकि उत्परिवर्तन की दर प्रत्येक पीढ़ी में प्रति 1,00,000 संस्थिति है, अतः उत्परिवर्तन की इतनी सूक्ष्मदर एक जनसंख्या की विशाल बहुरूपताओं को उत्पन्न नही कर सकती। इन बहुरूपताओं के आकार-बर्धन में प्रमुख भूमिका 'वरण' की होती है क्योंकि वरण की क्रिया से कई पीढ़ियों पश्चात् अनेकों आनुवंशिक संयोग बनने से जीनी बहुरूपता में वृद्धि होती है। इसके अतिरिक्त प्रवंसन एवं संकरण से नवीन जीन प्रवेश करते हैं। इन नये जीन विकल्पियों से उस जनसंख्या में बहुरूपता पुनः वृद्धि करती है। पुनर्संयोजन (Gene Recombination) भी बहुरूपता को उत्पन्न करता है। इस प्रकार इन सभी प्रक्रियाओं के साथ वरण अन्तर्क्रिया

करता है जो अन्य प्रक्रियाओं के साथ साथ कार्य करता हुआ जीन विकल्पियों के नये नये संयोगों को एक दिशा प्रदान करता है।

जीनी बहुरूपताओं की आवृत्तियां हार्डी बीनबर्ग संतुलन से प्रायः स्थिर रहती है। लेकिन इन बहुरूपताओं में संशोधन वरण के प्रभाव से पीढ़ी दर पीढ़ी होते रहते हैं। चूंकि वरण कई स्तरों पर क्रियाशील होता है अतः बहुरूपताओं की आवृत्तियों में विभेदन का नेतृत्व वरण के द्वारा ही किया जाता है लेकिन युग्म विकल्पियों की आवृत्तियां सदैव संन्तुलित रहती है अर्थात् p एवं q (दो विकल्पी व्यवस्था) में दोनों का कुल मान 1 ही रहता है। यदि p की आवृत्ति वरण या अन्य प्रक्रियाओं के फलस्वरुप बढ़ती है तो q का मान स्वतः कम हो जाता है। उदाहरण के लिए यदि किसी जनसंख्या में स्वादक (T) जीन के व्यक्ति 85 प्रतिशत (0.85) हैं तो शेष 15 प्रतिशत (0.15) अस्वादक जीन के होंगे। यदि वरण की क्रिया के फलस्वरुप स्वादक जीन की पुनरुत्पादन एवं जनन शक्ति अस्वादक की अपेक्षा अधिक हुई तो अगली पीढ़ियों में स्वादक जीन की आवृत्ति बढ़ती रहेगी तथा दूसरी ओर अस्वादक जीन की, प्राकृतिक वरण का विपरीत प्रभाव पड़ने से, जनन एवं पुनरुत्पादन क्षमता क्षीण होती जायेगी। परिणामस्वरुप अस्वादक जीन की आवृत्ति कम या विलुप्त होती जायेगी। इससें स्वादक एवं अस्वादक जीन की आवृत्ति में पारस्परिक संशोधन अवश्य होगा लेकिन आनुवंशिक सन्तुलन (Genetic Equalibrioum=p+q=1) सदैव बना रहेगा।

कभी-कभी p एवं q की आवृत्तियों में योगांक (Sum) में संतुलन होने के साथ-साथ विकल्पियों की आवृत्तियां भी कई पीढ़ियों तक स्थिर हो जाती है। एक जीन की इस बहुरूपता को 'संतुलित बहुरूपता' (Balanced polymorphism) के नाम से पुकारते हैं। इस प्रकार की बहुरूपता उस स्थिति में विकसित होती है जब किसी जनसंख्या के स्तर पर उद्विकासीय कारक तटस्थ या अधिक हो जाते हैं।

जब किसी जीन बहुरूपता के लिए एक युग्मविकल्पी की आवृत्ति के मूल्य पर बढ़ रही हो अर्थात् दूसरे युग्म विकल्पी की आवृत्ति के मूल्य पर बढ़ रही हो अर्थात् दूसरे युग्म विकल्पी पर वरण के नकारात्मक प्रभाव से उसकी आवृत्ति में आयी गिरावट का लाभ पहला युग्मविकल्पी प्राप्त करें तथा उसकी आवृत्ति में वृद्धि हो तो इस प्रकार की जीन बहुरूपता को 'क्षणिक बहुरूपता' (Transient polymorpism)

कहते हैं। क्षणिक बहुरूपता कई पीढ़ियों तक स्थायी नहीं होती है क्योंकि इस अवस्था में वरण तथा अन्य प्रक्रियायें (उत्परिवर्तन आदि) सक्रिय होती हैं।

आनुवंशिक बहुरूपता को जीन अभिव्यक्ति के आधार दो भागों में बाटा जाता है: जीन बहुरूपता (genotypic polymorphism) एवं व्यक्त बहुरूपता (Phenotypic polymorphism) । जीन बहुरूपता का वर्णन अभी किया जा चुका है। संक्षेप में यह वह आनुवंशिक बहुरूपता है जो युग्म विकल्पियों' के विभिन्न रूपों में प्रदर्शित होती है जैसे- TT, Tt एवं tt । जबकि व्यक्त बहुरूपता इससे भिन्न है। यह जीन अभिव्यक्ति पर आधारित बहुरूपता है। उदाहरण के लिए TT एवं Tt क्रमशः समयुग्मजी एवं विषमयुग्मजी विकल्पी बहुरूपता हैं लेकिन यह संयोग एक जीन के दो विकल्पियों पर आधारित है। इनमें एक प्रभावी (T) तथा दूसरा अप्रभावी विकल्पी (t) है। विषमयुग्मजी स्थिति में प्रभावी विकल्पी ही व्यक्त हो पाता है। तथा अप्रभावी अप्रकट रहता है। अतः TT एवं Tt का व्यक्त रूप 'स्वादन क्षमता' है और इस आनुवंशिक लक्षण की व्यक्त बहुरूपता स्वादन एवं अस्वादन क्षमता है। चार्ल्स डार्विन अपने सर्वेक्षण के दिनों में इन्हीं बहुरूपता का अवलोकन करके उत्साहित हुए थे, जबकि इन बहुरूपताओं के मूल स्वरूप (जीन बहुरूपता) का ज्ञान मेण्डल के उपरान्त हो सका।

यह आनुवंशिक बहुरूपता एक जीन के स्तर पर ही नही दृष्टिगोचर होती है बल्कि यह बहुरूपता एक कोशिकीय गुणसूत्र, प्रोटीन एवं डी०एन०ए० स्तर पर भी स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। कोशिकीय स्तर की बहुरूपतायें लाल रक्त कोशिकाओं (RBC) में देखी जा सकती है। इन कोशिकाओं का आकार प्रायः गोल एवं टिकिया जैसा होता है जिसमें हीमोग्लोबिन विद्यमान होता है। लेकिन इसका आकार परिवर्तनशील होता है ये कभी-कभी हंसियाकार भी होता हे। इस कोशिकीय लक्षण की बहुरूपता SS, Ss एवं ss जीन प्ररूप से व्यक्त किया जाता है। इसी लाल रक्त कोशिका के स्तर पर A, B, AB तथा O रूधिर वर्ग पाये जाते हैं जो विकल्पियों A, B, एवं O से नियन्त्रित होते हैं। गुणसूत्र-9 पर स्थिति जीन यह इंगित करता है कि 'ट्रांसफरेज़ उत्प्रेरक (Transferase enzyme) वर्ग-A के प्रोटीन विशिष्ट शर्करा 'एसीटाइल गैलैक्टोसीमाइन' (Acetyle Galactoseamine) की वृद्धि करता है। रूधिर वर्ग-B में 'गैलेक्टोज' (Galactose) की वृद्धि होती है। रूधिर वर्ग-O के पदार्थ में कोई

भी अतिरिक्त पदार्थ संयुक्त नहीं होता। इस प्रकार जैव रासायनिक पदार्थों की विद्यमानता एक जनसंख्या के व्यक्तियों के RBC के आनुवंशिक स्वरुप में बहुरुपता प्रदर्शित होती है।

गुणसूत्र संरचना का विन्यास (arrangement) परिवर्तित होता रहता है इससे एक जनसमूह में गुणसूत्र विविध विन्यासों तथा पुनर्विन्यासों के देखे गये हैं। एक जनसंख्या के गुणसूत्री क्रम विन्यास में परिवर्तन होने से बहुरूपता उत्पन्न हुई है। एक जनसंख्या में गुणसूत्री विन्यास के स्तर पर आयी बहुरूपता विपथन के फलस्वरुप उत्पन्न होती है जिसकी विस्तृत परिचर्चा अध्याय-5 में कर चुके हैं।

प्रोटीन एवं एन्जाइम के स्तर पर अनेकों विशेंषकों की आनुवंशिक बहुरूपतायें 'जेल-इलेक्ट्रोफोरेसिस' (Gel–Electrophoresis) विधि से ज्ञात की गयी हैं, जैसे-हीमोग्लोबिन (Hb), हैप्टोग्लोबिन (Hp), ट्रांसफेरिन (Tf), इस्टरेज़-D(Es–D), पी०एम०जी० (PMG), ग्लूकोज-6, डीहाइड्रोजिनेज (G–6–PD) आदि विशेषकों की बहुरूपतायें। इसीप्रकार मानव जनसमूहों में DNA बहुरूपता अनेकों विधियों से ज्ञात की गयी है जिसका उल्लेख अध्याय 6 एवं 10 में किया गया है।

इस प्रकार आनुवंशिक बहुरूपता एक जनसंख्या को एक ही लक्षण के विविध समूह प्रदान करती है जिससे वह जनसंख्या बदले वातावरण में अनुकूलन स्थापित करने में सक्षम होती है।

बहुविकल्पी एवं बहुलजीन
(Multiple Allele and Polygenes)

1. बहुविकल्पी (Multiple Alleles)

जैसा कि इसके पूर्व भी कहा गया है कि मानव के विभिन्न लक्षण जीनों द्वारा निर्धारित होते हैं। इनमें से कुछ ऐसे लक्षण होते हैं। जो विशिष्ट एक जीन द्वारा नियन्त्रित होते हैं। एक जीन द्वारा नियन्त्रित होने वाले लक्षणों के वैकल्पिक रुप उस जीन के विकल्पी (allele) द्वारा निर्धारित होते हैं जैसे- P.T.C. स्वादन क्षमता एवं अक्षमता दो पृथक विकल्पी T एवं t द्वारा निर्धारित होती है। प्रत्येक मनुष्य में ये विकल्पी युग्म रूप में पाये जाते हैं, जैसे-TT, tt, Tt आदि। इन युग्म विकल्पियों में

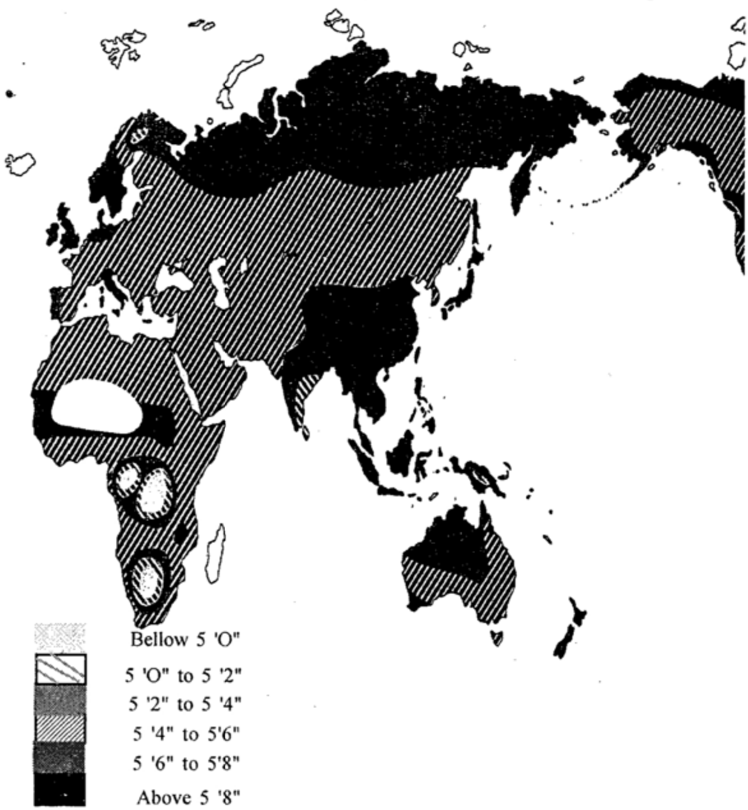
एक विकल्पी माता से तथा दूसरा पिता से आता है। एक जनसंख्या में प्रायः आनुवंशिक लक्षणों की दो विकल्पी व्यवस्थायें देखी जाती हैं लेकिन कुछ ऐसे भी जीन होते हैं जो तीन अथवा अधिक उत्परिवर्ती (विकल्पी) रखते हैं। इन्हें सामूहिक रूप से 'बहुविकल्पी' (Multiple Allele) की संज्ञा दी जाती है। उदाहरण के लिए मानव के रूधिरवर्ग-ABO, Rh, Mns, Hb आदि। ABO रूधिरवर्गो का निर्धारण 3 विकल्पियों- A, B एवं O के द्वारा Rh रूधिर वर्ग में आठ विकल्पी-R^z, R^1, R^2, R^0, r, r^1,r^2 एवं ry, MNs में तीन विकल्पी M, N, एवं S तथा हीमोग्लोबिन में Hb–A, Hb–A2, Hb–f, Hb–S आदि विकल्पी इन लक्षणों के विभिन्न रूपों का निर्धारण करते हैं।

बहुविकल्पियों की प्रमुख विशिष्टतायें निम्नलिखित है :

1. बहुविकल्पी सजातीय गुणसूत्रों (Homologous Chromosomas) पर सदैव एक ही जीन-स्थल (Locus) पर स्थित होते है। इससे यह स्पष्ट होता है कि युग्म विकल्पियों जैसे- AA, में से एक विकल्पी केवल एक गुणसूत्र के निश्चित स्थल पर स्थित होता है जब कि दूसरा विकल्पी दूसरे सजातीय गुणसूत्र के उसी स्थल पर विद्यमान होता है।
2. ये सदैव एक ही लक्षण को निर्धारित करते हैं लेकिन उस लक्षण के कई वैकल्पिक रूपों को नियन्त्रित करने में सक्षम होते हैं।
3. इन बहुविकल्पियों की वंशागति मुख्यतः मेण्डलीय पद्धति से होती है। इनमें से कुछ विकल्पी प्रभावी तथा कुछ अप्रभावी होते हैं। कभी-कभी इन बहुविकल्पियों की वंशागति मेण्डलीय नियमों से भिन्न होती है जैसे ABO रूधिरवर्ग में A तथा B दोनों प्रभावी विकल्पी है इनकी वंशागति 'सहप्रभावी' (Co–dominance) रूप से होती है।
4. इनमें सामान्य विकल्पी सदैव प्रबल होते हैं लेकिन उत्परिवर्ती बहुविकल्पी आपस में पूर्ण एवं अपूर्ण प्रभाविता प्रदर्शित करते हैं।
5. बहुविकल्पी स्वभाव से बहुरूपता को प्रदर्शित करते है। किसी जनसमूह में इन विकल्पियों से प्रदर्शित बहुरूपता अन्य आनुवंशिक लक्षणों की बहुरूपताओं से सर्वथा अधिक होती है।
6. सभी बहुविकल्पी बहुरूपता को प्रदर्शित करते है लेकिन समस्त आनुवंशिक बहुरूपतायें (Polymorphism) सदैव बहुविकल्पी की देन नहीं होती।

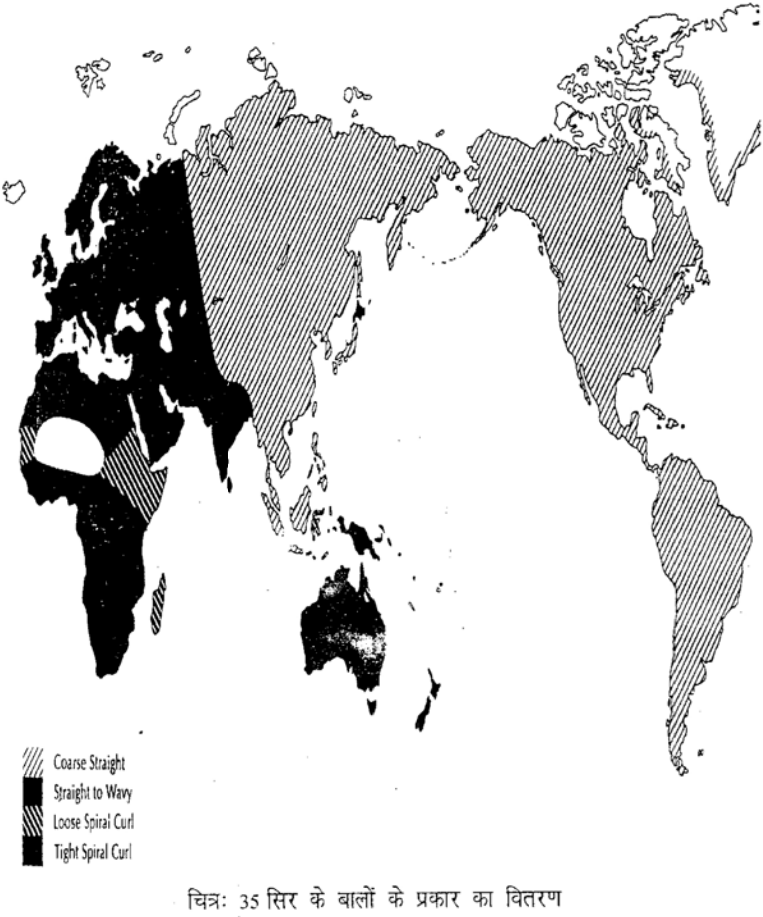
2. बहुलजीन (Polygenes)

मानव जनसंख्या में व्यावहारिक महत्व के अनेकों लक्षण होते हैं जिनसे एक जनसंख्या के व्यक्तियों के शारीरिक एवं आकारिक रचना का अनुमान किया जाता है, जैसे- शारीरिक कद, भार, शरीर की विभिन्न मानवमितिक मापें, मानवीक्षिक लक्षण (Somatoscopic Character) आदि। चूंकि इन लक्षणों को लम्बाई, भार, चौड़ाई, समय माप-इकाई व संख्या द्वारा प्रदर्शित किया जाता है, अतः इसी परिमाणात्मक अभिव्यक्ति के फलस्वरुप इन लक्षणों को मात्रात्मक लक्षण (Quantative Character) कहा जाता है। इनका 'सम्पूर्ण विश्व में वितरण' विविधतायुक्त है।



चित्रः 34 पुरुषों के औसत कद का वितरण

इन 'मात्रात्मक लक्षणों' या 'आकारिक लक्षणों (morphological characters) का नियंत्रण 'बहुजीन' (Polygenes) करते हैं। इन लक्षणों की वंशागति की सर्वप्रथम व्याख्या स्वीडन के आनुवंशिकविद निल्सन-इहले (Nilson–Ehle) ने किया। इनके अनुसार " बहुजीन उस श्रेणी के जीनों को कहते हैं जब किसी एक लक्षण की अभिव्यक्ति हेतु दो या दो से अधिक जीन स्वतंत्रतरूप से उत्तरदायी हों।" इन जीनों के प्रभाव संवर्धनशील (Additive) अवश्य होने चाहिए।



चित्रः 35 सिर के बालों के प्रकार का वितरण

ये जीन (बहुजीन) किसी लक्षण को एक निश्चित मात्रा तक प्रभावित करते हैं। किसी लक्षण विशेष पर जीनों का वास्तविक प्रभाव जीनों की मात्रा पर निर्भर करता हैं। अतः एक जीन का प्रभाव कम दो जीन का प्रभाव उससे अधिक, तीन जीनों का प्रभाव उससे भी अधिक होता है। इसीप्रकार जितनी जीनों की संख्या बढ़ेगी, उतना जीन प्रभाव बढ़ता जायेगा। उदारहरणस्वरूप मानव जनसंख्या में त्वचा का रंग बहुजीनों द्वारा नियन्त्रित होता है। यदि एक काले नीग्रों का विवाह किसी श्वेत कॉकेसॉयड स्त्री से हो तो संतान की त्वचा का रंग मध्यवर्ती होता है क्योंकि नीग्रों की त्वचा में रंजक तत्व सघन रूप में पाये जाते है जब कि श्वेत कॉकेसॉयड में विरल रूप से पाये जाते हैं। इन तत्वों का नियंन्त्रण, जीनों के द्वारा होने से इन दोनों माता-पिता की सन्ततियां मध्यवर्ती जीनों की मात्रा तथा उसके प्रभाव को प्रदर्शित करती हैं। इन लक्षणों की वंशागति मेण्डलीय पद्धति से भिन्न होती है। इन लक्षणों से जीन-प्रभाव उनकी माता पर आधरित होता है। दूसरे शब्दों में यदि यह मान लें कि नीग्रों की त्वंचा का गाढ़ा रंग जीनों के द्वारा नियंन्त्रित होता है जब कि कॉकेंसायड की त्वचा का श्वेत रंग दो जीन द्वारा नियन्त्रित होता है, तो नीग्रों की त्वचा का गाढ़ा रंग प्रभावी जीन तथा श्वेत रंग अप्रभावी जीन (कम जीन) के द्वारा नियंन्त्रित होंगे। माता-पिता के युग्मकों में आधे-आधे जीन पारगमित होने से सन्ततियों में मध्यवर्ती स्थिति उत्पन्न होती हैं।

❑❑❑

9

आनुवंशिक विविधता
(Genetic Variation)

मानव शरीर के बाहरी सतह (Surface) पर कुछ ऐसे भी लक्षण होते हैं जिन पर जन्मोपरान्त पर्यावरण का प्रभाव नहीं पड़ता। वे जन्मपर्यन्त तक परिवर्तनशील नहीं होते हैं। किन्हीं दो व्यक्तियों में वे तादात्म्य रूप से नहीं पाये जाते। ये प्रायः बहुलजीनों द्वारा नियंन्त्रित होते हैं लेकिन पूर्णरूप से आकारिक लक्षणों के समान अनुकरणशील (Adaptive) नही होते हैं। इनके कुछ लक्षण एक जीन द्वारा भी नियन्त्रित होते हैं। इसलिए इन लक्षणों को तो पूर्णरूप से आकारिक (Morphological) और आनुवंशिक (Genetic) लक्षणों की श्रेणी में नही रखा जा सकता। फलतः कुछ विद्वान इन्हें 'आकारानुवंशिक' (Morpho-genetic) लक्षण कहते हैं। ये निम्न हैं:

त्वचीय प्रारूप (Skin Pattern)

त्वचीय प्रारूपों के विज्ञान को **'डरमैटोग्लिफिक्स' (Dermatoglyphics)** कहते हैं। यह यूनानी भाषा के -डर्मा' (Derma) एवं 'ग्लिफ' (Glyphe) से बना हुआ है, जिसका शाब्दिक अर्थ होता है-त्वचीय (Skin) एवं प्रारूप (Pattern) । इनके अध्ययन को 'डरमैटोग्लिफिक्स' के नाम से सर्वप्रथम 1926 में कमिंन्स (Cummins) एवं मिड्लो (Midlo) ने पुकारा। इस क्षेत्र में फ्रांसिस गाल्टन (Francis Galton) के अथक प्रयासों से यह विज्ञान विकसित हो सका इसलिए उन्हें 'डरमैटोग्लिफिक्स का जनक' (Father of Dermatoglyphics) भी मानते हैं।

प्रायः हथेली, अंगुलियों एवं तलवों की सतह पर नियमित एवं धारदार रेखायें

(Ridges) पाई जाती हैं। ये अंगुलियों के पोरों पर हथेली एवं तलवों पर निश्चित प्रारूपों का निर्माण करती हैं। ये प्रारूप गर्भावस्था के तीसरे माह तक विकसित हो जाते हैं। इसके पश्चात ये जीवन पर्यन्त उसी प्रकार के बने रहते हैं। ये लक्षण मानव के अतिरिक्त प्राइमेटों अथवा उच्चस्तनीयों (Primates) में भी पाये जाते हैं। इनका प्रजातीय अध्ययन में विशेष महत्व है।

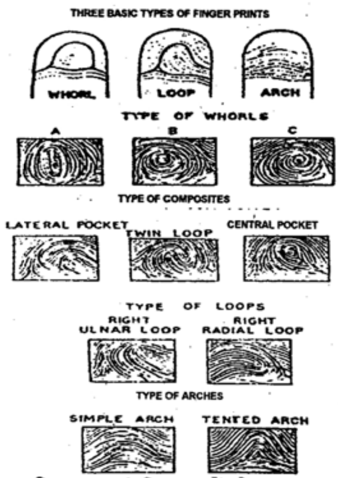
प्रजातीय अध्ययन में मुख्यतः अगलियों एवं हथेली पर पाये गये प्रारूपों का अध्ययन होता हैं इनमें निम्नलिखित मुख्य प्रवृत्तियां पायी गयी है:

अंगुलि डरमैटोग्लिफिक्स (Finger Dermatoglyphics)

अंगुलि के बाहरी भाग पर पाये जाने वाले प्रारूपों को सर्वप्रथम अध्ययन फ्रांसिस गाल्टन ने 1892 में किया। इन्होंने इन प्रारूपों की तीन भागों में बांटा।

1. चक्र (Whorl) 2. शंख (Loop) 3. चाप (Arch)

इन प्रारूपों की पहचान हेतु दो आधारभूत तत्वों (Basic elements), कोर (Core) एवं ट्राइरेडियस (triradius) को उत्तरदायी माना। प्रारूप के अन्तःक्षेत्र में पायी जाने वाली केन्द्रीय रचना को 'कोर' के नाम से पुकारा। इसका स्वरूप बिन्दु, रेखा, द्वीप, वृत्त, हुक आदि के समान होता है। प्रारूप के वाह्य क्षेत्र में 'ट्राइरेडियस'



चित्रः 36 अंगुलि प्रारूपों के प्रकार

पाया जाता है। यह तीन दिशाओं से आने वाली नियंत्रित रेखाओं या रेडियेंट्स (Radiants) से बनता है. जिसका शब्दिक अर्थ भी होता है तीन रेडियंटो का संगम क्षेत्र।

चक्र में बाहरी क्षेत्र की दोनों दिशाओं की ओर दो ट्राइरेडियस पाये जाते हैं। अन्तःभाग पर एक 'कोर' पाया जाता है। इन दोनों निश्चित बिन्दुओं के मध्य की सभी रेखायें (Ridges) चक्राकार अथवा वृत्ताकार होती है। शंख में बाहरी एक दिशा में एक ट्राइरेडियस पाया जाता है। इसके विपरीत दिशा की ओर 'कोर' स्थित होता है। यह कोर उन सभी मुड़ी रेखाओं से घिरा होता है जो ट्राइरेडियस के विपरीत दिशा की ओर खुलती हैं। चाप में सभी रेखायें प्रारूप के अन्तःक्षेत्र में लहर बनाती हुई बाहरी दिशा में निकल जाती हैं। इनमें कोर एवं ट्राइरेडियस अनुपस्थित होता है।

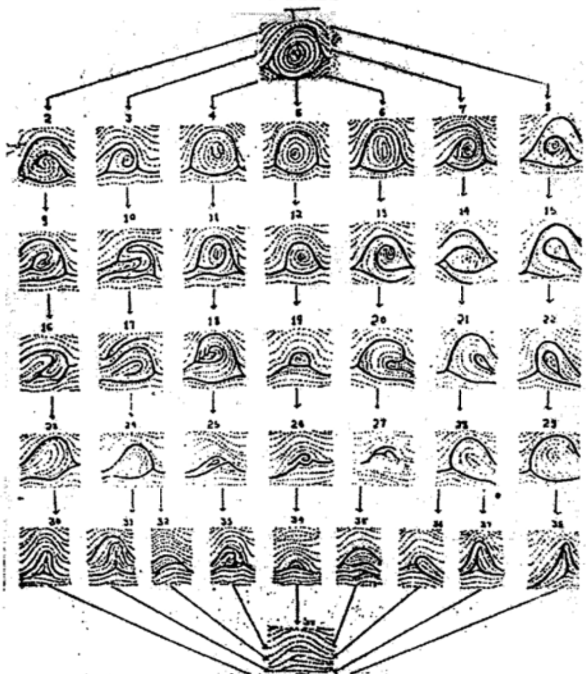
कालान्तर में सर हैनरी (1935) ने इन प्रारूपों को निम्नलिखित कुल 9 उपभागों में विभक्त किया ।

1. चक्र अथवा मूल चक्र (True whorl)
2. शंख (loop)
   (i) रेडियायी शंख (Radial loop)
   (ii) अल्नायी शंख (Ulnar loop)
3. चाप (Arch)
   (i) साधारण चाप (Simple Arch)
   (ii) तम्बू- आकार चाप (Tented Arch)
4. संयुक्त प्रारूप (Composite Pattern)
   (i) सेंट्रल पाकेट लूप (Central pocket loop)
   (ii) लैटरल पाकेट लूप (Lateral Pocket loop)
   (iii) यमज लूप (Twin loop)
   (iv) ऐक्सीडेंटल प्रारूप (Accidental Pattern)

उपरोक्त हैनरी वर्गीकरण में चक्रों को और अधिक सुपरिभाषित किया गया। वे प्रारूप जो इनके समकक्ष दो ट्राइरेडियस को रखते हैं, उन्हें पृथक कर दिया गया। शंखों को पुनः दो उपभागों में बांटा गया। वह शंख जिनके कोर को घेरती हुई रेखाए अग्रभुजा की रेडियस अस्थि की दिशा में खुलती हैं उन्हें **रेडियाई शंख** (Radial loop कहते हैं जब कि इसके विपरीत दिशा में अल्ना अस्थि की ओर इन रेखाओं के खुलने से **अल्नायी शंख** (Ulnar loop) का निर्माण होता है। चापों को भी पुनः दो उपभागों में बांटा। वे चाप जिनमें सामान्य रूप से प्रारूप के बाहरी क्षेत्र से रेखायें इसके अन्तःक्षेत्र में लहर बनाती हुई प्रवेश करें तथा कोर एवं ट्राइरेडियस अनुपस्थित हो, उन्हें **साधारण चाप** (Simple Arch) कहते हैं। **तम्बू आकार चाप**

(Tented Arch) वे हैं जिनमें रेखायें अन्तः क्षेत्र में तम्बू के समान मुड़ी हुई होती हैं। इनके केन्द्रीय भाग में जहां कोर पाया जाता है वहां ट्राइरेडियस स्थित होता है।

a Family Tree of Finger Pattern TYPES



चित्रः 37 अंगुलि प्रारूप प्रकारों में अन्तर्सम्बद्ध

हैनरी ने एक चौथे प्रकार का प्रारूप खोजा जो कम से कम दो प्रतिरूपों से संयुक्त होकर बनते हैं। ये संयुक्त प्रारूप पुनः चार उपवर्गों में बांटे गये हैं। एक **'सेंट्रल पाकेट लूप'** प्रारूप में दो ट्राइरेडियस तथा एक कोर होता है। एक दिशा की ओर का ट्राइरेडियस लगभग केन्द्रीय अथवा मध्य क्षेत्र में स्थित होता है। इस ओर के ट्राइरेडियस का बिन्दु एक बाहरी क्षेत्र से आने वाली रेखा (Radiant) से मिलता है जिससे यह प्रारूप एक रेखा से खुलता हुआ प्रतीत होता है। इस ट्राइरेडियस विपरीत दिशा के ट्राइरेडियस एवं कोर के मध्य की सभी रेखायें लगभग वृत्ताकार होती है। यह प्रारूप चक्र एवं शंख के संयुक्त होने से बनता है। दो, **'लैटरल पाकेट लूप'** दो शंखों के संयुक्त होने से निर्मित होता है। इसमें दोनों उच्च एवं निम्न दिशा

में स्थित होते है। उच्च शंख निम्न शंख पर आच्छादिता होता है। इसमें बक्रता (Curvature) निम्न शंख की अपेक्षा अधिक होती है। निम्न शंख प्रायः सीधा होता है। इसमें दोनों शंख एक ही दिशा में खुलते हैं। तीन, **'यमज लूप'** भी दो शंखों के संयुक्त होने से बनता है। दोनों शंख ताला एवं चावी की भाँति एक दूसरे में पिरोये होते हैं। ये दोनों शंख विपरीत दिशा में खुलते हैं। इनमें दोनों ट्राइरेडियस बाहरी क्षेत्र पर विपरीत दिशा में स्थित होते हैं। चार, **'ऐक्सीडेंटल प्रारूप'** भी दो या दो से अधिक किन्ही भी प्रारूपों से मिलकर बनते हैं। इनमें भी अन्य संयुक्त प्रारूपों की भांति दो कोर एवं दो ट्राइरेडियस विद्यमान होते हैं। इस प्रारूप की आवृत्ति मानवों में अत्यल्प होती है।

प्रारूप सूचकांक (Pattern Indices)

इन अंगुलि प्रारूपों की बारम्बारता एवं संरचना के आधार पर प्रमुखतः निम्न तीन सूचकांको का प्रजातीय अध्ययन में प्रयोग किया जाता है।

(i) प्रारूप गहनता सूचकांक (Pattern Intensity Index)

(ii) फरूहाटा सूचकांक (Furuhata's Index)

(iii) डैंकमाइजर सूचकांक (Dankmeijer's Index)

'प्रारूप गहनता सूचकांक' (Pattern Intensity Index) ट्राइरेडियसों (Triradii) की संख्या के आधार पर आंकी जाती है।इसमें एक व्यक्ति की अंगुलियों में स्थित सभी ट्राइरेडियस की गणना की जाती है क्योंकि किसी भी प्रारूप की गहनता उसमें पाये जाने वाले ट्राइरेडियस पर निर्भर करती है। इसका सूत्र निम्न है:

$$\frac{2\,(\text{चक्र}) + \text{शंख}}{\text{संख्या}\ (1)}$$

उक्त सूत्र के चक्रों में हैनरी वर्गीकरण के सभी संयुक्त प्रारूपों को भी सम्मिलित किया जाता है। चूंकि चक्रों में दो ट्राइरेडियस विद्यमान होते हैं इसलिए चक्रों की संख्या को दो से गुणा करते हैं तथा उसमें शंखों की संख्या को जोड़ देते हैं। यह सूचकांक एक व्यक्ति की अंगुलियों में पाये गये आंकड़ो पर आंकलित किया जाता है।

'फरुहाटा सूचकांक' (Furuhata's Index) में शंख एवं चक्र के समानुपात को आंका जाता है। यह समानुपात किसी जनसमूह में पाये जाने वाले कुल शंख/चक्र

की बारम्बारताओं के आधार पर निकाला जाता है। इस सूचकांक को फरुहाटा (1927) ने प्रस्तावित किया था, फलस्वरूप इसका नाम फरुहाटा सूचकांक पड़ा। इसका सूत्र निम्न है:

$$\frac{\text{चक्रो की संख्या}}{\text{शंखों की संख्या}} \times 100$$

डैंकमाइज़र सूचकांक (Dankmeijet's Index) चापों एवं चक्रों के समानुपात को कहते हैं। इसे डैंकमाइज़र ने 1938 में प्रस्तावित किया था। इसका सूत्र निम्न है:

$$\frac{\text{चापों की संख्या}}{\text{चक्रों की संख्या}} \times 100$$

डैंकमाइजर 1947 ने उक्त सूचकांक का उपयोग विश्व की प्रजातियों के अध्ययन में किया। इस सूचकांक की गणना मंगोलियन में 10 के नीचे, दक्षिणी यूरोपियाई में 10-20 के मध्य एवं, उत्तरी यूरोपियनों में 20-40 के मध्य पाया जाता है।

रेखा संगणन
(Ridge Counting)

अंगुलि प्रारूपों के आकार को मापने हेतु रेखासंगणन करना एक सरल विधि है। इसके लिये एस० बी० होल्ट (S. B. Holt) ने 1949 में एक मानक निर्धारित किया जो निम्नलिखित है:

(i) अंगुलि रेखासंगणन कोर एवं ट्राइरेडियस के मध्य की पाई जाने वाली रेखाओं का किया जाता है।

(ii) उन्हीं रेखाओं की संगणना की जाती है जो कोर एवं ट्राइरेडियस को मिलाने वाली ऋजु रेखा के आर-पार गुजरे।

(iii) उक्त ऋजु-रेखा को मात्र स्पर्श करने वाली रेखाओं की संगणना नही की जाती है।

(iv) कोर एवं ट्राइरेडियस को स्पर्श करने वाली रेखाओं को संगणना में सम्मिलित नहीं किया जाता है।

इस प्रकार की संगणना में चापों की अंगुलि रेखा सदैव शून्य होता है। लूप

या शंखों में एक संगणना होती है। चक्र एवं संयुक्त प्रारूपों में दो संगणनायें की जाती हैं। इन प्रारूणीय संगणनाओं के आधार पर वैयक्तिक संगणना ज्ञात की जाती है जिसमें एक व्यक्ति की सभी अंगुलियों की प्राप्त संगणनाओं का गुल योग निकाला जाता है। ज्ञातव्य हो कि चक्र में दो संगणनायें होती हैं इनमें से अधिक संगणना रखने वाले संगणन को उस प्रारूप का प्रतिनिधि संगणन (Representative Ridge Count) माना जाता है। कुल योग ज्ञात करने पर इसी संगणन का उपयोग किया जाता है। इस प्रकार की वैयक्तिक संगणना को **'पूर्ण अंगुलि रेखा संगणना'** (Total Finger Ridge Count) कहते है।

हथेली डरमैटोग्लिफिक्स
(Palmar Dermatoglyphics)

हथेली में मुख्यतः चार आकारिक दिशायें (Anatomical Directions) होती हैं। शरीर की ओर (भुजाओं की आरे) की दिशा को 'प्राक्सिमल दिशा (Proximal Direction), अंगुलियों की ओर की दिशा को 'डिस्टल दिशा' (Distal Direction), अंगूठे की ओर की दिशा को 'रेडियल दिशा' (Radial Direction), तथा कनिष्ठिका अथवा अल्ना अस्थि की दिशा को 'अल्नर दिशा' (Ulnar Direction), कहते हैं। सम्पूर्ण हथेली क्षेत्र को निम्न उप क्षेत्रों में विभक्त किया जाता है :

(i) थिनर क्षेत्र (Thenar Area) : अंगूठे एवं रेडियस अस्थि के बीच का उभरा क्षेत्र।

(ii) हाइपोथिनर क्षेत्र (Hypo Thenar Area) : अल्नर अस्थि एवं चतुर्थ अंगुलि (कनिष्ठका) के मध्य का उभरा क्षेत्र।

(iii) प्रथम अंगुलि क्षेत्र (I[st] Digital Area) : तर्जनी या प्रथम अंगुलि का आधार क्षेत्र।

(iv) द्वितीय अंगुलि क्षेत्र (II[nd] Digital Area) : मध्यमा या द्वितीय अंगुलि का आधार क्षेत्र।

(v) तृतीय अंगुलि क्षेत्र (III[rd] Digital Area) : अंगुष्ठिका या तृतीय अंगुलि का आधार क्षेत्र।

(vi) चतुर्थ अंगुलि क्षेत्र (IV[th] Digital Area) : कनिष्ठिका या चतुर्थ अंगुलि का आधार क्षेत्र।

(vii) प्रथम अंगुलि अन्तराल क्षेत्र (Ist Interdigital Area) : तर्जनी एवं अंगूठे का अन्तरा क्षेत्र।

(viii) द्वितीय अंगुलि अन्तराल क्षेत्र (IInd Interdigital Area) : मध्यमा एवं तर्जनी का अन्तराल।

(ix) तृतीय अंगुलि अन्तराल क्षेत्र (IIIrd Interdigital Area) : अंगुष्ठिका एवं मध्यमा का अन्तराल क्षेत्र।

(x) चतुर्थ अंगुलि अन्तराल क्षेत्र (IVth Interdigital Area) : कनिष्ठिका एवं अंगुलिका का अन्तराल क्षेत्र।

इन समस्त क्षेत्रों में पहले छः क्षेत्र उत्तल तथा अन्तिम चार क्षेत्र अवतल होते हैं। अंगुलि क्षेत्र (Digital area) को अंगुलि गद्दी (Digital Pad) भी कहते हैं, ये प्रायः उभरे होते हैं। इसी प्रकार अंगुलि अन्तराल क्षेत्र (Interdigital area) को गद्दी अन्तराल क्षेत्र (Interdigital Pad) भी कहते हैं। अंगुलि क्षेत्र अथवा गद्दी क्षेत्र (Interdigital Pad) पर ट्राइरेडियस पाये जाते हैं। ये ट्राइरेडियस द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ एवं पंचम अंगुलियों के आधार पर क्षेत्र पर क्रमशः प्रथम, द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ डिजिटल ट्राइरेडियस स्थित होते हैं जिन्हें 'a', 'b', c एवं 'd' अक्षरों से अभिहित करते हैं क्योंकि द्वितीय अंगुलि को A, तृतीय को B, चतुर्थ को C एवं पंचम को D अक्षर से नामकरण किया जाता है।



ANATOMICAL LANDMARKS IN PALM

चित्रः 38 A हथेली क्षेत्रों का वितरण



DERMATOGLYPHIL AREAS IN PALM

चित्रः 38 B हथेली क्षेत्रों का वितरण

ये अंगुलि ट्राइरेडियस तीन प्रकार रेडियेंट से निर्मित होते हैं : अल्नर (Ulnar), रेडियल (Radial) एवं प्राक्सिमल (Proximal)। इनमें प्राक्सिमल रेडियेंट सर्वाधिक लम्बा होता है। इसका आरम्भिक बिन्दु अन्य ट्राइरेडियस के आरम्भिक बिन्दु की अपेक्षा निम्नतम होता है। इसे हथेली की मुख्य रेखा (Palmar Main line) कहते हैं। हथेली के अंगुलि क्षेत्र से विकसित होने वाली ये मुख्य रेखायें क्रमशः A, B, C एवं D के नाम से जानी जाती हैं।

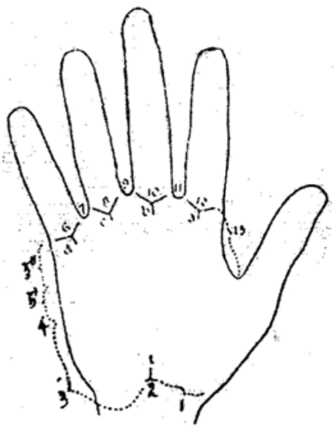
हथेली के प्राक्सिमल दिशा की ओर मणिवन्धो (Bracelets) के ऊपर ट्राइरेडियस स्थित होता है। यह हाइपोथिनर एवं थिनर क्षेत्र के मध्य हथेली के अक्षीय भाग पर पाया जाता है। इसे **'अक्षीय ट्राइरेडियस'** (Axial Triradius) कहते हैं। इसका 'डिस्टल रेडियेंट' सर्वाधिक लम्बा होता है जो हथेली की एक मुख्य रेखा का निर्माण करता है। इसे 'T' से सम्बोधित करते हैं। जब अक्षीय ट्राइरेडियस की स्थिति हथेली पर निम्नतम (lower) होती है तो t' से जब यह उच्चस्थिति (Higher Position) में होता है तो t" से एवं, जब इस ट्राइरेडियस की स्थिति मध्यवर्ती हो तो t' संकेताक्षरों से पुकारते हैं।

मुख्यरेखा सूत्र (Main Line Formula)

हथेली की इन मुख्य रेखाओं के आधार पर 'मुख्यरेखा सूत्र' (Main line formula) को ज्ञात किया जाता है इसे निम्न क्रम से लिखते हैं :

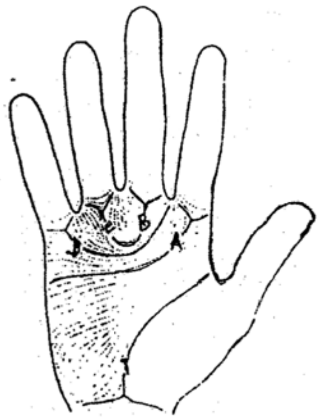
D. C. B. A. t.

उक्त सूत्र को ज्ञात करने के लिए हथेली के बाहरी, ऊपरी एवं निचली दिशा क्षेत्रों को 'मोडल अंक' (Modal Number) से आवंटित किये जाते है। जिस 'मोडल अंक' पर जो मुख्य रेखा समाप्त होती है तो उससे सम्बन्धित 'संकेत अंक' उक्त सूत्र में रख दी जाती है। ये 'मोडल अंक' अथवा संकेत संख्यायें 1 से लेकर 13 तक आबंटित की जाती हैं। 1 से 5 तक 'थिनर' एवं हाइपोथिनर क्षेत्रों के लिए तथा 6 से 13 तक अंगुलि एवं अंगुलिं अन्तराल क्षेत्रों हेतु आबंटित की जाती है। मुख्य रेखाओं का रेखांकन कमिंस एवं मिडलो (1961) द्वारा प्रतिपादित नियमों के अनुसार किया जाता है।



THE SCHEME OF NUMBERS FOR FORMULATING PALMAR MAIN LINES

चित्र: 39 A मुख्य रेखा सूत्र हेतु की गयी मोडल अंकन



IDENTIFICATION OF THE MAINLINES IN PALM

चित्र: 40 B मुख्य रेखाओं की पहचान

मुख्यरेखा सूचकांक (Main line Index)

मुख्य रेखा सूत्र में हथेली की सभी रेखाओं का उचित परीक्षण नहीं हो पाता है। इनमें वे रेखायें जो उदासीन (Neutral) होती है तथा अपने गंतब्य क्षेत्र तक नहीं पहुँच पाती है; उनका उल्लेख भी इस सूत्र में नहीं होता। हथेली की रेखायें किस दिशा की ओर अग्रसर होती है, इसका ज्ञान भी उक्त मुख्य रेखा सूत्र से नहीं होता। अतः इन सभी आवश्यक लक्षणों की सूचना के लिए मुख्य रेखा सूचकांक प्रजातीय अध्ययनों में अति महत्वपूर्ण है।

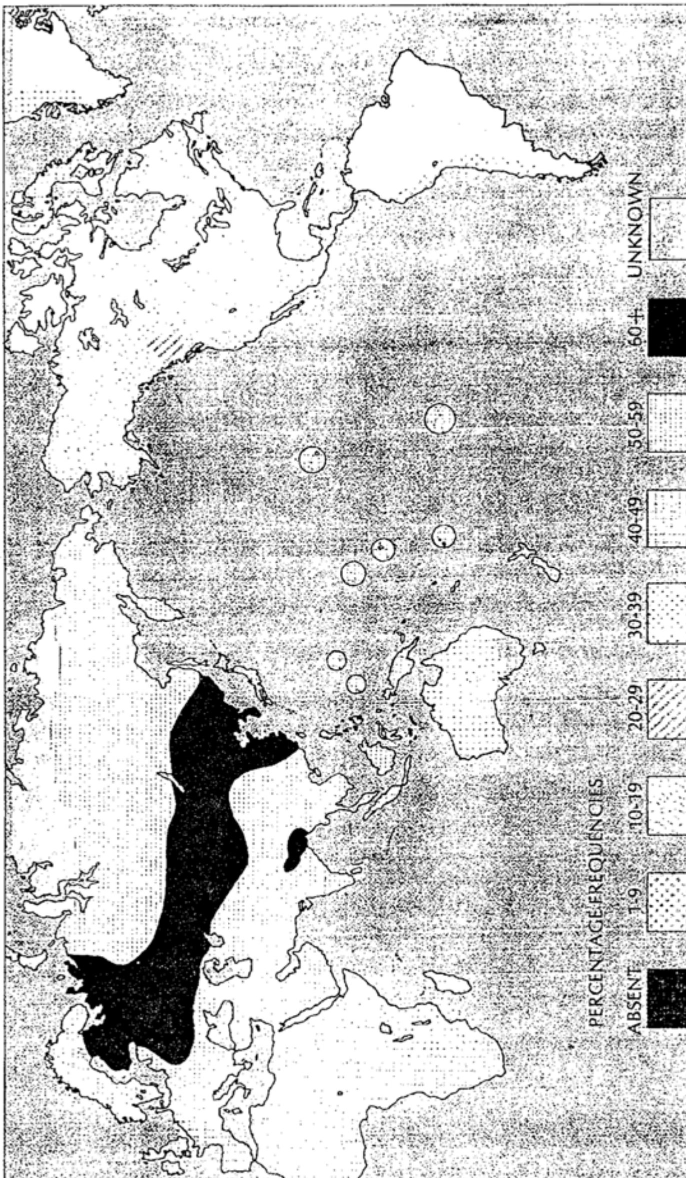
इस सूचकांक में A एवं D मुख्य रेखाओं के समाप्ति क्षेत्र अथवा तत्सम्बन्धित 'मोडल अंक' का योग ज्ञात किया जाता है। इसके लिए समस्त 'मोडल क्षेत्रो' को पुनर्संख्यांकित (Renumbered) करना पड़ता है। पूर्व किया गया मोडल संख्यांकन के 1 से 4 तक मोडल क्षेत्र संख्यायें पूर्ववत रहती है। 5' एवं 5" मोडल क्षेत्र क्रमशः 5 एवं 6 से पुनर्स्थापित किये जाते हैं जब कि 7 से 13 अंगुलि मोडल क्षेत्र संख्यायें परिवर्तित होकर के 1 से 8 हो जाती है। मुख्य रेखा सूचकांक में इन्हीं पुनर्संख्यांकित संकेतों का प्रयोग किया जाता है।

हथेली के उपरोक्त लक्षणों के अतिरिक्त हथेली के विभिन्न क्षेत्रों में पाये जाने वाले प्रारूपों का अध्ययन भी पाया जाता है। हथेली में चक्र शंख तथा तम्बू चाप पाया जाता है। इनकी रचना अंगुलियों के प्रारूपों से कुछ भिन्न होती है। इनमें अंगुलि की अपेक्षा एक-एक ट्राइरेडियम अधिक पाया जाता है। 'थिनर क्षेत्र' में खुले क्षेत्र (Open Field) एवं वेस्टीज (Vestige) पाये जाते हैं। चक्र, तम्बू, चाप तथा शंख प्रायः हाईपोथिनार क्षेत्र में देखे गये हैं शंख एवं खुले क्षेत्र प्रारूप अधिकांशतः अंगुलि अन्तक्षेत्रों पर पाये जाते हैं।

हथेली की रेखा संगणना (Ridge Counting) भी की जाती है। इनमें अंगुलि क्षेत्र के टाइरेडियस a एवं d के मध्य संगणनाये की जाती है। इन्हें क्रमशः a–b, b–c, c–d एवं a–d हथेली रेखा संगणना कहते है। इन संगणनाओं में a–b संगणना पूर्णतया वंशानुगत देखी गयी है। इसी प्रकार **atd कोण** का प्रयोग भी प्रजातीय अध्ययनों में किया जाता है। इसमें t को a तथा d ट्राइरेडियस से मिला दिया जाता है। यह कोण आयु से प्रभावित होता है।

ABO रुधिर वर्ग
(ABO Blood Group System)

आनुवंशिक लक्षणों में ABO रुधिर वर्गो का प्रमुख स्थान है। इसकी खोज 1900 में सर्वप्रथम लैण्ड स्टाइनर (Land Steiner) ने की। इन्होंने सर्वप्रथम केवल तीन वर्ग- A,B एवं O की खोज की। लेकिन दो वर्षो बाद चौथे रुधिर वर्ग AB की खोज, इन्होंने अपने विद्यार्थियों- डिकैस्टैलो (Decastallo) एवं स्टर्ली (Sterli) के साथ किया। ये चारों रुधिर वर्ग बहु युग्मों (multiple alleles) के द्वारा नियन्त्रित होते हैं। मुख्यतः इनकी वंशागति मेंडलीय सिद्धान्तों के अनुसार होती है। इनमें AB रुधिर वर्ग की वंशागति एक अपवाद है जो सहप्रभावी वंशागति (Codominant inheritance) का अनुसरण करती है।



चित्र: 41 विश्व में ABO संस्थिति (रुधिर वर्ग) की विषमयुग्मजता

इन चारों रुधिर वर्गों को लाल रक्त कणिका की म्यूकोपालीसैकराइड (Mucopolysaccride) सतह पर स्थित प्रतिजन एवं सीरम में स्थित प्रतिरोधात्मक गुणों (Immunological properties) के आधार पर पृथक किया जाता है। लाल रक्त कणिकाओं में दो प्रकार के प्रतिजन (Antigenes) A एव B तथा सीरम में दो प्राकृतिक प्रतिपिण्ड (Antibodies) – anti –A एवं anti–B होते हैं। प्रत्येक रुधिर वर्ग में इन्हीं दो रुधिर अभिकारकों का विशेष समूह होता है। यदि इनका विशेष संयोग टूट जाये तो प्रतिजन एवं प्रतिपिण्ड में परस्पर नकारात्मक प्रतिक्रिया आरम्भ हो जाती है। लाल रक्त कणिकाओं का पारस्परिक सम्बन्ध (Ionic Charges) टूट जाता है तथा ये कणिकायें विखरने लगती है जिससे इनके मध्य का समान बंध एवं दूरी भंग हो जाती है। इस प्रक्रिया को 'समूहीकरण' या एग्लूटिनेशन (Agglutination) कहते हैं। रुधिर वर्गों में प्रतिजन एवं प्रतिपिण्ड की उपस्थिति को निम्न तालिका में दर्शाया गया है:

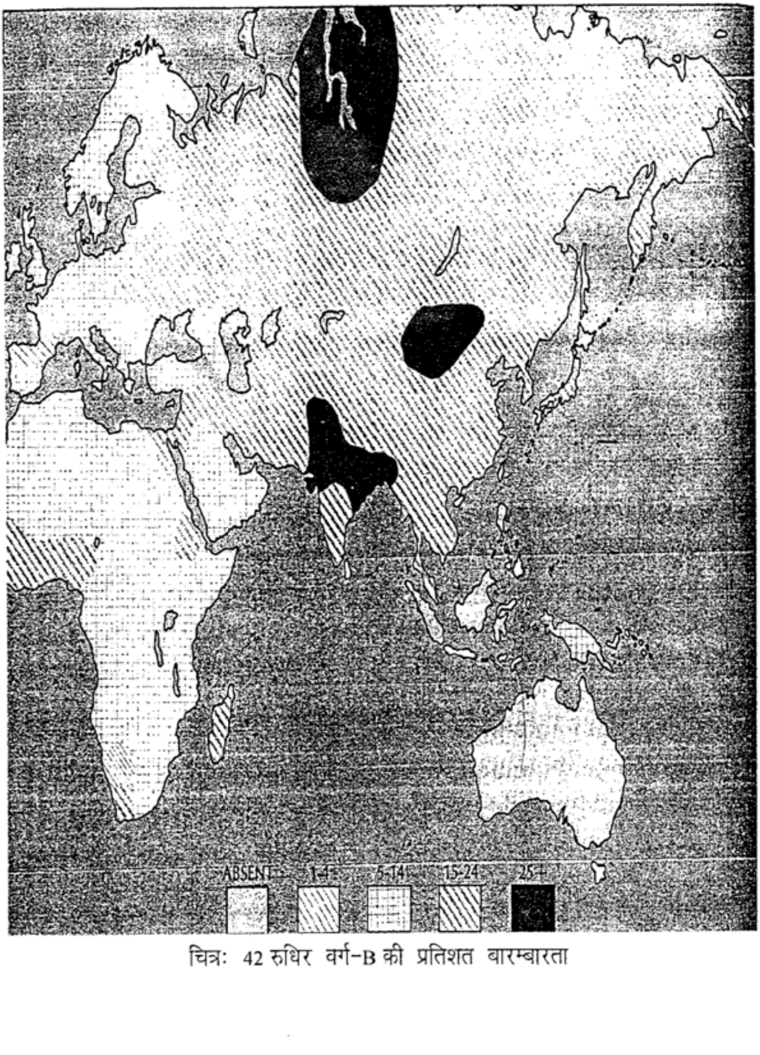
रुधिर(Blood group) वर्ग	प्रतिजन (antigen)	प्रतिपिण्ड (antibody)
A	A	anti–B
B	B	anti–A
AB	A एवं B	–
O	–	anti–A anti–B

उक्त रुधिर वर्गों में A वर्ग के उपसमूहों से खोज 1911 में वान डनगर्न (Von Dungern) तथा हर्सफील्ड (Herszfield) ने पहली बार किया। इन्होंने दो उपसमूह A_1 तथा A_2 बताये। वाइडेनरीच (Weidenreich) ने 1936 में इसका तीसरा उपसमूह A_3 खोजा। 1908 में इप्सटीन (Epstein) एवं आटेनवर्ग (Ottenberg) ने यह पाया कि ये सभी रुधिर वर्ग ($A_1A_2A_3BO$) वंशानुगत होते हैं। इनके वंशानुक्रम को विस्तृत रूप से बर्सटीन (Berstein) ने प्रस्तुत किया। इन्होंने 1930 में जीनी आवृत्तियों के आधार पर मानव समूहों को विभिन्न वर्गों में बांटा। इनके वंशानुक्रम को निम्न तालिका में दर्शाया गया है:

रुधिर वर्ग Blood group	व्यक्त स्वरूप Phenotype	जीनी प्ररूप Genotype	वंशागति प्रकार Inhertance type
A	A	IA IA A IO	प्रभावी (Dominant)
B	B	IB IB IB O	प्रभावी (Dominant
AB	AB	IA IB	सहप्रभावी (Codominant)
O	O	IO IO	अप्रभावी (Recessive)

सामान्यतया विश्व में इन रुधिरवर्गों में O जीन का वितरण सर्वाधिक (0.623) है। B जीन का वितरण न्यूनतम (0.162) है तथा A जीन मध्यवर्ती स्थिति (0.215) प्रदर्शित करता है।

अमेरिकन इंडियन में O जीन की प्रमुखता देखी गयी है। इस्कीमों में O जीन प्रमुख रूप से वितरित है। A–जीन प्रमुख रूप से यूरोप तथा एशिया में पाया जाता है। B जीन मंगोलायडो तथा A–जीन कॉकसॉयडो में प्रबल रूप में पाया जाता है।

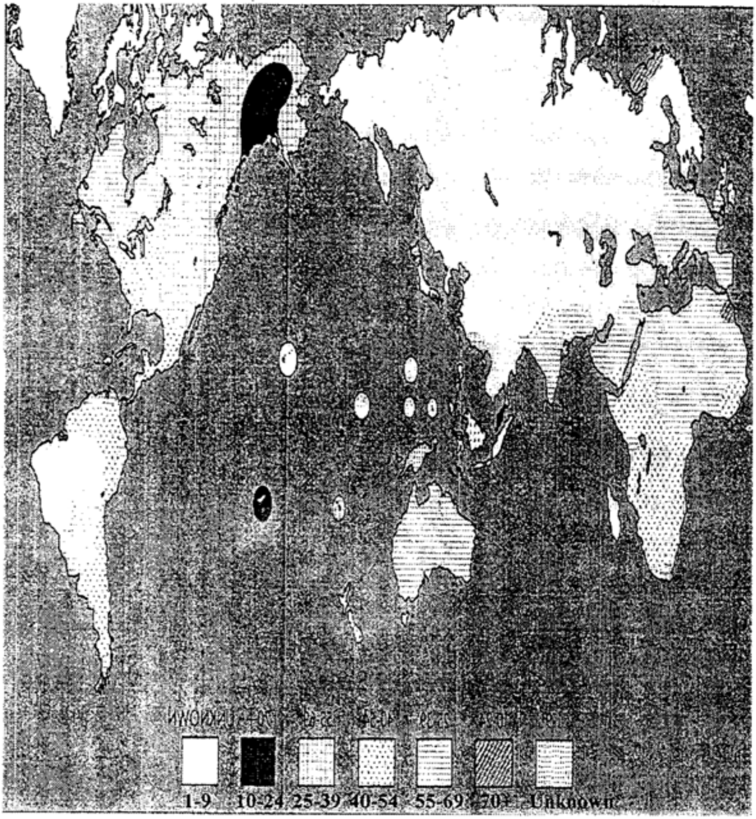


चित्र: 42 रुधिर वर्ग–B की प्रतिशत बारम्बारता

केन्द्रीय एशिया तथा उत्तरी भारत में B–जीन प्रमुख रूप से वितरित है। आस्ट्रेलियन आदिम जातियों में B–जीन लगभग अनुपस्थित है। प्रशान्त महासागर के पश्चिम उत्तर की ओर बढ़ने में A–जीन की बारम्बारता बढ़ती जाती है।

MNs रुधिर वर्ग (MNs Blood System)

1927 में लैंडस्टाइनर (Landsteiner) एव लेवीन (Levine) ने दो मानव प्रतिजनों– M एवं N की खोज की। ये प्रतिजन ABO रुधिर वर्ग के प्रतिजनों की भांति अपने साथ सीरम में प्राकृतिक प्रतिपिण्ड (Antibodies) नहीं रखते थे। अतः इनका रुधिर आधान (Blood Transfusion) में कोई विशेष महत्व नहीं रहता है।



चित्रः 43 Ms रुधिर वर्ग की प्रतिशत बारम्बारता

जब रुधिर में प्रतिजन M विद्यमान रहता है तो उस रुधिर को M वर्ग का तथा जब प्रतिजन- N उपस्थित रहता है, तो N वर्ग का होता है। उस समय जब रुधिर में दोनों प्रतिजन (अर्थात् प्रतिजन M एवं N) एक साथ विद्यमान होते है तो उसे MN वर्ग को माना जाता है। इनकी वंशागति मेंडलीय विधियों से होती है। जबकि MN वर्ग की वंशागति सहप्रभावी प्रकार की होती है जो मेंडलीय अवधारणा से कुछ भिन्न है।

आस्ट्रेलिया में M रुधिर वर्ग की बारम्बारता कम (20%) लेकिन संयुक्त राज्य अमेरिका में अधिक (90%) है। दक्षिण पूर्वी एशिया अरब आदि क्षेत्रों में भी इस रुधिर वर्ग की बहुलता पायी जाती है। यूरोपीय देशों में यह औसत रूप में (50%) है।

1947 में सैंगर (Sanger) एवं रेस (Race) ने इन रुधिर वर्गो में एक तीसरा प्रज़िजन (Antigen)–S की खोज की। यह M तथा N प्रतिजनों से भिन्न था। तीन व्यक्तियों के रुधिर में दो और प्रतिजन S तथा s देखा। इस प्रकार इन रुधिर वर्गो के कई समूह देखे गये: Ms Ms, Ns Ns, MsNs, MsNs। भारत में S की बारम्बारता सर्वाधिक (40%) देखी गयी जिसमें MS समूह प्रबल रूप में पाया गया। यूरोप में इसकी बारम्बारता 30–35% तथा पूर्वी एशिया में अल्पतम (5–20%) मिली।

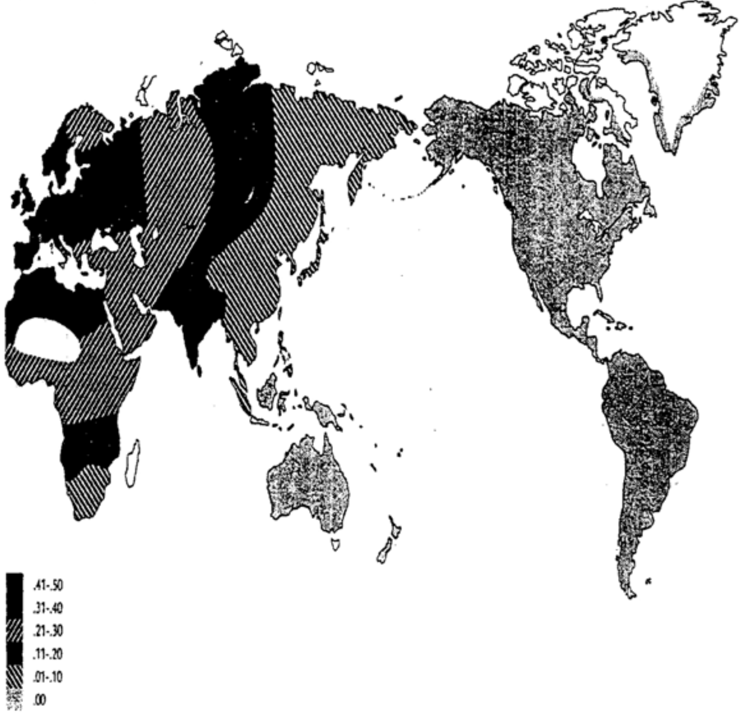
1961 में गार्न ने MNS रुधिर प्रणाली में एक नवीन युग्म- u (Allele) की उपस्थित को बताया जिसे S^{U} संकेताक्षर से सम्बोधित किया। यूरोप के लगभग सभी लोग u +Ve वर्ग के है। नीग्रो में लगभग 1% लोग u–Ve के पाये गये।

Rh रुधिर वर्ग
(Rh Blood System)

1940 में लैंडस्टाइनर (Landsteiner) एवं वीनर (Weiner) ने एक मानव में ऐसा रुधिर प्रकार देखा जो रहीसस बानर के रुधिर को खरगोश या गुयाना सुवर के अन्दर प्रविष्ट कराने से प्राप्त सीर से पहचाना जाता है। इसी आधार पर इस रुधिर वर्ग का नाम Rh रुधिर वर्ग रखा। आरम्भ में Rh +ve एवं Rh-ve रुधिर वर्गो की खोज हुई। यह विश्वास किया जाता है कि इस रुधिर वर्ग में केवल दो युग्म D/d ही पाये जाते हैं। इसके तीन ज़ीन प्रारूप DD, Dd एवं dd होते हैं जिनमें आरम्भिक दो का व्यक्त प्रारूप Rh+ve एवं शेष का Rh-ve होता है। लेकिन कालान्तार में फिशर (Fisher) ने 6 युग्मकों C,D, E, C, d, e, का मत प्रस्तुत किया। इनमें से तीन युग्मक एक ही गुणसूत्र (Chromosome) पर स्थिर होते हैं। इन 6 युग्मकों से निम्न 8 जीन प्रारूपों का उल्लेख किया गया:

(i) C D E
(ii) C D E
(iii) c D E
(iv) c D e
(v) C d e
(vi) C d E
(vii) c d E
(viii) c d e

उक्त जीनी प्ररूपों में प्रथम चार Rh+ ve एवं शेष चार Rh-ve व्यक्त प्ररूप में सम्मिलित किये जाते हैं। इनको पहचानने हेतु मौलिक anti-Rh सीरम anti-D ही है। यद्यपि 6 युग्मको की पहचान हेतु पांच सीरमों– anti-D, - C,-E, - c, -e की खोज तो गयी है, लेकिन सीरम anti-D के अतिरिक्त अन्य सीरमों की उपलब्धता अत्यल्प है।

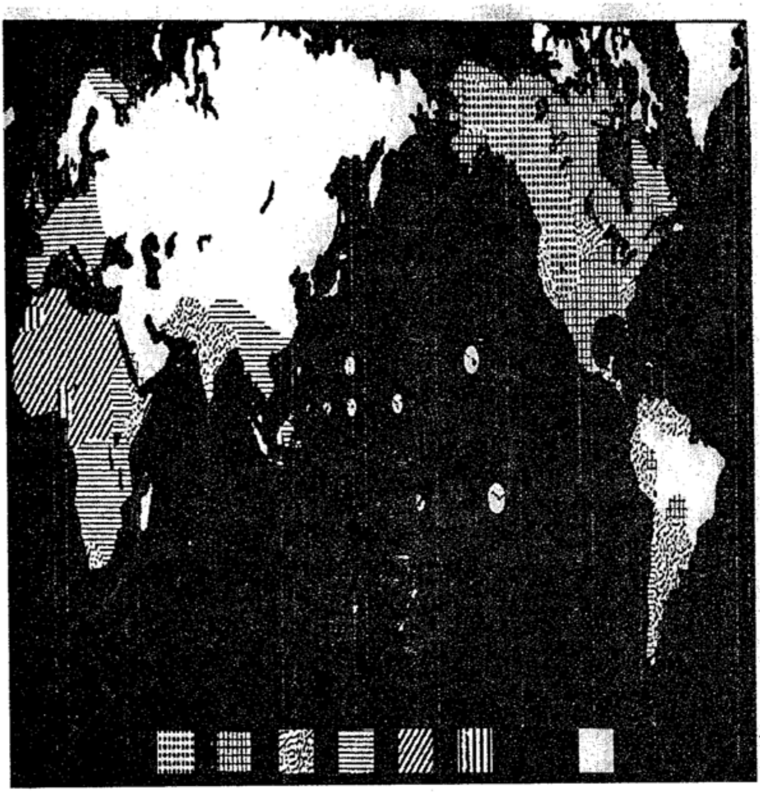


चित्रः 44 Rh–ve (cde) बारम्बारता का वितरण

वीनर (Weiner) उक्त सहलग्न जीन मत को नहीं स्वीकारते और उस मत का प्रतिपादन करते हैं जिसमें युग्मको की श्रृंखला एक ही संस्थिति (locus) पर जटिल प्रभावों से नियन्त्रित होते हैं। इनके अनुसार ये 8 युग्मक इस प्रकार है: RZ, R1, R2, R0, r, r^1, r, एवं ry।

लैण्डस्टाइनर (Landsteiner) एवं वीनर (Weiner) ने 1940 में पुनः एक और प्रणाली (L W system जिसका नामकरण इन विद्वानों के नाम पर किया) का पता लगाया जो Rh रुधिर प्रणाली से सम्बद्ध है।

Rh रुधिर वर्ग A B O रुधिर वर्ग के समान एक विशिष्ट प्रतिजन हेतु प्राकृतिक प्रतिपिण्ड नहीं रखता। अतः Rh- व्यक्ति का रुधिर यदि Rh+ में चढ़ाया जाय तो वह रुधिर प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। ऐसी स्थिति में रुधिर प्लाविका में प्रतिरोधात्मक प्रतिक्रिया आरम्भ हो जाती है। यदि पुनः Rh+ रुधिर उस व्यक्ति को दिया जाय तो तेजी से रुधिर कणिकायें उत्पन्न प्रतिपिण्डों के द्वारा नष्ट कर दी जाती हैं। यही घटना उस समय भी घटित होती है जब Rh- मां अपने Rh+ गर्भ के प्रति संवेदित हो जाती है। गर्भ के भ्रूण की रुधिर कोशिकायें उस समय फट जाती है जब वे अपरा (Placenta) के द्वारा मां की रुधिर प्रवाह में प्रवेश करती हैं। मां के रुधिर में प्रतिपिण्ड सामान्यतया इस प्रकार विकसित नहीं होते जिससे कि गर्भ के भ्रूण को अत्यन्त खतरा हो लेकिन मां यदि दो या तीन गर्भों को धारण कर ले, तो यह भी सम्भव है। प्रायः लगातार दूसरे एवं तीसरे गर्भधारण के दौरान, जो मां के रुधिर में प्रतिपिण्ड उत्पन्न हो जाते हैं, भ्रूण के रुधिर प्रवाह में प्रवेश करके भ्रूण की रुधिर कोशिकाओं को नष्ट करती है जिससे भ्रूण नष्ट भी हो सकता है इस विसंगति को **'इरिथ्रोब्लास्टॉसिस फीटैलिस'** (Erythroblastosis Foetalis) कहते हैं। इस स्थिति में बच्चे के जीवन हेतु अनेको रुधिर आधान की आवश्यकता होती है इससे मां को Rh प्रतिपिण्ड वाला सीरम प्राप्त हो जाता है जिससे मां के रुधिर में प्रतिरोधी प्रतिक्रिया करने वाला Rh प्रतिपिण्ड उत्पन्न नही हो पाता है और गर्भ के भ्रूण को बचाया जा सकता है।



चित्रः 45 रुधिर वर्ग R^2 प्रतिशत बारम्बारता का वितरण

Rh-ve की बारम्बारता Rh+ से बहुत कम होती है। मंगोलॉयड में यह सर्वाधिक कम (0.5-1.5%), कॉकेसॉयड में 15% तक तथा नीग्रो में 5.8% तक इसकी बारम्बारता पायी गयी है।

'डफी' रुधिर
(Duffy System)

'डफी' रुधिर वर्ग की खोज 1950 में कटवश (Kutbush), मालीसन (Mallison) तथा पारकिन (Parkin) ने की। इस रुधिर वर्ग हेतु दो युग्मक- Fya तथा Fyb उत्तरदायी होते है जो क्रमशः डफी +एवं डफी- व्यक्त प्ररूप का नियन्त्रण करते हैं।

इनमें Fya दूसरे युग्मक- Fyb पर प्रभावी होता है। इनसे उत्पन्न निम्न तीन जीनी प्ररूप देखे गये हैं।

(i) Fya / Fya डफी $^+$
(ii) Fya / Fyb
(iii) Fyb / Fyb डफी $^-$

इंग्लैंड में उफी $^+$ 65% लोगों में पाया जाता है। भारत तथा पाकिस्तान में भी Fya की बारम्बारता अधिक है। इसकी सबसे कम बारम्बारता अमेरिका जनसंख्याओं में देखी गयी है।

'डीगों' रुधिरवर्ग
(Diego System)

इसकी खोज 1955 में लेरिसी (Layrisse), ऐरिन्डस (Arends) तथा डोमिनगूज (Dominguez) ने की। दो युग्मक-Dia एवं Dib क्रमशः दो रुधिर वर्ग डीगो $^+$ एवं डीगो $^-$ का नियन्त्रण करते हैं। Dia एलील प्रभावी होता है तथा इसमें डीगो प्रतिजन (=Ve वर्ग) के लिए उत्तरदायी होता है।

अनुसंधानों से यह पता चला है कि डीगो + एशियायी प्रजातियाँ हैं। नई दुनिया के लोग इन्हीं लोगों से उत्पन्न हुए हैं। इसकी खोज से ऐसा माना जाता है कि मंगोलायड की उत्पत्ति अपेक्षाकृत अधिक प्राचीन नहीं है जिससे डीगो $^+$ इसकी एक अनूठी विशेषज्ञता है। डीगो$^+$ (Dia) यूरोपिक, अफ्रीकन, आस्ट्रेलियन,माइक्रोनेशियन, पालीनेशियन तथा इस्कीमों में अनुपस्थित पाया गया है।

'किड' रुधिर वर्ग ('Kidd' System)

दो युग्मक JK^a (प्रभावी) तथा JK^b (अप्रभावी) दो रुधिर वर्गों-Kidd$^+$ एवं Kidd$^-$ के लिए उत्तरदायी होते हैं। यह पश्चिमी अफ्रीका एवं अमरीकी लोगों में सामान्यतया पाया जाता है। चीन के जनसंख्या में इसकी बारम्बारता बहुत कम हैं। इसकी खोज 1951 में 'ऐलन (Allen), डाइमंड (Diamind) एवं नाइडाजला (Niedziela) ने की।

अन्य रुधिर वर्ग
(Other Blood Group's Systems)

उपरोक्त रुधिर वर्गो के अतिरिक्त अन्य रूधिर वर्ग जैसे-पी (P), लूथन

(Luthen), केल (Kell), लेविस (Lewis), वाई टी (yt), ए यू (A u), एक्स जी (Xg), डामब्रोक (Dombrok) एवं बाम्बे (Bombay) जी एक्स (Gx) आदि खोजे गये हें जिनकी वंशागति सामान्य मेंडलीय अवधारणा के अनुसार होती है। लेकिन इन रुधिर वर्गो का अध्ययन विश्व की प्रजातियों पर विरले ही हुआ है। इन रुधिर वर्गो का प्रयोग प्रजातीय अध्ययन में अब तेजी से हो रहा है।

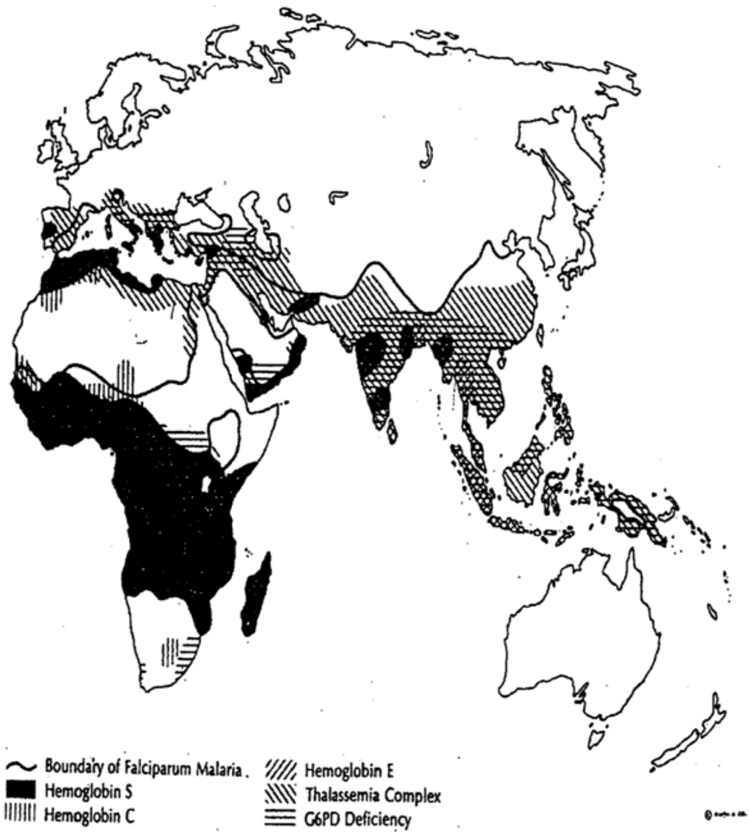
'एच एल-ए' प्रणाली
(HL-A System)

मानव लूकोसाइट प्रतिजन (Human Leucocyte Antigen) का संक्षेप में एच एल-ए (HL-A) कहते हैं। यह प्रायः मानव के सभी अंगों की सतह पर उपस्थित होता है। यह अधिरोपणों (Graft) की अस्वीकृत के लिए विशेष रूप से उत्तरदायी होता है। गुणसूत्र-6 की छोटी भुजा (arm) की निकटस्थ एवं सहलग्न संस्थितियों-A, B, C, D, तथा Dr पर ये प्रतिजन उपस्थित होते हैं। इन संस्थियों पर क्रमशः 19, 27, 7, 11, एवं 7 युग्मको को तीन वर्गो में सम्मिलित किया गया है। एक वह वर्ग जो लगभग सभी जन संख्याओं में बहुलता से पाया जाता है उसे A_2 वर्ग के नाम से जानते हैं। दूसरा वह जो सभी जनसमूहों में तो उपस्थित होता है लेकिन अफ्रीकी लोगों में अधिक होता है, उसे A, वर्ग के नाम से जाना जाता है। तीसरा Bw 42 वर्ग जो कुछ जनसमूहों में ही पाया जाता है।

हीमोग्लोबिन
(Haemoglobin)

यह लाल रुधिर कणिकाओं का रंजक होता है जिसके कारण इन कोशिकाओं का रंग लाल होता है। यह रंजक आक्सीजन को मानव के फेफड़े (Lungs) से ऊतकों (Tissues) तक पंहुचाने में मार्मिक भूमिका अदा करता है। यह मूलभूत प्रोटीन, एवं ग्लोबिन से बना हुआ होता है जो "हीम" (Haem) से सहलग्न होती है। इनका आणविक भार 65,500 होता है। ये 'हीम' के चार समूह रखता है जिससे इसके एक अणु (molecule) में चार लौह परमाणु (atom) होते हैं। आक्सीजन के एक अणु को आकर्षित करने की अपार क्षमता 'हीमोग्लोबिन के प्रत्येक लौह परमाणुओं में होती है। इस परमाणु से आक्सी हीमोग्लोबिन' (Oxyhaenoglobin) बनता है। इसका रंग चमकीला लाल होता है। जिस प्रकार आक्सीजन के अणुओं

के यह लौह परमाणु फेफड़े में उत्कर्षित करते हैं, उसी प्रकार यह ऊतकों में इन अणुओं को छोड़ते भी है। यह आक्सीजन के 'आंशिक दबाव' (Partial pressure) पर निर्भर करता है क्योंकि यह दबाव फेफड़े में अधिकतम तथा ऊतकों में न्यूनतम होता है। यह कार्य pH पर भी निर्भर करता है क्योंकि जब pH निम्न होता है अर्थात् अम्लीय (Acidic) होता है तो आक्सीजन को आकर्षित रखे रहने की लौह परमाणुओं की क्षमता घट जाती है जिससे आक्सीजन का अणु इन परमाणुओं से छूट जाता है तथा कार्वन डाइआक्साइड का अणु इन परमाणुओं से सहलग्न हो जाता है। इन परमाणुओं की इस निर्भरता को 'बोर प्रभाव' (Bohr Effect) कहते हैं।



चित्रः 46 मलेरिया रोग का अन्य आनुवंशिक विकृतियों से सम्बन्ध एवं वितरण

इस प्रकार हीमोग्लोबिन चार प्रोटीन की श्रृंखलाओं- a, a, B, B, से बना हुआ होता है। प्रत्येक श्रृंखला एक 'हीम समूह' रखती है। a श्रृंखला में 'जीन a ग्लोबिन' 16 वें गुणसूत्र पर होता है तथा श्रृंखला में 11 वें गुणसूत्र पर 'जीन β ग्लोबिन' उपस्थित होता है। a एवं β दोनों श्रृंखलायें क्रमशः 141 एवं 146 'अमीनोअम्ल' (Amino acid) रखती है। भ्रूण एवं प्रौढ़ व्यक्ति का हीमोग्लोबिन हल्की रासायनिक भिन्नता रखता है। प्रौढ़ हीमोग्लोबिन चार श्रृंखलाओं- a, a, β, β वाला होता है इसे 'हीमोग्लोबिन-A' कहते है। लगभग दो प्रतिशत (2%) प्रौढ़ हीमोग्लोबिन में भिन्न श्रृंखलायें- a, a, δ, δ होती हैं इसे 'हीमोग्लोबिन- A2' कहते हैं। भ्रूण हीमोग्लोबिन a, a, y, y, श्रृंखलायें रखता है जो β-श्रृंखला से 39 स्थितियों (Posisons) में भिन्न होती है। यह सभी सामान्य हीमोग्लोबिन होते हैं जो क्रमशः 16वें एवं 11वें गुणसूत्र पर पाये जाते हैं।

आज तक लगभग 100 से अधिक हीमोग्लोबिन विभेदक (Variant) देखे गये हैं (लगभग 70 a श्रृंखला वाले एवं 35 β श्रृंखला वाले) लेकिन इनमें कुछ 'बहुआकारी' (Poymorphic) स्वभाव को प्रदर्शित करते हैं जैसे- Hbs, Hbc, HbE, HbD पंजाब (β श्रृंखला से सम्बन्धित) एवं 'Hbj टोंगारिकी' (a श्रृंखला वाले) आदि।

Hbs: यह उत्परिवर्तन के फलस्वरूप उत्पन्न हुआ है जिससे दोनों β श्रृंखलाओं के 6ठे स्थान पर 'ग्लूटामिक अम्ल' का 'वेलाइन' के द्वारा प्रतिस्थापन हो जाता है। यह विभेदक अफ्रीकी लोगों में विशेष रूप से पाया जाता है। इससे व्यक्ति की गलेरिया रोग के प्रति प्रतिरोधी क्षमता बढ़ जाती है। यह लक्षण दक्षिणी भारत में देखा गया है। इसे 'हसियाकार कोशिका लक्षण' (Sickle cell- Trait) भी कहते हैं। जब दोनों युग्म रुधिर कोशिकाओं में हंसिकार हो जाते हैं तो वह लक्षण न रह करके एक खतरनाक रोग का रूप धारण कर लेता है इसे 'सिक्लीमिया' (Sicklaemia) कहते हैं।

Hbc : इसमें β श्रृंखला के 6ठवें स्थान पर 'लीसाइन' (Lysine) का स्थान ग्लूटामाइन अम्ल ले लेता है। यह विभोदक 'इलेक्ट्रोफोरेसिस' (Electrophoreses) की क्रिया करने से Hbs की अपेक्षा अत्यन्त धीमी गति से अपना 'बंध' या चिन्ह Band) संचालित हो करके प्रदर्शित करता है। सम युग्मजी Hbc (Hbc/ Hbc) वाला व्यक्ति हल्का 'एनीमिया रोग' (Anaemia) को रखता है जब कि विषमयुग्मजी Hbc (Hbc/ Hbc) सामान्य होता है। Hbc लक्षण 'सिक्लीमियां' से कम खतरनाक है।

Hb-D : हीमोग्लोबिन D एवं हीमोग्लोबिन-S में 'इलेक्ट्रोफोरसिस प्रयोग' से भेद स्थापित नही हो पाता। लेकिन इससे लाल रुधिर कोशिकायें हसियांकार नहीं होती। इसमें β श्रंखला के 121वें स्थान का ग्लूटामिक अम्ल ग्लिस (Glyc) से प्रतिस्थापित हो जाता है। यह पंजाबी सिखों एवं गुजरातियों में अधिकतम (1.5%) देखा गया है। इस हीमोग्लोबिन के उपविभेदक विश्व की अन्य जनसंख्याओं जैसे-इबादन (Hb-D Ibodan), बुशमैन (Hb-D Bushman), बाल्टीमोर (Hb-D Baltimore) में अभी जल्दी ही पाये गये हैं।

Hb-E: दक्षिणी पूर्वी एशिया में हीमोग्लोबिन E प्रकार पाया गया। यह लक्षण B श्रृंखला के 26 वें स्थान पर पाया जाने वाला ग्लूटामिक अम्ल लाइसिन (Lysine) से प्रतिस्थापित होने के पश्चात् बना है।

थैलासीमिया
(Thalassaemia)

मानव विकास के दौरान हीमोग्लोबिन की श्रखलायें भ्रूणावस्था से युवावस्था तक बदलती रहती हैं। सामान्य प्रौढ़ हीमोग्लोबिन प्रकार (Hb-A) में दो a श्रंखलायें एवं दो β श्रंखलायें होती है। थैलासीमिया लक्षण तब देखा जाता है जब 'a' अथवा β श्रंखला के संलेषण में विसंगति हो जाती है। a श्रंखला के विसंगति को a थैलासीमिया तथा β श्रंखला की इस विसंगति को β थैलासीमिया कहते हैं।

β-थैलासीमिया दो प्रकार की होती है: मेजर (Major) एवं माइनर (Minor) पहला लक्षण समयुग्मजी स्थिति (जब दोनो β श्रंखलाओं में संश्लेषणात्मक विसंगति पायी जाय) में प्रकट होता है तथा दूसरा लक्षण विषमयुग्मजी स्थित को कहा जाता है। α श्रंखला की विसंगति (α थैलासीमिया) में लाल रुधिर कोशिकाओं की बाहरी परत (Membrane) फट जाती है जिससे एनीमिया रोग उत्पन्न हो जाता है। इसे कूले एनीमिया (Cooley's anaemia) भी कहते है। यह दोनों प्रकार के थैलेसीमिया लक्षण मुख्यतः विषुवतरेखीय प्रदेशों, जैसे-अफ्रीकी महाद्वीप के कुछ भाग, दक्षिणी अमेरिका के कुछ भाग, भारत, दक्षिणी पूर्वी एशिया, न्यूगिनी, प्रशान्त महासागरीय द्वीप समूह में देखा गया है।



चित्र: 47 थैलासीमिया काम्पलेक्स की बारम्बारता वितरण

ग्लूकोज-6- फास्फेट डिहाइड्रोजिनेज (G-6 PD)
(Glucose-6-Phosphat Dehydrogenase)

इस लक्षण को संक्षेप में 'जी-6. पीडी' (G-6PD) कहते हैं। यह लाल रक्त कोशिकाओं में पाया जाता है। जब लाल रक्त कोशिका की बाहरी सतह को तोड़ा जाय तो हीमोग्लोबिन के साथ लगभग प्रोटीन का 5% भाग विशेष कार्य करने वाले एंजाइमो या उत्प्रेरकों (Enzymes) का होता है। इनमें एंजाइमों में से एक 'जी-6.पीडी' (G-6 PD) होता है।

इन एन्जाइमों का प्रायः कार्य जब एक जैसा होता है लेकिन वे रचना में भिन्न होते हैं तो इन्हें- 'आइसोएन्जाइम' (Isoenzyme) या 'आइसोजाइम (Isozyme) कहते हैं। 'जी-6.पीडी' (G-6PD) एक प्रकार का 'आइसोजाइम' है। यह आइसोजाइम ग्लूकोज-6 फास्फेट को 6- फास्फोग्लूकोनेट में परिवर्तित करता हुआ अन्ततः पेटोज-6 फास्फेट के रूप में बन जाता है :

G6P ⟶ 6-फास्फोग्लूकोनेट ⟶ पेंटोज 5- फास्फेट

कुछ लोगों में यह एंजाइम नहीं पाया जाता जिससे लाल रुधिर कोशिका नष्ट हो जाती है। G-6PD की क्षीणता से उत्पन्न रोग की खोज इस समय हुई जब अफ्रीकी एवं एशियायी मूल के कुछ अमेरिकाई लोगों का उपचार मलेरिया को रोकने वाली औषधि- प्राइमाक्वीन (Primaqueen) से किया गया। इस उपचार से इन लोगों के रुधिर में लाल कणिकायें मंद गति से फटने लगी। अध्ययनों से ज्ञात हुआ कि इन लोगों में G-6PD क्षीणता थी। यह अनुमानित किया गया है कि इन लोगों में G-6PD अत्यन्त निम्न मात्रा में विद्यमान है इसके फलस्वरूप हीमोलिसिस या रूधिर सलयता मंद गति से आरम्भ हो गयी थी। इस अवस्था का 'फाविज्म' या 'विसिया फावा' (Favism or Vicia Fava) भी कहते हैं।

G-6PD क्षीणता एक X- सहलग्न लक्षण के रूप में वंशागत होता है। यह अपूर्णरूप से प्रबल वंशागति का अनुसरण करता है। वे स्त्रियां जो कि इस लक्षण के लिए स्पष्ट रूप से समयुग्मजी होती है। उनमें क्षीणता उतनी ही होती है जितनी कि पुरूषों में होती है। इस क्षीणता का वितरण 'फैल्सीपेरम मलेरिया' के साथ साथ देखा गया है। यह क्षीणता अफ्रीका के विषुवत रेखीय देशों, भूमध्यसागरीय ऐशियायी देश, भारत, वर्मा, थाइलैण्ड, जावा वोर्नियो, सुमात्रा, इण्डोनेशिया, मलेशिया

मलेशिया तथा प्रशान्त महासागरीय प्रदेशों में देखी गयी है। दक्षिणी चीन के 5% लोगों में भी वह क्षीणता पायी जाती है।

इस एंजाइम की बहुरूपता का अनुमान इलेक्ट्रोफोरेसिस प्रयोग विधि से इसके संचलन की दर के आधार पर किया गया है। इसके सामान्य रूप को [Gd(B+)] कहते हैं। इसके अन्य रूप [Gd(B-)] [Gd (A+)] एवं [Gd (A-)] है। BC-) रूप भारत देशों में ग्रीस, भूमध्यसागरीय लगभग 20%] यहूदियों में 50-60% पाया जाता है। A(+) तथा (A-) रूप संचलन की मंथर दर को प्रदर्शित करता है। यह 20% अफ्रीकी लोगों में पाया गया है।

अम्लीय फास्फटेज एवं फास्फोग्लूमुटेज
(Acid Phosphtase and Phosphoglumutase)

लाल रक्त कोशिका अम्ल फारफटेज तीन भिन्न आणविक स्वरूपों में पाया जाता है। प्रत्येक स्वरूप .एक अप्रभावशाली अलिंगसूत्री युग्म विकल्पी से नियन्त्रित होता है। इस एंजाइम के विविध स्वरूप विद्युत परिपथ (Electric Field) पर स्टार्च जेल के माध्यम से प्राप्त किये जाते हैं। यह एंजाइम कार्वन यौगिको से फास्फेट समूहों के निष्कासन को उत्प्रेरित करता है।

फास्फोग्लूकोम्यूटेज (PGM) रुधिर संलयित लाल रक्त कणिकाओं पर स्टार्च जेल इलेक्ट्रोफोरेसिस की क्रिया करके सरलता से पहचाना जा सकता है। यह ग्लूकोज के साथ पाये जाने वाले कार्बन पर एक फास्फेट समूह के स्थान्तरण की क्रिया को प्रेरित करता है। इसकी तीन पट्टिया- PGM1, PGM2-1, एवं PGM2 का मानव समूहों में भिन्न-भिन्न वितरण पाया गया है।

सीरम प्रोटीन
(Serum Protein)

प्रजातीय अध्ययन में सीरम प्रोटीनों का उपयोग एक नवीन विधि है। इसमें रुधिर सीरम से प्राप्त अनेकों प्रोटीन विशेषकों जैसे-हैप्टोग्लोबिन, ट्रांसफोरिन, अल्ब्यूमिन, समूह विशेषक तत्व, इम्यूनोग्लोबिन आदि का प्रयोग जनसंख्या अध ययनों में किया जाता है।

(i) हैप्टोग्लोविन (Haptoglobin)

यह एक सीरम प्रोटीन है जो स्वतन्त्र हीमोग्लोबिन को वृक्क (Liver) तक लाता है जिससे वृक्क हीमोग्लोबिन के 'हीम' (Haem) भाग को तोड़कर पित्त लवण (Bile Salt) एवं वाइली बर्डिन का निर्माण करता है। शरीर में हैप्टोग्लोबिन सीरम में स्वतन्त्र हीमोग्लोबिन से मिल जाता है जिससे स्वतन्त्र हीमोग्लोबिन वृक्क नलिकाओं में केशिकाओं के जाल से निकल नही पाता। इससे वृक्क नलिकायें क्षतिग्रस्त नहीं होती।

स्मिथीज (Smethies) सन् 1955 में हैप्टोग्लोबिन के तीन रूपों को प्रदर्शित किया जो निम्न हैं:

(i) Hp-1-1 (जीनी प्ररूप- Hp^1 / Hp^1
(ii) Hp 2-1 - - - - Hp^2 / Hp^1
(iii) Hp 2-2 - - - - Hp^2 / Hp^2

अभिरंजित होने के पश्चात् Hp 1-1 एक गहरी पट्टी की भांति प्रदर्शित होता है। Hp 2-2 में कई पट्टियां दिखाई पड़ती हैं लेकिन Hp 1-1 की भांति जेल (Gel) में दूरी नहीं रखती। Hp 2-1 में Hp 1-1 पट्टी (Band) के समान गतिशीलता की केवल एक ही पट्टी होती है। यह दो युग्मविकल्पियों- Hp^1 एवं Hp^2 द्वारा वंशागत होते हैं।

अध्ययन यह बताते हैं कि Hp^1 जीन पश्चिमी यूरोप में लगभग 40 प्रतिशत वितरित है। इस जीन की बारम्बारता विषुवत क्षेत्रीय अफ्रीका में अधिकतम (60-70%) पायी गयी है। भारत एवं चीन में इसकी बारम्बारता 10-20 प्रतिशत तक घटती बढ़ती रहती है। ओशिनिया में 50-60 प्रतिशत आस्ट्रेलियायी आदिवासियों में 17 प्रतिशत यूरोपीयायी मूल के आस्ट्रेलियन में 38 प्रतिशत, दक्षिणी अमेरिका में 20-60 प्रतिशत, यूरोपीय उत्पत्ति वाले उत्तरी अमेरिका में 38-46 प्रतिशत एवं अफ्रीकी मूल के उत्तरी अमेरिकीयो में 50-60 प्रतिशत पायी गयी हैं।

(ii) ट्रांसफेरिन (Transferin)

ट्रांसफेरिन सीरम के β श्रंखला का एक भाग होता है जो लौह अणुओं (फेरिक आयन-आक्सीकृत लौह) आंत (Intestine) एवं लाल रुधिर कोशिका के टूटने वाले

स्थल (Site) से अस्थीय मज्जा (Bone Marrow) तक लाते है। यह प्रोटीन एक महत्वपूर्ण कार्य करता है क्योंकि लौह बहुत सी जैविक प्रक्रियाओं में आवश्यक होता है।

ट्रांसफेरिन के लगभग 20 उपविभेदक (Variants) इलेक्ट्रोफोसिस क्रिया के द्वारा पहचाने जा चुके हैं। मंद विभेदक- TfD_1 अफ्रीका, आस्ट्रेलिया एवं न्यूगिनी में सामान्य रूप से पाया जाता है। TfD chi जो गतिशीलता में लगभग TfD_1 के समान है यह चीन, दक्षिणी पूर्वी देशों, भारत के आदिवासियों एवं श्रीलंका के वेद्दाओं में पाया जाता है। अध्ययनों में यह इंगित करते हैं कि ट्रांसफेरिन के सभी विशेषको में Tf-c की आवृत्ति विश्व में सर्वाधिक सामान्य है। यह जीन उत्तरी अमेरिकीयों में 90-100प्रतिशत, दक्षिणी अमेरिका में भी 90 से 100 प्रतिशत, यूरोपीयों में 98%, भारत में 93 से 100 प्रतिशत, अफ्रीका में 83 से 100%, आस्ट्रेलियन आदिमों में 55 से 84 प्रतिशत, न्यूगिनी में 82 से 91%, ओशीनिया में 97 से 100 प्रतिशत तथा मेडागास्कर में 87 से 90 प्रतिशत वितरित पाया गया है।

(iii) अल्ब्यूमिन (Al: Albumin)

यह एक सीरम प्रोटीन है जो एक गतिशील (anodal) विशेषक है। इसके लगभग 12 प्रकार पाये जा चुके हैं जो मलेशियायी, भारतीय, अफ्रीकी, यूरोपीय एवं न्यूगिनी की जनसंख्या के अध्ययनों पर आधारित है। यह जीन लैब्रोडोर के नैसकापी मॉंटैग्नैस इंडियन लोगों में 9 से 14 प्रतिशत पाया गया है। यह तीन उत्तरी अमेरिका के जनसमूहों में विशेषतः वितरित है।

(iv) समूह विशिष्ट अवयव (Gc: Group Specefic Component)

समूह विशिष्ट अवयव (Group Specefic Component) को संक्षेप में 'Gc' कहते हैं। जिसकी खोज 1951 में हिर्सफील्ड ने किया था। स्टार्च जेल इलेक्ट्रोफोरेसिस में Gc प्रोटीन अल्व्यूमिन की अपेक्षा मंद गति से स्थानान्तरित होते है। इन्हें पहले 'पोस्टअल्ब्यूमिन' भी कहा जाता था।

कई मानव समूहों में इसके तीन 'व्यक्त प्रारूप' मिले है: Gc 1-1, Gc 2-1 एवं Gc 2-2। यह दो अप्रवल अलिंगसूत्री युग्मविकल्पियों के द्वारा वंशागत होते हैं। इनके तीन जीनी प्ररूप है: Gc^1/Gc^1, Gc^2/Gc^1 एवं Gc^2/Gc^2 Gc^2 जीन की आवृत्ति उत्तरी अमेरिका के यूरोप मूल के लोगों में अफ्रीका उत्पत्ति के लोगों की अपेक्षा अधिक है जो क्रमशः 27 एवं 10 प्रतिशत है। यूरोप में यह 12 से लेकर 27

प्रतिशत, एशिया में 19 से 33%, अफ्रीका में 05 से 09 प्रतिशत, तथा आस्ट्रेलिया में आदिम समूहों में 04 से 19 प्रतिशत Gc^2 जीन की आवृत्ति देखी गयी है।

इम्यूनोग्लोविन (Ig: Immunoglobin)

इम्यूनोग्लोविन एक 'ह्मोरल एण्टीबाडी' (Humoral antibody) है जो 'B-लिम्फोसाइट' रुधिर कोशिकाओं के द्वारा बनाये जाते हैं जब कोई विदेशी अथवा बाह्य तत्व शरीर मे प्रवेश करता हैं इस प्रकार यह शरीर की प्रतिरोधी शक्ति का वर्धन करते हैं। ये पांच प्रकार के होते हैं: IgG, IgA, IgM, IgD एवं IgE । इन विभेदकों का प्रजातीय अध्ययन में उपयोग किया जाने लगा है।

स्रावक लक्षण
(Secretor Factor)

यह पाया गया है कि AB जीन (रक्त समूह) जैसा तत्व लार, आमाशय रस मूत्र आदि से भी स्थित होते हैं। जिन मनुष्यों की लार में यह जीन पाये जाते हैं उन्हें स्रावक Secretor) एवं जिनमें नहीं होते है उन्हें अस्रावक (Non- secretor) कहते है। यह दो युग्मविकल्पियों द्वारा वंशागत होते हैं। स्रावक जीन- S प्रबल एवं अस्रावक जीन-s अप्रबल होता है। इसके तीन जीनी प्रारूप पाये जाते हैं :

(i) S S (स्रावक)

(ii) S s (स्रावक)

(iii) s s (अस्रावक)

अध्ययन यह संकेत देते हैं कि काकेसॉयडो में स्रावक-5 आवृत्ति सर्वाधिक नीग्रायड में इसकी आवृत्ति न्यूनतम होती है। नीग्रायड में अस्रावक जीन-s की बारम्बारता अधिक पायी जाती है। मंगोलायड में इन दोनों युग्म विकल्पियों की स्थित मध्यवर्ती है।

स्वाद क्षमता
(Tasting Ability)

कुछ मनुष्यों में एक कार्बनिक यौगिक-'फिनाइल-थायो- कार्बामाइड' (Phenyl–Thio–Carbamide) अथवा P.T.C. को चखने की जन्मजात क्षमता पायी जाती है तथा कुछ पूर्णतः अक्षम होते हैं। जो व्यक्ति इस रसायन के घोल को चखने में सक्षम

होते हैं उन्हें स्वादक (Taster) कहते हैं। इसके विपरीत अक्षम व्यक्तियों को 'अस्वादक' (Non–Taster) कहा जाता है। यह स्वादक एवं अस्वादक क्षमता क्रमशः दो युग्मविकल्पियों T एवं t द्वारा नियन्त्रित होती है। स्वादक जीन- T प्रबल एवं अस्वादक जीन- s अप्रबल होता है। इसके तीन जीनी प्रकार होते हैं :

(i) TT (स्वादक)
(ii) Tt (स्वादक)
(iii) tt (अस्वादक)

अध्ययनों से यह पाया गया है कि काकेसायडों में स्वादक T जीन- उच्च आवृत्ति में पाया जाता है जब कि नीग्रॉयडों में अस्वादक जीन-t की आवृत्ति अधिक होती है। मंगोलॉयड इन जीनों के लिए मध्यवर्ती स्थित प्रदर्शित करते हैं।

उपरोक्त आनुवंशिक लक्षणों के अतिरिक्त अन्य लक्षणों जैसे- वर्णान्धता, कर्ण-खण्ड, मिडफैलेंजियल बाल, हापरट्राइकासिस, डार्विन्स ट्यबरकल आदि की भी प्रजातीय वर्गीकरण में उपयोग किया जाता है।

गुणसूत्रीय विविधता
(Chromosomal Variaition)

मानव जनसंख्याओं के अध्ययन से यह ज्ञात हुआ कि गुणयूत्र y एक जनसमूह के दूसरे जन समूह तक अपनी लम्बाई में परिवर्तित होता है। यह कभी-2 अधिक लम्बे आकार का होने से G–समूह (13–15 गुणसूत्र) का सदस्य प्रतीत होता है तथा कभी-2 इतना छोटा होता है कि 'एक्रो संट्रिक गुणसूत्र प्रतीत होता है। यह विभेद सम्भवतः Q रंजक हिटरोक्रोमैटिन की अधिक मात्रा लम्बी भुजा के बाहरी क्षेत्रों में होने से प्रकट होती हैं जापान के लोगों में यह गुणसूत्र अपेक्षाकृत लम्बे एवं आस्ट्रेलिया की आदिम जातियों में छोटे आकार का पाया गया है। इस प्रकार का Q पट्टी विभेद (Q–Band Variation) गुणसूत्र- 3 में भी देखा गया है।

डी.एन.ए. बहुरूपता
(DNA Polymorhism)

प्रतिबन्ध एन्जाइमों (Restriction Enzymes) के प्रयोग से डी. एन. ए. (DNA) में कई उपविभेदक पाये गये हैं। जैसे RFLP, VNTR, CA–repeat आदि।

डी०एन०ए० विशेषक

आर०एफ०ओ०एस० (RFOS): एक महत्वपूर्ण एंजाइम प्रतिबन्ध के प्रयोग के फलस्वरूप उत्पन्न हुआ है। यह रेस्ट्रिक्शन इण्डोन्यूक्लीज एंजाइम (Restrictrom Endonuclease Enzyme) डी एन ए स्तर पर अभूतपूर्व भिन्नता प्रदर्शित करता है। Hpal एंजाइम के प्रयोग से β ग्लोबिन जीन पर उपस्थित GRRAAC अनुक्रम से 76 Kb (Kilibase : 1 kb= 1000 Base pair) लम्बा खण्ड उत्पन्न हुआ। GTTAAC से उत्परिवर्तन GCTAAC के मध्य तक खण्ड स्थल छूट जाने से दूसरे DNA खण्ड की लम्बाई 13.0 Kb पायी गयी। एक और उत्परिवर्तन से एक अतिरिक्त खण्ड स्थल पाया गया जिससे DNA खण्ड की लम्बाई 7Kb पाई गयी। इनमें 7.6 Kb लम्बा RFLPs कीनिया, सऊदी अरब, एवं भारत के हसियांकार जीन सम्बद्ध हैं जबकि घाना, नाइजीरिया एवं भूमध्य सामगरीय क्षेत्रों में हसियांकार जीन से सम्बद्ध RFLPs की लम्बाई 13Kb है।

बाम०एच० (Bam. H): एंजाइम भी भिन्न प्रकार से DNA खण्ड उत्पन्न करते हैं। इन एन्जाइमों के प्रयोग से यह अनुमान किया गया है कि RFLPs की संख्या 85 न्यूक्लोटाइडों में 1 प्रतिबन्ध एन्जाइम स्थल से लेकर 500 न्यूक्लोटाइडों में। प्रतिबन्ध एन्जाइम स्थल तक परिवर्तित हो सकती है। 85–न्यूक्लोटाइडों से बना DNA खण्ड- RFLPs की लम्बाई न्यूनतम एवं 500 न्यूक्लोटाइडों से बने DNA खण्ड की लम्बाई अधिकतम होगी। 85–500 न्यूक्लोटाइडों के मध्य कितने RFLps होंगे, इसका उत्तर तो आगामी अध्ययन ही दे सकेंगे। यद्यपि यह निश्चित है कि इस प्रकार के मानव जीनोम (Genome) में यादृच्छिक रूप से घटित नहीं होते हैं।

वी.एन.टी.आर. (VNTR–Variable Number Tandem Repeat) : डी.एन.ए. के मिनी सैटेलाइट (Minisatelite) में पाये जाते हैं। डी एन ए 'मिनी सैटेलाइट इसके पुनः घटित होने वाले अनुक्रम के क्षेत्र हैं। यह डी एन ए सैटैलाइट से भिन्न होते हैं। यह सामान्य क्षार युग्म (Base pair) की केवल छोटी लम्बाई वाले होते हैं। इनमें सदैव समानता नहीं होती। इनकी लम्बाई परिवर्तित होती रहती है। एक परिवार के परीक्षण में 16 क्षार के केन्द्रीय अनुक्रम (Base Core repeat) के आस-पास के 29 अनुक्रम एक वंशावली के 54 सदस्यों में नहीं पाये गये। इस आधार पर अब जनसंख्याओं की तुलना भी की जा रही है।

माइटोकांड्रियल डी०एन०ए० (Mitrochondrial DNA) : ये लगभग 16.5 Kb लम्बे निकटवर्ती वृत्त के समान दिखाई पड़ते हैं। प्रतिबंध इण्डोन्यूक्लीज एन्जाइम के प्रयोग से यह देखा गया कि ये DNA व्यक्ति में एक रूपता प्रदर्शित नहीं करते हैं। केवल 112 व्यक्तियों में ही 12 प्रतिबंध इण्डोन्यूक्लीजों के द्वारा 163 प्रकार की DNA बहुरूपता पायी गयी। इसके प्रयोग से कुछ प्रजातीय समस्याओं के समाधान तलाशे जा सकते हैं।

❑❑❑

10

व्यावहारिक आनुवंशिक मानवविज्ञान
(Applied Genetical Anthropology)

विगत कई वर्षो से आनुवंशिकी के सिद्धान्तों, भौतिक, रासायनिक एवं आणविक तथ्यों का मानव समाज के व्यावहारिक जीवन में उपयोग किया जाता रहा है। इस अवधि में असंख्यों कठिनाइयों का सामना किया गया तथा इसके निवारण के अनेको उपाय तलाशे गये। इनमे वाट्सन एवं क्रिक की खोज ने इस क्षेत्र में एक नवीन लहर पैदा कर दी, जिससे जीवन के प्रत्येक धरातल पर इस अधुनातन ज्ञान का उपयोग किया जाने लगा। मानव समुदाय की अटूट मान्यताये, यद्यपि आनुवंशिक अध्ययनों में बाधक होती हैं, लेकिन रासायनिक एवं आणविक क्षेत्र के प्रयोगों ने यह सिद्ध कर दिया कि मानव समाज के उत्थान में आनुवंशिक के उपयोग की सम्भवनायें बहुत है। अभी तक जिन क्षेत्रों में मानव के आनुवंशिक ज्ञान का उपयोग हुआ है, उनमें प्रमुख क्षेत्र निम्न है :

1. पितृजता (पितृत्व/मातृत्व) निर्धारण या चिकित्सा विधिक उपयोग (Parentage (Parenity/Maternity Determination or Medico-legal Applications)
2. आनुवंशिक परामर्श (Genetic Counseling)
3. आनुवंशिक अभियान्त्रिकी (Genetic Engineering)

1. पितृजता (पितृत्व/मातृत्व) निर्धारण
(Parentage [Paternity/Maternity] Determination)

मानव जीवन अनेकों विपदाओं एवं बाधाओं से घिरा हुआ होता है। आपदाओं का शिकार होने पर, कई-कई गाँव, नगर एवं प्रदेश के निवासी पल भर में छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। इससे वह मानव समुदाय एवं उसकी संस्कृति विखण्डित हो जाती है। उस समुदाय के कई-कई परिवार बिखर जाते है। पति-पत्नी से, बच्चे, माता-पिता से अथवा सन्ततियां अपने सगे-सम्बन्धियों से बिछुड़ जाते हैं। इन दुर्घटनाओं में असंख्यों बच्चें, माता-पिता से बिछुड़ जाने से अनाथ हो जाते हैं। कभी-कभी सामाजिक मान्यताओं के विरुद्ध सम्बन्धों से उत्पन्न अवैध बच्चे सामुदायिक तथा वैधानिक दण्डों या लोक-लाज के भय से त्याग दिये जाते हैं। इन अवैध बच्चों के जन्म की दर खुले समाजों जैसे- यूरोपीय देशों, संयुक्त राज्य अमेरिका आदि, में अपेक्षाकृत अधिक देखी गयी है। एक अनुमान से यह कहा जा सकता है कि 1000 जीवित जन्मों में 40 बच्चे अवैध पाये जाते हैं। 1956 के आँकड़े के अनुसार संयुक्त राज्य अमेरिका में कुल 41,63,090 जीवित जन्मों में 1,93,500 अवैध बच्चों ने जन्म लिया। अनुमानतः भारत में भी प्रतिदिन कई अवैध बच्चे जन्म लेते हैं। यदि विवाहेतर सम्बन्धों (Extra-Marital Relations) के फलस्वरुप जन्में बच्चों की संख्या इसमें और जोड़े, तो ये आँकड़े और बढ़ जायेंगे।

पितृत्व (Paternity)

इससे सम्बन्धित प्रायः कुछ प्रश्न उठते हैं कि पितृत्व क्या है ? इसके निर्धारण की आवश्यकता क्यों हुई ? जिस मानव ने अपने जीवन को सुगम बनाने के लिये समाज, संस्कृति, सभ्यता, नियम, कानून आदि की सृजन किया, वह क्या इन अवैध शिशुओं की सामाजिक समस्या के सन्दर्भ में मौन रहा ? यदि लैगिंक सम्बन्धों के फलस्वरुप उत्पन्न बच्चों को सुरक्षा प्रदान करने हेतु 'विवाह संस्था' के माध्यम से सामाजिक वैधता प्रदान की गयी, तो क्या इसके पश्चात भी उत्पन्न अवैध शिशुओं की सामाजिक सुरक्षा हेतु प्रयास हुए? इन प्रश्नों के उत्तर सरलता से प्राप्त हो जाते है, जब हम कानव सभ्यता के इतिहास का सिंहावलोकन करें। इसके अभिलेख ये स्पष्ट करते हैं कि मानव आदिम काल से ही इन समस्याओं का समाधन करता रहा है। प्राकृतिक आपदाओं से निपटने हेतु आश्रम, अनाथालय, सेवा-प्रतिष्ठान आदि बनवाये गये। जिससे बिछुड़ी सन्ततियों के मिलन से उपजे विवादों को समाप्त

करने हेतु अनेको वैधनिक तथा साक्ष्य आधारित तरीके अपनाये जाते रहे। इन साक्ष्यों का महत्व तब और बढ़ा जब बच्चे के पालन-पोषण का उत्तरदायित्व संदिग्ध माता-पिता ने नहीं ले लिया अथवा सम्पत्ति-हस्तान्तरण, राष्ट्रीयता आदि अधिकार माता-पिता से पुत्र को प्राप्त नहीं हुए। ऐसी स्थिति में उस समुदाय या राष्ट्र को उस अवैध सन्तान को सामाजिक एवं राष्ट्रीय वैधता प्रदान करने हेतु अनेकों प्रावधान करने होते हैं। इनमें सरल प्रावधान अवैध या परित्यक्त बच्चों के वास्तविक माता-पिता का निर्धारण है। यदि अवैध बच्चे एवं उनके संदिग्ध माता-पिता का आनुवंशिक अध्ययन कर लिया जाये तो इस संदर्भ में सम्भावित मातृत्व अथवा पितृत्व का निर्धारण सरलतापूर्वक किया जा सकता है।

भारत में पितृत्व या मातृत्व निर्धारण की न्यायिक माँग अत्यल्प है। कभी-कभी प्रसूति-गृह या महिला अस्पतालों में नवजात शिशु बदलने की घटनायें घटित होती हैं। पितृत्व-मातृत्व विवाद होने के कई कारण हैं। अवैध बच्चों का पंजीकरण नहीं होता है और न ही कोई स्त्री अपने बच्चे के लिए किसी पुरुष से पालन-पोषण का भुगतान न्यांयालय द्वारा माँगने का साहस करती है। कभी-कभी कोई पति अपनी पत्नी के चरित्र पर संदेह करके उससे विवाह विच्छेद करने की अपील न्यायालय से करता है। विवाह-विच्छेद या बलात्कार की घटनायें न्यायालय तक आती है। चूंकि यहाँ की दो तिहाई जनता गाँव में रहती है जो निरक्षरता एवं गरीबी की रेखा के नीचे है। यह जनता इन विवादों का निस्तारण या तो गाँव-स्तर पर कर लेती है या उसके सम्मुख प्रमुख समस्या रोजी रोटी है। अतः पितृत्व या मातृत्व विवाद कम होने के ऐसे कई कारण हैं।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में चूंकि अनेकों राष्ट्रों में सम्पत्ति का हस्तान्तरण पिता से पुत्र एवं पुत्री को होता हे, तथा सन्ततियों के पालन-पोषण का उत्तरतदायित्व पिता का होता है, इसलिये पितृत्व-विवादों की आवृत्ति मातृत्व-विवादों की तुलना में अधिक होती है। ये दोनों प्रकार के विवाद प्रायः न्यायालयों के सम्मुख आते है उस समय न्यायालय अनेकों वहुआयामी साक्ष्यों के प्रकाश में अपना निर्णय देता है जो दोनो पक्षों को अन्ततः स्वीकारना होता है।

पितृत्व या मातृत्व विश्लेषण का उद्देश्य
(Aim of Analysing Paternity/Maternity)

पितृत्व विश्लेषण की आवश्यकता उसी समय होती है जब कोई पक्ष किसी स्त्री

या पुरुष पर यह संदेह व्यक्त करे कि अमुक सन्तान उसकी नहीं है तथा यह आरोप लगाए कि यह एक अवैध सन्तान है, या वह पक्ष यह दावा करे कि अमुक सन्तान उसकी ही है। ऐसी स्थिति में प्रायः एक पक्ष (वादी) न्यायालय की शरण में जाता है तथा न्यायालय उचित कदम ले करके द्वितीय पक्ष (प्रतिवादी) के मत का निरीक्षण करते हुए कार्यवाही आरम्भ करता है। यहां यह कहा जा सकता है कि पितृत्व या मातृत्व या दोनों पितृजता (Parentage) के विश्लेषण की आवश्यकता उसी समय होती है जब वादी या प्रतिवादी में से कोई किसी विशेष पश्रीक्षण की माँग करे या न्यायालय मामले की पेचीदगी को समझते हुए संदिग्ध पितृजता सामाजिक जैविक तथा आनुवंशिक परीक्षण क़रने का आदेश दे।

विश्व के कुछ न्यायालय आज भी संदिग्ध पितृजता का परीक्षण केवल सामाजिक-सांस्कृतिक साक्ष्यों के आधर पर करते हैं। कुछ आदिम समाज इस प्रकार के विवादों को सामुदायिक स्तर की समितियों के माध्यम से सुलझा लेते हैं। लेकिन विकसित एवं विकासशील देशों में अधिकांश न्यायालय इन समस्याओं का निस्तारण सामाजिक एवं जैविक साक्ष्यों के आधार पर करते हैं।

इस शताब्दी के प्रारम्भ तक प्रायः शिशुओं एवं माता-पिता के वाह्य शारीरिक लक्षणों के आधार पर पितृजता का अनुमान किया जाता रहा है। यूरोपीय न्यायालयों में मानवमितीय मापों के आधार पर वैयक्तिक पहचान की विधि अत्यन्त लोकप्रिय रही है जिसे 'बर्टिलानेज तकनीक' (Bartilanage Technique) कहा जाता था। इसके पश्चात् गाल्टन तकनीक (Galtan Technique) ने इसे प्रतिस्थापित कर दिया जिसमें त्वचा प्रारूपों (अंगुलि) को साक्ष्यों के रुप में प्रयोग किया जाता था। लेकिन संदिग्ध पितृजता हेतु इन मावमितिक (Anthropometric), मानवीक्षिक (Somatoscopic), एवं त्वचा प्रारूपशास्त्रीय (Dermatoglyphic), लक्षणों के तुलनात्मक अध्ययन से अवैध शिशु, माता एवं सम्भावित पिता में समानता होने पर न्यायालय किसी एक संदिग्ध पिता अथवा माता को एक विशिष्ट बच्चे (अवैध-बच्चे) यह आदेश देता है कि वह उस बच्चे की पितृजता स्वीकार करे। कैसे भी हो ऐसी स्थिति में यह पूर्णतः प्रमणित करना कठिन होता था क़ि अमुक व्यक्ति ही एक बच्चे का पिता या माता है क्योंकि ये आकारवीक्षिक (Morphotogical), आकारमितिक (Morphometric) तथा अंगुति त्वचा प्रारूपीय लक्षणों की पूर्ण समानता या पूर्ण विषमता की सम्भावना कभी भी दृष्टिगोचर नहीं होती। एक शिशु में चूंकि माँ एवं पिता दोनों के लक्षण

संयुक्त रुप से व्यक्त होते हैं इसलिये कालान्तर में इन तुलनात्मक अध्ययनों में सांख्यकीय नियमों की सहायता ली गयी। इससे यह स्पष्ट हुआ कि किसी भी व्यक्ति (माता या पिता) की पितृजता केवल 50 प्रतिशत ही होती है। अतः 20 वीं शदी के उत्तरार्ध में यह अनुभव किया गया कि पितृजता का आंकलन मात्र उक्त लक्षणों से ही नही अपितु इसके लिए अधिक उत्तम एवं विस्त्रसनीय कोटि के जैविक, सामाजिक व नृजातीय साक्ष्यों का उपयोग होना चाहिए।

जैविक साक्ष्यों की विस्त्रासनीयता का परीक्षण आनुवंशिक नियमों के प्रमुख बिंदुओं की सहायता से किया जा सकता है :

1. सभी जैविक लक्षण एक या एक से अधिक (बहुजीन) जीनों के द्वारा नियंन्त्रित होते हैं। चूंकि जीन के दो या दो से अधिक विकल्पी होते हैं इसलिए प्रायः ये लक्षण बहुरुपता (Polymorphism) को प्रदर्शित करते हैं। ऐसी स्थिति में इन लक्षणों की वंशागति स्पष्ट रुप से ज्ञात होना चाहिए कि अमुक लक्षण किस प्रकार की आनुवंशिक क्रियाविधि- प्रभावी, अप्रभावी, सहप्रभावी, लिंग सहलग्न आदि का अनुसरण करता है।
2. लक्षण सरल एवं सामान्यरुप से वंशानुगत हो ताकि उसकी वंशागति से सम्बन्धित कोई विवाद न हो।
3. विवादित लक्षण का पितृजता आँकलन में उपयोग नहीं होना चाहिए।
4. अधिकांशतः उन्हीं लक्षणों का उपयोग हो जो एक जीन से नियन्त्रित होते हैं क्योंकि इनके जीन प्रारुप एवं व्यक्त प्ररुप की सांख्यकीय सम्भावना को ज्ञात करना सरल एवं स्पष्ट होता है।
5. बहुविकल्प, जैवरासायनिक, प्रतिरक्षावैज्ञानिक, गुणसूत्री एवं आणविक लक्षणों का उपयोग उत्तम होता है क्योकि इनकी वंशागति सरल विवादों से परे है।
6. प्रयुक्त लक्षण की जीन अभिव्यक्ति में विवाद नहीं होना चाहिए, तथा उन्हीं लक्षणों का चयन करना चाहिए जो अपेक्षाकृत सामान्य रुप से व्यक्त हो।
7. जिन लक्षणों की आवृत्ति किसी जनसंख्या में सर्वाधिक है तथा वह सामान्य रुप से लगभग सभी में पाया जाता है, उस लक्षण का चयन नहीं करना चाहिए।
8. उन्हीं लक्षण का चयन होना चहिए जो जन्म से मृत्यु पर्यन्त अपेक्षाकृत स्थायी हो।

9. उन विरले एवं विशिष्ट नृजातीय (Ethnological) लक्षणों का चयन अवश्य करना चाहिए जो आनुवंशिकता प्रमाणित करने में सहायक हों, भले ही वे अनानुवंशिक साक्ष्यों के रुप में मान्य हो।

चूंकि प्रत्येक वंशानुगत लक्षण के सन्तति में पारगमन होने की सम्भावना 50 प्रतिशत से अधिक नहीं होती, अतः पितृजता निर्धारण के लिए अधिक से अधिक लक्षणों का प्रयोग करना चाहिए। जिससे प्रत्येक लक्षण की सम्भावना से सम्भावना गुणांक (Coefficient of Probability) का पता किया जा सकता है। सम्भावना गुणांक को निम्न सूत्र से ज्ञात किया जा सकता है :

$$COP = \Sigma\, i$$

(Coefficient of Probability) = (Sum of Probability of each Character)

उक्त गुणांक का मान जितना अधिक होगा, पितृजता (मातृत्व या पितृत्व) का निर्धारण यद्यपि उतना ही सटीक तथा संगत होगा, लेकिन प्रत्येक न्यायालय इन परिणामों को स्वीकारने या आस्वीकारने में पूर्णतः स्वतन्त्र है। यह भी सम्भव है कि वह इन साक्ष्यों की तुलना में अन्य साक्ष्यों को अधिक महत्व दें या इन मानववैज्ञानिक (आनुवंशिक) मतों को आमन्त्रित किये बिना अपना निर्णय दे दें। विस्त्र की अधिकांश न्यायालय जिन मानव आनुवंशिक लक्षणों को पितृजता निर्धारण में प्रायः स्वीकार करती है, वे इस प्रकार हैं जैसे. रुधिर वैज्ञानिक (ABO, Rh, MNS etc.), प्रतिरक्षा वैज्ञानिक (HLA, lg, etc.), जैव रासायनिक (Hb, Hp, Tf, G-6-PD etc.), आणविक (DNA फिंगर प्रिंट, PCR etc.), अन्य आनुवंशिक लक्षण (PTC, वर्णान्धता, हीमोफीलिया, हाइपरट्राइकॉसिस, आदि), त्वचा प्रारुपीय (Dermatoghyphic), तथा आकारिक लक्षण (सिर प्रकार, नासिका, कर्णपल्लव, नेत्र, होंठ, भौंह, त्वचावर्ण आदि)।

क्या सकारोक्ति पितृजता (पितृत्व) सम्भव है ?
(Is Possitive Inclusion of Parentage Possible ?)

मॉर (Mohr 1960) ने नार्वे की न्यायालय का एक निर्णय उद्धृत किया जिसमे एक सामान्य माता के लघु व गठीलें आकार की अंगुलि वाले (Brachyphalangic) बच्चे के सम्भावित पिता का निर्धारण किया गया था। सर्वप्रथम तो सम्भावित पिता ने तथाकथित बच्चे के पितृत्व को अस्वीकार किया लेकिन जब न्यायालय ने उससे

उंगली दिखाने के लिए कहा तो वह लघु-उंगली वाला पाया गया। इस लक्षण के आधार पर न्यायालय ने उस संदिग्ध व्यक्ति को बच्चे का पिता निर्धारित किया तथा बच्चे की सुरक्षा व पालन पोषण हेतु उसे आदेश दिया।

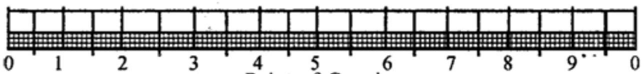
यह निर्धारण छोटी एवं गठीले आकार की अंगुली सरीखें आनुवंशिक लक्षण के आधार पर किया गया। यह एक प्रभावी जीन के द्वारा नियन्त्रित होता है। इसकी आवृत्ति अत्यल्प है। किसी अन्य व्यक्ति के पिता होने की सम्भावना अल्प थी क्योंकि यदि वह व्यक्ति समयुग्मजी जीन-प्रारुप का होता तो शत प्रतिशत बच्चे गठीली अंगुली के होते। अन्य स्थिति में यदि वह व्यक्ति विषमयुग्मजी जीन प्रारुप का था तो भी उसके 50 प्रतिशत बच्चों में यह लक्षण व्यक्त अवश्य होता। शेष 50 प्रतिशत सम्भावना सामान्य बच्चे के उत्पन्न होने की होती, यदि लघु एवं गठीली अंगुली वाला बच्चा नहीं भी होता तथा वह सामान्य होता तो भी वह व्यक्ति पितृत्व से पूर्णतः मुक्त न हो पाता क्योंकि उस व्यक्ति में 50 प्रतिशत सामान्य बच्चे होने की सम्भावना बनी रहती है। इस स्थिति में पितृत्व निर्धारण अनिर्णीत रहता जब तक कोई अन्य लक्षण सामने न आते है।

सकारोक्ति पितृजता सम्बन्धी एक उदाहरण को कर्टस्टर्न (1960) ने भी उद्धृत किया है। यह निर्धारण Rh रुधिर वर्ग के एक विशिष्ट प्ररुप- r^y पर आधारित है। इस लक्षण की आवृत्ति भी अत्यधिक कम होती है। अनुमानतः यह प्रति 1000 व्यक्ति में पाया जाता है। यह एक विकल्पी- r^y द्वारा नियंत्रित होता है। यह विकल्पी माता के रुधिर में अनुपस्थित था लेकिन पुत्र के रुधिर में विषम युग्मजी स्थिति में वर्तमान था। इस पुत्र का पिता होने का संदेह जिस व्यक्ति पर किया जाता था, उसके रुधिरवर्ग की जाँच करने पर यह पता चला कि यह विकल्पी- r^y उसके रुधिर में वर्तमान है। अतः अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा उस संदिग्ध व्यक्ति के पिता होने की सम्भावना सर्वाधिक है। यह भी सम्भव है कि बड़े आकार वाले जनसमूह में अन्य लोग भी r^y विकल्पी वाले रुधिर कें हो, फिर भी संदिग्ध व्यक्ति के पिता होने की सम्भवना सबसे अधिक है क्योंकि 'सकारोक्ति पितृजता निर्धारण' (Possitive Assignment of Paternity) मात्र यथोचित जीन प्ररुप पर ही निर्भर होता है जिस पितृजता निर्धारण सरल एवं स्पष्ट हो जाता है।

यह सकारात्मक सम्भावना उस समय और अधिक बढ़ जाती है यदि कोई अवैध बच्चा कई दुर्लभ एवं विरल विकल्पियों का वाहक होता है जो सभी किसी

संदिग्ध व्यक्ति में तो पाये जाते हैं लेकिन उसकी माता इन लक्षणों को व्यक्त नहीं करती। ऐसी स्थिति में अनानुवंशिक साक्ष्यों की अनदेखी भी की जा सकती है क्योंकि आनुवंशिक साक्ष्य वास्तविकता के अत्यधिक निकट हैं।

जर्मन के न्यायालय भी जैविक एवं अन-आनुवंशिक साक्ष्यों के आधार पर पितृजता (पितृत्व या मातृत्व) का सकारात्मक निर्धारण प्रायः करते हैं। ये न्यायालय 'सम्भावना के उच्चमान' (High Degree of Probability) को अधिक विश्वसनीय मानते है। इन न्यायालयों में पितृत्व निर्धारण हेतु अधिक सम्भावना एवं अत्यधिक



Point of Certainty
(निश्चितता का बिन्दु)

असम्भाव्य की सीमा रेखा निर्धारित की जाती है। इसे एक रेखाचित्र से दर्शाया जा सकता है। चूंकि बच्चे (अवैध) एवं संदिग्ध पिता के लक्षणों को दो श्रेणी में रखा जा सकता है : समान लक्षण एवं असमान लक्षण। वे लक्षण जो इन दोनों के मध्य है उनकी समानता व असमानता का अनुपात ज्ञात करके यथासंगत श्रेणी के गुणांक में सम्मलित किया जा सकता हैं इसके पश्चात क्रमवार समान लक्षणों से सम्भावना को तथा असमान लक्षणों से असम्भावना के अंकों को निकाला जाता है। उक्त सम्भवना मापक में 1-5 तथा 5-9 क्रमशः सम्भवना एवं असम्भावना के निम्न एवं उच्च मान दर्शते है। इसकी व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है यदि लक्षणों की समानता की सम्भावना का मान - 1 है तो उसे **अनिश्चयात्मक,** -2 है तो अनिश्चय की अपेक्षा **अधिक सम्भव,** -3 है तो **सम्भव,** -4 है तो **अधिक सम्भव,** -5 है तो यह मान **निश्चितता के बिंदु तक सम्भव** है। इसके विपरीत **असम्भाव्य-पितृत्व** निर्धारण भी इस मानक में दर्शाया गया है जिसे 5-9 वे बिन्दुओं के मध्य देखा जा सकता है। यह बच्चे तथा संदिग्ध पिता के लक्षणों में निम्नतम विषमता को तो 6 वें बिंदु पर तथा उच्चतम विषमता को 9 बिंदु पर पर देखा जा सकता है। इसमें यदि विषमता का मान-6 है तो नही की अपेक्षा **असंभव अधिक,** -7 है तो **असम्भव,** 8 है तो **अधिक सम्भव** तथा यदि 9 है तो **अनिश्चतता की सीमा तक असम्भव या पूर्ण असम्भव** है।

लेकिन उक्त सम्भावना मापक के परिणाम आनुवांशिक के मौलिक ज्ञान पर आधारित नही है। यह मापक शरीरिक लक्षणों की समानता तथा विषमता के आधार

पर बनाया जाता है। लेकिन पितृजता का निर्धारण जिन शारीरिक लक्षणों से किया जाता है वे प्रायः वहुजीनों के द्वारा नियन्त्रित होते है। इनके आधार पर यदि सन्तति एवं संदिग्ध पिता के शारीरिक लक्षणों में समानता अधिक है तो संदिग्ध पिता को अत्यधिक सम्भव पिता मान लिया जायेगा तथा न्यायालय 'संदिग्ध पिता' को एक अवैध बच्चे का 'वास्तविक पिता' होने की घोषणा करती है।

सकारात्मक पितृजता की सीमायें
(Limitations of Parenity Inclusion)

वस्तुतः यहाँ पर आनुवंशिक संरचना के सैद्धान्तिक सत्यता की अवहेलना होती है। इन साक्ष्यों की विश्वसनीयता का उचित ढंग से अनुमान नहीं किया जाता है। शारीरिक लक्षणों में भी यद्यपि ऐसे कई लक्षण है जो एक जीन द्वारा नियन्त्रिण भी होते हैं, इनकी आनुवंशिक क्रियाविधि भी सरल एवं स्पष्ट है लेकिन कई ऐसे दुर्लभ एवं अनूठे आनुवंशिक लक्षण हैं। ये जीवन पर्यन्त एक समान रहते हैं। इन पर वातावरण का प्रभाव नही होता।

दूसरे क्या शारीरिक लक्षणों (आकार, गठन, बनावट आदि) के आधार पर एक या एक से अधिक संदिग्ध व्यक्तियों में से वास्तविक पिता निर्धारित किया जा सकता है? क्या इस प्रकार का निर्धारण त्रुटियों से परे है ?, यह ज्ञात होने पर भी कि सभी जैविक लक्षणों का आनुवंशिक पारगमन एक जैसा नही होता, आनुवंशिक अभिव्यक्ति शत प्रतिशत सर्वथा नही होती, तथा विषमयुग्मजी लक्षण वाले के लक्षण की वंशागति की सम्भावना केवल 50 प्रतिशत या इससे भी कम होती है, तो क्या सकारात्मक रुप से किसी संदिग्ध व्यक्ति को 'एक सम्भव पिता' कहना तर्क-संगत होगा? यदि इस प्रकार सम्भव नहीं है, तो इसका विकल्प क्या है? वास्तव में यह सत्य है कि यदि सकारोक्ति पितृत्व निर्धारित विधि पर गहरायी से विचार करें तो इस विधि पर गहरायी से विचार करें तो इस विधि पर कई प्रश्न चिन्ह लग सकते हैं जिसके द्वारा निर्दोष व्यक्ति भी न्यायालय द्वारा किसी अवैध बच्चे का पिता ठहराया जा सकता है। वह पिता न होकर के उस बच्चे का चाचा (Uncle) हो, भाई या बहन (Brother or Sibling) हो या कोई निकटवर्ती जैविक सम्बन्धी हो तथा उस बच्चे का वास्तविक पिता क्रमशः उसका भाई (Brother) पिता (Father) या कोई अन्य जैविक सम्बन्धी जैसे- चचेरे/ममेरे/फुफेरे/मौसेरे भाई (Cousin brother) हों। अतः सकारात्मक पितृत्व निर्धारण में इस प्रकार की त्रुटिया इस लिए सम्भव है

क्योकि एक परिवार का कोई भी व्यक्ति, दूसरे परिवार के व्यक्तियों की अपेक्षा, जैविक निकटता अधिक रखता है। सिद्धान्ततः पिता तथा पुत्र में आनुवंशिक समानता की सम्भवना 50 प्रतिशत, भाई-बहनों में 50 प्रतिशत, चाचा-भतीजा या भतीजी तथा मामा-भांजी या भांजा में 25 प्रतिशत, तथा चचेरे/ममेरे/फुफेरे/मौसेरे भाई-बहनों में 12.5 प्रतिशत होती है। आनुवंशिक भागीदारी के ये तथ्य सकारात्मक पितृत्व निर्धारण में अभूतपूर्व मोड़ लाते है। जिससे सकारात्मक निर्धारण की निष्पक्षता प्रमाणित नहीं होती।

पितृजता की नकारोक्ति
(Exclusion of Parentage)

पितृजता (पितृत्व/मातृत्व) की सकारोक्ति सर्वथा निर्णायक नहीं होती। इससे प्रायः भ्रम की स्थित उत्पन्न होती है।

इससे प्रायः भ्रम की स्थित उत्पन्न होती है। यदि, आनुवंशिक लक्षण परिणामदायक भी हो, तो भी किसी एक व्यक्ति की वास्तविक पितृजता (जैविक) को भी पूर्णतः प्रामाणिक नहीं कहा सकता, क्योंकि एक विशिष्टि जीन प्ररुप को उस जनसंख्या के अन्य व्यक्ति भी रख सकते है, जिसका उल्लेख इसके पूर्व किया गया। दूसरी ओर, अनिश्चय की इस स्थिति में इन जीन प्ररुपों/लक्षणों के आधार पर यह निश्चय करना सरल है एवं आशंकाओं से परे है कि "एक विशिष्ट या जीन प्ररुप लक्षण जो बच्चे में विद्यमान है वह माँ एवं संदिग्ध व्यक्ति में अनुपस्थित है अतः संदिग्ध व्यक्ति उस बच्चे का पिता नहीं हो सकता।" पितृजता निर्धारण की इस विधि को "नकारोक्ति पितृजता (Exclusion of Parentage)" कहा जाता है। यह एक प्रमाणिक विधि है जिसके आधार पर विस्त्र के कई न्यायालय विवादास्पद पितृजता निर्धारित करते है। इस नकारोक्ति विधि की अन्य चिकित्सा विधिक उपयोगितायें (Medico-Legal Applications) भी है, जैसे- बलात्कार, व्यभिचार, हत्या जैसी घटनाओं से प्राप्त जैविक साक्ष्यों के विश्लेषण आदि।

पितृजता के नकारात्मक निर्धारण में यदि अन-आनुवंशिक जैसे- सामाजिक साक्ष्यों का भी अभूतपूर्व सहयोग होता है। उदाहरण- स्वरुप, यदि एक व्यक्ति अपनी पत्नी के बच्चे की पितृजता पर संदेह करता है, उस पर चरित्रहीन होने का आरोप लगाता है तथा उसके बच्चे का पिता होने का आरोप किसी अन्य व्यक्ति पर लगाता है जिससे उसकी पत्नी के कथित सम्बन्ध है। ऐसी स्थिति में यदि

आनुवंशिक साक्ष्य संदिग्ध व्यक्ति की 'नकारोक्ति' प्रदर्शित करते हैं तो न्यायालय पति को ही उस बच्चे का वास्तविक पिता कहती है। अतः यह निर्णय इस तथ्य पर आधारित है कि दो व्यक्यिों (पति तथा संदिग्ध पुरुष) में से कौन बच्चे का जैविक पिता नहीं है। इसप्रकार कई देशों में जहाँ न्यायालय को आनुवांशिक साक्ष्य स्वीकार्य हैं वहाँ न्यायालय की कार्यवाही में 'पितृजता की नकारोक्ति' विधि को उपयुक्त माना जाता है।

पितृजता नकारोक्ति की विधियाँ
(Approaches to Exclusion of Parentage)

पितृजता की नकारोक्ति कई विधियों से की जाती है। यह मनुष्य के उस जैविक अस्तित्व पर आधारित है जो एक पाढ़ी से दूसरी पीढ़ी में पारगमित होता है। जैसा कि इसके पूर्व भी कहा गया था कि माता-पिता तथा सन्ततियों के मध्य लाक्षणिक समानता के आधार पर जर्मनी के न्यायालयों में आकारिक विशेषकों (Morphological Traits)का उपयोग चिकित्सा विधिक निर्णयों में किया गया। 20 वीं शताब्दी के आरम्भिक दशकों में जब मेण्डल के आनुवांशिक नियमों की सार्वभौमिक सिद्ध हुई तो आनुवंशिक विशेषकों में रुधिर वर्गो से सम्बन्धित विशेषकों का अधिक प्रचलन रहा। 1950 के पश्चात् जैव रासायनों का विस्तार से अध्ययन हुआ जिससे प्रोटीन, एन्जाइम, अमीनों अम्ल तथा डी एन ए० अणु आदि। आज इन सभी विशेषकों का यथानुरुप प्रयोग पितृजता निर्धारण में किया जाता है।

इसप्रकार विभिन्न विशेषकों के प्रयोग से पितृजता नकारोक्ति के भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण विकसित हुए है। चूंकि वर्तमान परिप्रेक्ष्य में आधुनिक तकनीकें अधिक लोकप्रिय है, अतः यहाँ विशेषकों के महत्व एवं प्राथमिकता के आधार पर पितृजता निर्धारण की विधियों का पृथक–पृथक वर्णन किया जा रहा हैं मुख्य विधियां निम्नवत हैं:

1. आकारिक विश्लेषण-विधि (Morphological Approach)
2. त्वचीय प्रारूप-विश्लेषण-विधि (Dermatoglyphic Approach)
3. आनुवंशिक विश्लेषण-विधि (Genetical Approach)
   (i) रुधिर वैज्ञानिक विश्लेषण
   (ii) जैव-रासायनिक विश्लेषण
   (iii) प्रतिरक्षावैज्ञानिक विश्लेषण

(iv) अन्य आनुवंशिक साक्ष्य-विश्लेषण

4. गुणसूत्र-विश्लेषण विधि (Chromosomal Approach)
5. आणाविक-विश्लेषण विधि (Molecular Approach)

1. आकारिक-विश्लेषण विधि (Morphological Approach)

पितृजता निर्धारण हेतु आकारिक विश्लेषण पद्धति प्राचीनतम विधि है। यह विधि सर्वप्रथम उस समय प्रकाश में आयी जब 1926 में रिची (Rech) ने वियाना के एक न्यायालय हेतु इस विधि का पितृजता निर्धारण में प्रयोग किया। बर्लिन में भी इसी वर्ष वर्सच्योर (Verscheur) ने विवादास्पद पितृजता का निर्धारण किया। इसके पश्चात् पितृत्व निर्धारण में इस विधि के साथ-साथ आनुवंशिक विशेषकों का प्रयोग भी किया जाने लगा। इस क्षेत्र में यूजीन फिशर (Eugene Fischer), हीनरिच स्काडे (Heinrich Schade) आदि विद्वानों ने महत्वपूर्ण योगदान किया। जिससे यथोचित्त सयुक्त विधि विकसित हुई।

आकारिक पद्धति में उन शारीरिक लक्षणों को सम्मिलित किया जाता है जो शरीर के बाहरी सतह पर स्थित होते हैं। यह विश्वास किया जाता है कि ये सभी लक्षण वंशानुगत होते हैं, लेकिन इनकी आनुवंशिक क्रियाविधि स्पष्ट नहीं होती। इनकी जीनी-बारम्बारता (gene frequency) आंकलित नहीं की जा सकती क्योंकि ये बहुजीनों के द्वारा नियन्त्रित होते हैं। इन शारीरिक लक्षणों को दो वर्गों में रखा जा सकता है: आकारवीक्षिक (morpho-scopic) तथा आकारमितिक (Morpho-metric)।

आकारमितिक लक्षणों में मुख्यतः सिर, मुखमण्डल, नासिका, मुँह, कान, हाथ तथा पैर की विभिन्न मापें ली जाती है। इन मापों पर आधारित कई सूचकांकों (Indices) आंकलित की जाती है, जैसे- सिर सूचकांक (Head index) आदि। इन मापों एवं सूचकांकों हेतु मार्टिन, मार्टिन एवं सैलर, स्काडे आदि द्वारा प्रतिपादित विधियों को प्रयोग में लाया जाता है।

आकारवीक्षिक लक्षणों में वे लक्षण सम्मिलित होते हैं जिनकी प्रत्यक्षरुप से माप नहीं की जा सकती, इन्हें अवलोकन विधि से श्रेणीबद्ध किया जा सकता है। इन विशेषकों में सिर के बाल-आकार, रंग, संरचना, सीमा, मात्रा, ललाट (Forhead)-ऊचाई, चौड़ाई, ढलान, आँख क्षेत्र-भौंह, नेत्र खुलान, नेत्र मोड़, नासिका-जड़,

सेतु, अग्र बिंदु, नासिका-पट (Wing), सेप्टम (Septum), होंठ-ऊपरी होंठ, निम्न होंठ, लटकावा (Eversion), चिबुक (Chin)– आकार, उभार, एलव्योलर उद्गतहनुता, मुखमण्डलीय उद्गतहनुता, कान-कर्ण-खण्ड (lobe), डार्विन-बिंदु आदि सम्मिलित किये जाते हैं। इसके अतिरिक्त हाथ, पाँव, नाखून आदि के गठन का प्रेक्षण भी किया जाता है। इन लक्षणों के विश्लेषण हेतु मार्टिन, वॉइल्डर, वीनर एवं लारी, हूटन मांटेगू आदि कि विधियों को प्रयुक्त किया जाता है। इन लक्षणों की विस्तृत परिचर्चा 'प्रजातिय-वर्गीकरण के आधार' अध्यायन में किया जायेगा। यहाँ पर यह कहना उचित होगा कि चूंकि ये लक्षण माता-पिता तथा उनके बच्चों में अन्य लोगों की अपेक्षा समानता अधिक प्रदर्शित करते हैं।, इसलिए पितृत्व निर्धारण के लिए प्रथम साक्ष्य' के रुप में इन आकारवीक्षिक एवं आकारमितिक लक्षणों को आज भी न्यायिक कार्यवाही में किया जाता है।

2. त्वचीय प्रारुप विश्लेषण विधि (Dermatoglyphic Approach)

त्वचीय प्रारुप मानव की हथेली, अंगुलियों, तलवों एवं पैर के अंगूठों में पाये जाते हैं। इनका विस्तृत वर्णन अध्याय-प्रजाति वर्गीकरण के आधार में किया जायेगा। यहां पर इनके आनुवंशिक महत्व एवं पितृजता निर्धारण में इनकी भूमिका का उल्लेख करना उचित होगा।

त्वचीय प्रारूप पूर्णतः आनुवंशिक होते हैं। इन पर पर्यावरण का प्रभाव नहीं पड़ता। ये प्रतिरुप जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त एक समान रहते हैं। अपनी इन विशेषताओं के कारण ये पितृजता निर्धारण में अनूठी भूमिका अदा करते हैं। चूंकि ये बहुजीनों द्वारा नियंन्त्रित होते हैं, इसलिए इन्हें जीनी-प्रारुपों (त्वचीय प्रारूपों) के आधार पर पितृजता निर्धारित करना विश्व के कई न्यायालयों में एक मान्य विधि हैं।

इस विधि में जिन त्वचीय प्रारूपों (Dermatoglyphic Patterns) का उपयोग किया जाता है वे इसप्रकार हैं- अंगुलि प्रारुप (Finger Patterns), अंगुलि-प्रारुप-डैंकमीजर (Dankmeijer) फरुहाटा (Furuheta) तथा पैटर्न इंटेसिटी सूचकांक (Pattern Intensity Index), अंगुलि रिज गणना (Finger Ridge Count), मुख्य रेखा सूत्र (Main Line Formula), मुख्य रेखा सूचकांक (Main line index), हथेली रिज गणना (Palmar ridge counts)– a–b गणना, b–c गणना, c–d गणना,

a–d गणना, आदि। यदि ये त्वचीय-प्रारुपशस्त्रीय लक्षण अवैध सन्तान तथा संदिग्ध व्यक्ति से अधिकांशतः नही मिलते तो यह पितृजता नकारोक्ति में एक सशक्त भूमिका अदा कर सकता है।

3. आनुवंशिक-विश्लेषण विधि (Genetical Approach)

विवादास्पद पितृत्व तथा मातृत्व के निर्धारण मुख्यतः कुछ विशेष जीन-प्ररुपों (Genotypes) की उपस्थिति तथा अनुपस्थित पर निर्भर करता है। ये लक्षण चूंकि एक जीन द्वारा नियन्त्रित होते हैं, अतः इनकी जीनी-बारम्बारता सरलतापूर्वक आंकलित की जा सक्ती है। इनके जीन प्ररुप एक जीन के दो या दो से अधिक विकल्पी से बने होते हैं। ये पीढ़ी दर पीढ़ी पारगमित होते रहते है। इनका आनुवंशिक पारगमन प्रायः मेण्डलीय नियमों से होता है। विवादास्पद पितृजता की वास्तविक पहचान स्पष्ट रुप से की जाती है क्योंकि जीनी-नकारोक्ति (Exclusion of Paternity) अनेको जीनी-विशेषक प्रयुक्त किये जा सकते हैं। यह एक उत्तम तथा पूर्णतः विस्त्रसनीय विधि है, जो विश्व के अधिकांश न्यायालयों में मान्य हैं। यह विधि निम्न आनुवंशिक व्यवस्थाओं पर आधारित है :

(i) रुधिर वैज्ञानिक विश्लेषण
(ii) जैव-रासायनिक विश्लेषण
(iii) प्रतिरक्षा वैज्ञानिक विंश्लेषण - HLA आदि
(iv) अन्य आनुवंशिक साक्ष्य-विश्लेषण

(i) रुधिर वैज्ञानिक विश्लेषण (Serological Analysis)

प्रतिजन (Antigen) एवं प्रतिपिण्ड (Antibodies) की प्रतिक्रियायें रुधिर सीरम में लैंडॉयस के द्वारा अवलोकित की गयी थी लेकिन मानव (एक ही स्पीशीज में) के रुधिर में प्रतिजन तथा प्रतिपिण्ड की प्रतिक्रियाओं सर्वप्रथम लैण्डस्टाइनर (Landsteiner) ने 1900 में देखा। प्रतिजन तथा प्रतिपिण्ड की प्रतिक्रिया को समूहीकरण (Clumping or Agglutination) कहते हैं। इस प्रतिक्रिया के आधार पर इन्होनें 4 रुधिर वर्ग- A, B, O एवं AB, की खोज की। इसके पश्चात् आज तक एक दर्जन से अधिक रुधिर वर्गों की खोज किया जा चुका है।

ये रुधिर वर्ग एक जीन द्वारा नियन्त्रित होने वाले लक्षण हैं। इनकी आनुवंशिक क्रिया विधि सरल होती है। ये प्रायः मेण्डलीय पद्धति के द्वारा पीढ़ी दर पीढ़ी

पारगंमित होते हैं। इन रुधिर वर्गो के प्रतिजन समूह एक जीन के बहुविकल्पियों की अन्तर्क्रियाओं के परिणाम हैं इनमें से कुछ उच्च बहुरुपता (Polymorphism) प्रदर्शित करते हैं जैसे- ABO, Rh, MNs आदि, जो पितृजता निर्धारण में अत्यधिक उपयोगी विशेषक हैं।

ABO रुधिर वर्ग प्रणाली
(ABO Blood Technique)

ABO रुधिर वर्ग का संदिग्ध पितृजता के अधिकांश मामलों में विस्तृत रुप से उपयोग किया जाता है। यह समूह तीन विकल्पियों - A, B, O द्वारा नियन्त्रित होते हैं। इनमें दो विकल्पी प्रभावी (A तथा B) एवं एक विकल्पी (O) अप्रभवी होता है। जब दोनों प्रभावी विकल्पी एक साथ होते हैं तो ये सहप्रभावी (Codominant) होते हैं। इनसे बने युग्मविकल्पियों के जीन प्ररुप एवं लक्षण-प्ररुप निम्न तालिका में दर्शाया जा रहा है :

रुधिर वर्ग	व्यक्त-प्ररुप	जीन-प्ररुप
(Blood Group)	**(Phenotype)**	**Genotype)**
A	A	I A I A, I A I O
B	B	I B I B, I B I O
AB	AB	I A I B
O	O	I O I O

इन रुधिर वर्गो के प्रतिजन एवं प्रतिपिण्डों के संयोगो को निम्न तालिका में दर्शाया जा रहा है :

रुधिर वर्ग	प्रतिजन	प्रतिपिण्ड	समूहीकरण
A	A	anti–B	anti–A सीरम से
B	B	anti–A	anti–B सीरम से
AB	Aएवं B	–	anti–A तथा anti–B सीरम से
O	–	anti–A } anti–B	किसी भी सीरम से नहीं

रुधिर वर्ग– A के दो उपसमूह होते हैं जिन्हें anti–A_1 सीरम से ज्ञात किया जाता है। ये दोनों उपसमूह A_1 एवं A_2 के नाम से पुकारे जाते है। इसी प्रकार रुधिर

वर्ग- AB के दो उपसमूह होते है- A_1B तथा A_2B । B तथा O वर्गो के कोई उपसमूह नहीं होते हैं। इन रुधिर वर्गो के जीनप्ररुप किसी भी संधिग्ध व्यक्ति में दो-रुपों-समयुग्मजी (Homozygous) तथा विषमयुग्मजी (Hetrozygous) में पाये जाते हैं। समान विकल्पी वाले युग्मनज-समयुग्मनज तथा असमान विकल्पी से बने युग्मनज-विषमयुग्मनज कहलाते हैं। इन्हें निम्न तालिका में दर्शाया जा रहा है :

रुधिर वर्ग	समयुग्मजी	विषमयुग्मजी
A	A_1A_1, A_2A_2	A_1A_2, A_1O, A_2O
B	B B	B O
AB	–	A_1B, A_2B
O	O O	–

लेकिन यदि उक्त तालिका पर दुष्टिपात करें तो इससे संकेत मिलता है कि यदि संदिग्ध व्यक्ति का रुधिर वर्ग A अथवा B है, तो यह कैसे ज्ञात किया जायेगा कि वह व्यक्ति समयुग्मजी है अथवा विषमयुग्मजी और जब तक यह स्पष्ट नहीं होगा तब तक इस विशेषक के आधार पर पितृत्व निर्धारण सरलतापूर्वक नही किया जा सकता है। इस विशेषक का प्रयोग करने से निम्न कठिनइयां सामने आ सकती हैं:

(i) जब किसी विवाद में सन्तति एवं संदिग्ध एवं संदिग्ध पिता के रुधिर वर्ग समान हों तथा मां का रुधिर वर्ग उनसे भिन्न हों, तो सदैव शंका की स्थिति बनी रहती है। उदाहरणस्वरूप यदि किसी O माता के पुत्र का रुधिर वर्ग B तथा संदिग्ध पिता का रुधिर वर्ग ज्ञात करने पर 'B' पाया गया। लेकिन जब तक अन्य साक्ष्य उपलब्ध न हो तब तक उस व्यक्ति को उस 'पुत्र' का वास्तविक पिता नहीं कहा जा सकता और न ही उस व्यक्ति को पितृत्व को नकारोक्ति की जा सकती। ऐसा इसलिए क्योंकि 'B' रुधिर वर्ग के संदिग्ध पिता के दो प्रकार के युग्मनज-समयुग्मजी $_1B_1B$ एवं विषमयुग्मजी $_1B_1O$ हो सकते है जिससे B तथा O दोनों प्रकार की सन्तानें होना सम्भद है।

(ii) यदि माता, संदिग्ध पिता तथा बच्चे तीनों के रुधिर वर्ग समान हो, तो पितृत्व अथवा मातृत्व निर्धारण करना कठिन है। उदाहरण के लिए एक A माता की पुत्री A रुधिर वर्ग की है। उस स्त्री के पति का रुधिर वर्ग भी 'A' है लेकिन

वह किसी अन्य व्यक्ति को उस पुत्री का पिता होने का संदेह करता है जिसका रुधिर वर्ग O है। इस स्थिति में माता, पिता तथा पुत्री के रुधिर वर्गों के जीन प्ररुप AA तथा AO हो सकते हैं। इनसे A तथा O रुधिर वर्ग की सन्ततियां उत्पन्न हो सकती है। दूसरे, माता तथा संदिग्ध व्यक्ति के जीनप्ररुप क्रमशः AA, AO तथा AO हैं जिनसे भी दो वर्गों- A तथा O की सन्ततियां सम्भाव्य है। अतः इन दोनों व्यक्तियों (उस स्त्री का पति एवं संदिग्ध व्यक्ति) में से किसी के पितृत्व को नकारा नहीं जा सकता और न ही केवल इसी साक्ष्य के आधार पर किसी एक के पितृत्व की स्वीकारोक्ति की जा सकती।

(iii) जब माता तथा बच्चे का रुधिर वर्ग A अथवा B है लेकिन इन दोनों के वर्गो समान है तथा संदिग्ध दो व्यक्तियों रुधिर वर्ग AB तथा O हो, तो दोनों व्यक्तियों के पितृत्व की सम्भावना बराबर-बराबर होती है। ऐसी परिस्थिति में मात्र ABO रुधिर वर्ग के आधार पितृत्व पर निर्धारण कठिन हैं। यहां कर्टसृर्न (Curt Stern 1960) द्वारा उद्धृत दृष्टान्त का उल्लेख समीचीन है। एक स्त्री जिसका रुधिर वर्ग A था उसके A रुधिर वर्ग का बच्चा हुआ। उस स्त्री ने AB रुधिरवर्ग के व्यक्ति को उसके जैविक पिता होने का दावा किया। लेकिन उस सम्भवित व्यक्ति ने उसके प्रत्युत्तर में O रुधिर वर्ग के व्यक्ति को उस बच्चे के पिता होने का संदेह किया। ऐसी स्थिति में जब इन लोगों के ABO रुधिर वर्ग का विश्लेषण किया गया तो यह ज्ञात हुआ कि ये दोनों व्यक्ति A रुधिर वर्ग की सन्तति को उत्पन्न कर सकते हैं, अतः इस साक्ष्य से दोनों में से किसी एक पितृत्व के निर्धारण हेतु अन्य आनुवंशिक साक्ष्यों की सहायता लेनी पड़ी।

इसी प्रकार एक अन्य विवाद, गतदशक में लखनऊ के एक न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत हुआ। लखनऊ की निवासी रमादेवी ने एक पुत्र को जन्म दिया। कुछ महीनों बाद राधेश्याम वर्मा (रमादवी के पति) ने रमादेवी से विवाह- विच्छेद (Divorce) चाहा, जिस के लिए न्यायालय में याचिका दायर की। न्यायालय के विवाह-विच्छेद का कारण पूछने पर राधेश्याम वर्मा ने रमादेवी के चरित्र पर संदेह व्यक्त किया तथा उसके लैंगिक सम्बन्ध एक अन्य व्यक्ति (शंकर-रमादेवी के मामा) से बताया। उस नवजात शिशु का वास्तविक पिता होने का संदेह भी शंकर पर किया। जब इस

विवाद के निस्तारण हेतु इन सभी के ABO रुधिर वर्ग का परीक्षण किया गया तो उस बच्चे के वास्तविक पिता होने की सम्भावना राधेश्याम एवं शंकर दोनों की बराबर-बराबर पायी गयी। इसके लिए अन्य रुधिर विशेषकों तथा अन-आनुवंशिक साक्ष्यों की सहायता अनिवार्य हो गयी। इन व्यक्तियों, माँ तथा पुत्र के रुधिर वर्गो का विशेषण निम्नतालिका में दर्शाया जा रहा है :

व्यक्ति	रुधिरवर्ग	सम्भव जीनप्ररुप एवं शंकर	सम्भव मिलन माता राधेश्याम	सम्भव बच्चे के जीनप्ररुप
रमादेवी (पत्नी)	B	$_IB_IB, {}_IB_IB$	(i) $_IB_IB \times {}_IA_IB$ (राधेश्याम)	$_IA_IB, {}_IB_IB$
पुत्र	B	$_IB_IB, {}_IB_IO$	(ii) $_IB_IO \times {}_IA_IB$	$_IA_IB, {}_IB_IB$, $_IA_IO, {}_IB_IO$
राधेश्याम (पति)	AB	$_IA_IB$	(iii) $_IB_IB \times {}_IO_IO$ (शंकर)	$_IB_IO$
शंकर (संदिग्ध व्यक्ति)	O	$_IO_IO$	(iv) $_IB_IO \times {}_IO_IO$ (शंकर)	$_IB_IO, {}_IO_IO$

उक्त तालिका से स्पष्ट है कि राघेश्याम (पति) एवं शंकर संदिग्ध व्यक्ति दोनों से B वर्ग का बच्चा उत्पन्न हो सकता है अतः राधेश्याम एवं शंकर दोनों के पितृत्व को इस साक्ष्य के आधार पर नकारा नहीं जा सकता।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि ABO रुधिर वर्ग का उपयोग पितृजता निर्धारण में यद्यपि विस्तृत रुप से किया जाता है लेकिन किन्हीं-किन्हीं स्थितियों में यह साक्ष्य पूर्णरुप से निर्णायक सिद्ध नहीं होता। पितृजता निधारण में ABO रुधिर वर्ग का विश्लेषण निम्नतालिका में दर्शाया जा रहा है। इसमें सम्भावित जीन-प्ररुपों के मिलन से उत्पन्न सन्ततियों के जीनप्ररुप एवं लक्षण प्ररुपों की सम्भावना का वर्णन किया गया है :

सम्भवित मिलन	सम्भवित संन्ततिया			असम्भावित संन्ततियां
लक्षण-प्ररुप	जीनप्ररुप	जीनप्ररुप	लक्षण प्ररुप	लक्षण-प्ररुप
A×A	$I^AI^A \times I^AI^A$	I^AI^A	A	B, AB
	$I^AI^A \times I^AI^O$	I^AI^A, I^AI^O	A, O	
	$I^AI^O \times I^AI^O$	I^AI^A, I^AI^O, I^OI^O	A, O	
A×B	$I^AI^A \times I^BI^B$	I^AI^B	AB	–
	$I^AI^A \times I^BI^O$	I^AI^B, I^AI^O	A, AB	
	$I^AI^O \times I^BI^B$	I^AI^B, I^BI^O	B, AB	
	$I^AI^O \times I^BI^O$	I^AI^B, I^AI^O, BI^O, I^OI^O	A, B, AB, O	
A×Ab	$I^AI^A \times I^AI^B$	I^AI^A, I^AI^B	A,B	O
	$I^AI^O \times I^AI^B$	I^AI^A, I^AI^B, I^AI^O, I^BI^O	A, B, AB	
A×O	$I^AI^A \times I^OI^O$	I^AI^O	A	B, AB
	$I^AI^O \times I^OI^O$	I^AI^O, I^OI^O	A, O	
B×B	$I^BI^B \times I^BI^B$	I^BI^B	B	A, AB
	$I^BI^B \times I^BI^O$	I^BI^B, I^BI^O	B,	
	$I^BI^O \times I^BI^O$	I^BI^B, I^BI^O, I^OI^O	B, O	
B×AB	$I^BI^B \times I^AI^B$	I^AI^B, I^BI^B	B, AB	A, O
	$I^BI^O \times I^AI^B$	I^AI^B, I^BI^O	B, AB	
B×O	$I^BI^B \times I^OI^O$	I^BI^O	B	A, AB
	$I^BI^O \times I^OI^O$	I^BI^O, I^OI^O	B, O	
AB×AB	$I^AI^B \times I^AI^B$	I^AI^A, I^AI^A, I^BI^B	A, B, AB	O
AB×O	$I^AI^B \times I^OI^O$	I^AI^O, I^BI^O	A,B	AB, O
O×O	$I^OI^O \times I^OI^O$	I^OI^O	O	A,B, AB

MNSs रुधिर प्रणाली
(MNs Blood Technique)

MNs रुधिर वर्ग चार विकल्पी M, N, S तथा s के द्वारा नियन्त्रित होते हैं। इस प्रणाली में MN रुधिर वर्ग की खोज लैण्डस्टाइनर ने किया था। ये विकल्पी दो प्रतिजन M एवं N के द्वारा व्यक्त होते हैं क्रमशः सीरम anti–M एवं anti–N से पहचाने जोते हैं। इनके तीन जीन प्ररुप होते हैं- L^ML^M, L^ML^N, तथा L^ML^N । इसके अतिरिक्त अत्यन्त कम आवृत्ति विकल्पी L^{N2} तथा L^{Mg} भी पाये गये हैं जो विशिष्ठि तथा विरल प्रतिजन N2 एवं Mg से पहचाने गये। ये प्रतिजन सीरम anti–M तथा anti–N से प्रतिक्रिया नहीं करते। जनसंख्या आँकड़ों से यह ज्ञात होता है कि L^{Mg}

विकल्पी विषमयुग्मजी अवस्था $L^{Mg}L^{N}$ तथा $L^{Mg}L^{M}$ में प्राय: व्यक्त होते हैं। जीनप्ररुप $L^{Mg}L^{Mg}$ अत्यन्त विरल आवृत्ति रखता है। MN वर्ग श्रंखला के ये दो अत्यन्त कम आवृत्ति वाले विकल्पी पितृत्व निर्धारिण में निर्णायक भूमिका निभाते हैं।

सन् 1947 में MN वर्ग प्रणाली में और वृद्धि हुई। अनुसंधानों से ज्ञात हुआ कि Ss विकल्पी श्रंखला भी MN वर्ग के साथ पायी जाती हैं। इससे ज्ञात हुआ कि ये रुधिर प्रणाली बहुविकल्पी व्यवस्था का अनुसरण करती है। इसके चार विकल्पियों में से विकल्पी MS तथा Ns अन्य युग्म विकल्पियों Ms तथा Ns की तुलना में अधिक आवृत्ति वाले होते है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि MN एवं Ss दो भिन्न भिन्न जीन-संस्थितियों (gine loci) पर होते हैं, इनकी साथ-साथ वंशागति सहलग्नता (linkage) के फलस्वरुप देखी जाती है।

संक्षेप में, इन चारों विकल्पियों के सभी जीन प्ररुपों का विश्लेषण करके पितृजता को सरलतापूर्वक निर्धारित कर सकते है। इस प्रणाली में दोनों उपश्रंखलाओं (MN एवं Ss) के संयोग पितृजता के निस्तारण में विवाद में अपेक्षाकृत सराहनीय अवसर प्रदान करते हैं।

Rh रुधिरवर्ग प्रणाली
(Rh Blood Technique)

Rh प्रतिजन को 1940 में लैण्डस्टाइनर एवं वीनर ने खोजा। आरम्भ में इसके दो लक्षण प्ररुप– Rh^{+Ve} तथा Rh^{-Ve} पहचाने गये जो दो विकल्पी D एवं d के द्वारा नियंत्रित होते हैं। इनमें D प्रभावी तथा d अप्रभावी होता है।

जब अप्रबल विकल्पी समयुग्मजी (rh rh) होता है तो यह Rh प्रतिजन की उत्पत्ति को बाधित करता है अर्थात् Rh^{-ve} लक्षण प्ररुप वाले व्यक्ति के रुधिर Rh प्रतिजन अनुपस्थित होते है। इन व्यक्तियों में, जिनमें प्रभावी विकल्पी समयुग्मजी (Rh Rh) या विषमयुग्मजी (Rh rh) के रुप पाये जाते हैं, Rh प्रतिजन उपस्थित होता है। इस रुधिर वर्ग में प्रतिपिण्ड प्राकृतिक नहीं होते, वे Rh प्रतिजन की उपस्थिति में ही प्रकट होते हैं। इस रुधिर वर्ग का रुधिर-आदान (Transfusion) एवं गर्भधारण में विशेष महत्व होता है।

सन् 1940 के पश्चात्के अनुसंधानों में Rh रुधिरवर्ग के कुल पाँच एण्टी-सीरम विकसित हुए- एण्टी–D, –C, –E, –c, तथा एण्टी –e । इनमें दो विकल्पियों (D एवं d) का पता चला था। लेकिन कालान्तर में शेष चार एण्टी सीरमों से चार अतिरिक्त विकल्पी पाये गये। इसके आधार पर फिशर (Fisher, R.A.) ने इनके सभी 6 विकल्पियों– C, D, E, c, d एवं e को विभिन्न विकल्पी-समूहों में रखा, जिस प्रणाली में तीन विकल्पी एक साथ होते है :

फिशर-रेस व्यवस्था	वैकल्पिक चिन्ह
(i) CDE	Rz
(ii) CDe	R1
(iii) cDE	R2
(vi) cDe	R0
(v) Cde	R^1
(vi) CdE	R^y
(vii) cdE	R^{11}
(viii) cde	r

फिशर के अनुसार ये Rh वर्ग के विकल्पी तीन भिन्न जीन संस्थिति (luci) पर स्थित होते हैं जो एक दूसरे से सहलग्न होने के कारण एक साथ वंशानुगत होते है। इनमें प्रथम तीन विकल्पी C,D,E प्रभावी तथा शेष तीन विकल्पी c, d, e अप्रभावी होते हैं। इनके आठों विकल्पी समूहों (allele–complexes) से कुल 36 जीन प्ररुप प्रकट हो सकते हैं। यदि इन विकल्पियों के प्रयोग से पितृत्व निर्धारण किया जाये, तो यह एक विस्त्रसनीय साक्ष्य के रुप में कार्य करता है।

अन्य रुधिर वर्ग प्रणालियाँ
(Other Techneques)

पितृजता निर्धारण में इसके पूर्व वर्णित रुधिर वर्गो ABO, MNSs तथा Rh के प्रयोग अत्यधिक प्रचलित हैं क्योंकि विश्लेषण के लिए यथोचित एण्टी सीरम सुगमता से उपलब्ध हो जाते हैं। लेकिन अबतक रुधिर से सम्बन्धित अन्य कई समूह प्रणालियों की भी खोज हो चुकी है जिनके सीरम अत्यधिक कठिनाई से प्राप्त हो पाते हैं। ये प्रणालियां निम्न है :

वर्ग प्रणाली का नाम		मुख्य विकल्पी	आवृत्ति
(i)	P	P1, P2, p	p अत्यल्प
(ii)	Kell	K, K	अत्यल्प
(iii) Diffy Fya, Fyb, Fy		Fy अत्यल्प	
(iv) Lewis		Le, le	le अत्यल्प
(v)	Diego	Di^a,Di^b,	केवल मंगोलॉयड तथा अमेरिंडियन में दखा गया।
(vi) Kidd JK^a, JK^b		अत्यल्प	
(vii)	Xg	Xg^a, Xg	अत्यल्प
(viii)	Lutherian	Lu^a, Lu^b	अत्यल्प

उक्त रुधिर प्रणालियां विरल आवृत्ति महत्वपूर्ण साक्ष्य के रुप में प्रयोग की जाती हैं। ये रुधिर वर्ग सम्बन्धी साक्ष्यों में कभी-कभी प्रामाणिक एवं निर्णायक भूमिका निभाते हैं।

(ii) जैव-रासायनिक विश्लेषण

(Bio–Chemical Analysis)

जैव-रासायनिक विशेषक इस तथ्य पर आधारित होते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति जीवन के लिए आवश्यक मौलिक रसायनों को रखता है। अपनी वैयक्तिक विशष्टिता को प्रदर्शित करते हैं। ये विशिष्ट प्रकार के जैव-रसायन-प्रोटीन, एन्जाइम आदि माता-पिता से सन्ततियों में पारगमित होते हैं। इनका आनुवंशिक परगमन प्रायः मेण्डलीय नियमों के अनुसार होता है।

इन विशेषकों की पहचान के लिए जैव-रासायनिक विधियां प्रयुक्त की जाती है। इनमें क्रोमैटोग्राफी, (Chromatography), "विद्युत-पथ परिभ्रमण" या इलेक्ट्रोफोरेसिस (Electrophoresis) आदि प्रमुख तकनीकें अत्यधिक प्रचलित हैं। इलेक्ट्रोफोरेसिस तकनीक आदि प्रमुख तकनीकों का उल्लेख गत अध्याय- "आनुवंशिक अध्ययन की विधियां" में किया गया था। इन तकनीकों से ज्ञात किये गये प्रमुख विशेषकों जैसे- हीमोग्लोबिन,(Hb) जी०सी० (GC), जी०एल०ओ० (GLO), इस्टरेज-D (EsD), जी-6-पी०डी० (G–6–PD) आदि विशेषकों के विकल्पी लक्षण प्ररुप तथा ज्ञात

जीन-प्ररुपों का संक्षिप्त उल्लेख निम्न तालिका में दिया जा रहा है :

	लक्षण (Trait)	लक्षण प्ररुप (Phenotype)	जीन-प्ररुप (Genotype)
1.	हीमोग्लोबिन. (Hemoglobin)	Hba, HbS, Hbc, HbD, HbE (HbA प्रभावी, शेष अप्रभावी) HbA HbE,	HbA HbA, HbA HbS, HbA HbC, HbA HbD, HbS HbS, HbC HbC, HbD HbD, HbE HbE.
2.	हैप्टोग्लोबिन (Haptoglobin)	Hp1, Hp2 (दोनों प्रभावी, सहप्रभावी)	Hp^1, Hp^1, Hp^2 Hp^2, Hp1 Hp2.
3.	ट्रांसफेरिन (Transferrins)	Tf^B, Tf^C, TF^D (सहप्रभावी, प्रभावी) उपसमूह B, B_2, B_1, B_0 D # D_3, D_2, D_1, एवं D_0	Tf^B Tf^B, Tf^C Tf^C, Tf^D Tf^D, Tf^C Tf^B Tf^B Tf^D तथा Tf^B Tf^C.
4.	फास्फोग्लूकोमुरेज़	PGM^1, PGM^2	PGM^{1-1}, PGM^{2-2}, PGM^{3-2}
5.	एस्टरेज़–D	EsD^1, EsD^2	EsD^{1-1},EsD^{2-2},,EsD^{1-2}
6.	जी०एल०ओ०-I	GLO^1, GLO^2	GLO^{1-1},GLO^{2-2},,GLO^{1-2}
7.	ADA	ADA^1, ADA^2	ADA^{1-1},ADA^{2-2},ADA^{1-2}
8.	लैक्टेट डिहाइड्रोजिनेज (Lactate Dehydrogenase)	LDH–1, LDH–2, LDH–3, LDH–4 LDH–5	LDH^N, LDH^{call} एवं अन्य जिनकी आवृत्ति अत्यल्प है।
9.	ESP	A, B	AA, BB, AB
10.	एसिड फास्फटेज-AcP (Acide Phosphatase)	AcP^A, AcP^B, AcP^C	AA, AB, BB,BC.
11.	सेरुलोप्लास्मिन–CP (Ceruloplasmin)	CP^A, CP^B	AA, BB, AB
12.	6–फास्फोग्लूकोमुटेज- डिहाइड्रोजिनेज (6–PGD)	Pd^A, Pd^B, Pd^C	AA, AC ,AB
13.	एडीनाइलेट काइनेज–AK (Adenylate Kinase)	AK^1, AK^2, (AK^4)	AK^{1-1}, AK^{2-2}, AK^{1-2}
14.	एडिनासिन डीमिनेज– ADA (Adenosine Deaminase)	ADA1, ADA2	ADA^{1-1}, ADA^{2-2},ADA^{1-2}
15.	डाइफोरेज –DIA (Diaphorase)	DIA^1, DIA^2, DIA^4	DIA^{1-1}, DIA^{2-1}, DIA^{4-1}
16.	सूडोकॉलीनेस्टिरेज	C_5, E_2	(i) C_5^+ C_5^+, C_5^- C_5^-, C_5^{+-}.

क्रमशः

क्रमशः

	(C_5, E_2 Locus) (Pseudochdinesterase)		(ii) E_2^{++}, E_2^{--} E_2^{+-}
17.	सीरम एल्कालाइन फास्फटेज –Alk.Ph (Serum Alkaline Phosphatase)	P^0, P^+, P^{++}	P^0P^+, P^0P^0, P^+P^+, $P0P^{++}$, P^- P^{++}
18. v	मैलेटडिहाड्रोजिनेज– MDH (Malate Dehydrogenase)	MDH normal MDH varient	MDH^{n-n}, $MDH^{v-v}MDH^{n-}$
19.	पेप्टीडेज–A (Peptidase–A)	$PepA^1$, $PepA^{2-1}$, $PepA^{3-1}$, $PepA^{4-1}$ $PepA^{5-1}$, $PepA^{6-1}$.	$PepA^{1-1}$(शेष पूर्ववत)
20.	पेप्टीडेज–B (Peptidas–B)	$PepB^1$, $PepB^{2-1}$ $PepB^{3-1}$, $PepB^{4-1}$	$PepB^{1-1}$, $PepB^{2-1}$ $PepB^{3-1}$, $PepB^{4-1}$
21.	फास्फोहिक्जोज आइसोमरेज–PHI (Phosphohexose Isomerase)	PHI^1, PHI^{2-1} PHI^{3-1},PHI^{4-1} PHI^{5-1}, PHI^{7-1} PHI^{8-1}, PHI^{9-1}	PHI^{1-1} एवं पूर्ववत। इसमें 3–1, 5–1, एवं 9–1 की आवृत्ति अल्पतम नहीं है।
22.	GC (Geoupspecefic Component)	Gc^1, Gc^2, Gc^{2-1}	Gc^{1-1}, Gc^{2-2},Gc^{2-1}

रुधिर वर्ग एवं जैव रासायनिक विशेषकों से पितृत्व निर्धारण

(Paternity Determination by Blood Group Systemes and Biochemical Traits)

रुधिर वर्ग तथा जैव रासायनिक विशेषक (प्रटीन, एन्जाइम) का विश्लेषण रुधिर प्रतिदर्श (Sample) से किया जाता है रुधिर के इन आनुवंशिक लक्षणों से पितृत्व विवादों का निर्धारण भारत की कुछ अदालतों में हुआ है। इन आनुवंशिक साक्ष्यों का प्रयोग करके हरियाणा (भारत) में दो विवाद सुलझाये गये (कुशवाहा, 1992)। यहाँ इनका संक्षिप्त उल्लेख किया जा रहा है :

उदाहरण :

जिला न्यायालय नरनौल में धारा 12, हिन्दू विवाह अधिनियम के अधीन एक व्यक्ति ने अपनी पत्नी से तलाक प्राप्त करने की याचिका दायर की। याचिका में यह आरोप लगाया कि उसकी पत्नी का नवजन्मा बच्चा उसका नहीं है क्योंकि उसके विवाह के मात्र 172 दिन (5 महीना 22 दिन) हुए है। इसलिए नवजन्मा शिशु एक अवैध सन्तान है। दूसरी ओर पत्नी ने पति पर यह आरोप लगाया कि वह उसके माँ-बाप से अधिक दहेज की माँग कर रहा है तथा उसके अन्य व्यक्ति के

साथ लैंगिक सम्बन्ध विवाह से पूर्व नहीं हुए, अतः नवजन्मा बच्चे का वास्तविक पिता उसका पति है। न्यायालय यदि उचित समझे तो पितृत्व की रुधिर जाँच अवश्य करवाये। अन्ततः दोनो पक्ष तथा बच्चे का रुधिर प्रतिदर्श "फारेंसिक साइंस लैबोरेटरी, मधुबन (हरियाणा) में लिया गया जिसका विश्लेषण के०पी०एस० कुशवाहा (1992) ने किया। इसके परिणाम निम्न तालिका में दिये जा रहे हैं:

रुधिर लक्षण (Blood Makers)	पिता	माता	पुत्र	पितृत्व
ABO	A1	A1	O	सम्भवित
Rh	CcDe	cDe	CcDe	सम्भवित
MN	M	M	M	सम्भवित
Hp	2–2	2–1	2–1	सम्भवित
PGM	2–2	2–1	2–1	सम्भवित
EsD	2–1	2–1	1–1	सम्भवित
GLO1	2–1	2–1	2–1	सम्भवित
ADA	2–1	1–1	1–1	सम्भवित
EAP	BB	BB	BA	असम्भवित
AK	1–1	1–1	2–1	असम्भवित

उक्त तालिका दिये गये परिणामों के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि EAP तथा AK विशेषकों के आधार पर उक्त पति एवं पत्नी के संयोग से नवजन्मा बच्चा सम्भव नही है क्योंकि पति तथा पत्नी दोनों के लक्षण प्ररुप AK विशेषक के लिए 1–1 , तथा EAP विशेषक के लिए दोनों के BB हैं जब कि बच्चे के दोनों विशेषक के लक्षण प्ररुप क्रमशः 2–1 एवं BA है।

इस प्रकार उक्त मत के आधार पर अर्थात AK विशेषक के लिए 'प्ररुप-"2" तथा EAP विशेषक हेतु प्ररुप 'A' की पति एवं पत्नी दोनों के रुधिर में अनुपस्थिति होने के कारण न्यायालय ने पत्नी को जैविक माता लेनिक पति को उस नवजात बच्चे के पितृत्व का असम्भव मान करते हुए उसे आरोप मुक्त किया तथा उसे नवविवाहित पत्नी से तलाक की अनुमति दे दी।

(iii) प्रतिरक्षा वैज्ञानिक विश्लेषण
(Immunological Analysis)

प्रतिरक्षा वैज्ञानिक लक्षण रुधिर के वे विशेषक (marker) है जो प्रतिजन

साथ लैंगिक सम्बन्ध विवाह से पूर्व नहीं हुए, अतः नवजन्मा बच्चे का वास्तविक पिता उसका पति है। न्यायालय यदि उचित समझे तो पितृत्व की रुधिर जाँच अवश्य करवाये। अन्ततः दोनो पक्ष तथा बच्चे का रुधिर प्रतिदर्श "फारेंसिक साइंस लैबोरेटरी, मधुबन (हरियाणा) में लिया गया जिसका विश्लेषण के०पी०एस० कुशवाहा (1992) ने किया। इसके परिणाम निम्न तालिका में दिये जा रहे हैं:

रुधिर लक्षण (Blood Makers)	पिता	माता	पुत्र	पितृत्व
ABO	A1	A1	O	सम्भवित
Rh	CcDe	cDe	CcDe	सम्भवित
MN	M	M	M	सम्भवित
Hp	2–2	2–1	2–1	सम्भवित
PGM	2–2	2–1	2–1	सम्भवित
EsD	2–1	2–1	1–1	सम्भवित
GLO1	2–1	2–1	2–1	सम्भवित
ADA	2–1	1–1	1–1	सम्भवित
EAP	BB	BB	BA	असम्भवित
AK	1–1	1–1	2–1	असम्भवित

उक्त तालिका दिये गये परिणामों के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि EAP तथा AK विशेषकों के आधार पर उक्त पति एवं पत्नी के संयोग से नवजन्मा बच्चा सम्भव नही है क्योंकि पति तथा पत्नी दोनों के लक्षण प्ररुप AK विशेषक के लिए 1–1 , तथा EAP विशेषक के लिए दोनों के BB हैं जब कि बच्चे के दोनों विशेषक के लक्षण प्ररुप क्रमशः 2–1 एवं BA है।

इस प्रकार उक्त मत के आधार पर अर्थात AK विशेषक के लिए 'प्ररुप-"2" तथा EAP विशेषक हेतु प्ररुप 'A' की पति एवं पत्नी दोनों के रुधिर में अनुपस्थिति होने के कारण न्यायालय ने पत्नी को जैविक माता लेनिक पति को उस नवजात बच्चे के पितृत्व का असम्भव मान करते हुए उसे आरोप मुक्त किया तथा उसे नवविवाहित पत्नी से तलाक की अनुमति दे दी।

(iii) प्रतिरक्षा वैज्ञानिक विश्लेषण
(Immunological Analysis)

प्रतिरक्षा वैज्ञानिक लक्षण रुधिर के वे विशेषक (marker) है जो प्रतिजन

(antigen) तथा प्रतिपिण्ड के (antibody) की प्रतिक्रियाओं के फलस्वरुप देखे गये हैं जैसे- Gm, Am, Inv, Oz प्रणलियां। इन लक्षणों का उल्लेख पूर्व ही अध्याय 'आनुवंशिक अध्ययन की विधियां में किया जा चुका है। यहाँ पर कुछ महत्वपूर्ण विशेषक जैसे- HLA प्रणाली का संक्षिप्त उल्लेख करेंगें, क्योंकि पितृजता विवाद में अपेक्षाकृत विश्वसनीय साक्ष्य है।

HLA– ह्यूमन लूकोसाइट ऐण्टीजन (Human Leukocyte Antigen) 1958 में डॉसेट (Dausset) के द्वारा खोजा गया। इस एण्टीजन को 'Mac' कहा गया जो आज HLA–A_2 के समकक्ष है। यह एक 'बहुत रुधिर आधानित (multitransfused) रोगी में देखा गया। सन् 1963 के पश्चात् वॉन राड तथा वॉन लीवुन (Von Rod तथा Von Leeuwun) ने HLA– प्रणाली के दो अन्य विकल्पी खेजे। आज इसके कई विकल्पी समूह देखे जा चुके हैं। यह लक्षण बहुरुपता को अत्यधिक प्रदर्शित करता है। इसके जीन, बहुरुपता को अत्यधिक प्रदर्शित करता है। इसके जीन, छठे गुणसूत्र की छोटी भुजा पर स्थित होते हैं। वर्तमान समय में इसके 6 सहप्रभावी विकल्पी समूह है- HLA–A, B,C,D DR (D सम्बद्ध), MT (MB) तथा SB। इनमें HLA –A,B,C श्रृंखला, DR तथा MT से भिन्न होती है। शेष दो विकल्पी समूह- MT तथा SB सुपरिभाषित प्रणलियां नहीं हैं। HLA–A,B तथा C मानव शरीर की रुधिर कोशिकाओं लगभग समस्त ऊतकों में विस्तृत होता है जबकि HLA–D तथा DR के अतिरिक्त सभी ऊतकों में स्थित नहीं होता है। HLA–MT (MB) एवं SB का विस्तृत अध्ययन न होने से इसके विस्तार के बारे में स्पष्ट सूचना उपलब्ध नहीं है।

ये प्रतिजन सरल मेण्डलीय विधि से पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तर होते हैं। एक गुणसूत्र पर स्थित होने पर से HLA प्रतिजन के (HJaplotype) के नाम से वह एक माता से तथा तथा दूसरा पिता से प्राप्त करता है। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि HLA जीन उच्च प्रकार की सहलग्नता रखते हैं। यह अंगों के प्रत्यारोपण में मुख्य भूमिका निभाते हैं क्योंकि समान HLA–वर्ग अंग प्रत्ययारोपण के लिए अनिवार्य है अन्यथा कोई भी विकृति प्रकट हो सकती है। इनका किसी व्यक्ति विशेष की प्रतिरोधी शक्तियों के अध्ययन एवं पितृजता निर्धारण में भी अत्याधिक महत्व है।

अत्यधिक बहुरुपी होने के कारण HLA विकल्प समूह पितृत्व विवादों में अहम भूमिका रखते हैं। इनके प्रत्येक विकल्पी के अनेकों विल्पियों का समूह होता है जैसे HLA–A में विकल्पी समूह में कम से कम 20 विकल्पी, HLA–B में 40, HLA–

V में 8, HLA–D में 12, HLA–DR में 10 विकल्पी होते हैं। इन विकल्पी संकुल में अधिकांश विकल्पी कम आवृत्ति वाले होते हैं। इन अल्पतम आवृत्ति वाले विकल्पियों की उपस्थिति एवं अनुपस्थित प्रायः पितृत्व विवादों में निर्णायक प्रमाणित होते हैं।

उदाहरण

एक पितृत्व विवाद का निस्तारण अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान, नई दिल्ली के विशेषज्ञों ने HLA प्रणाली करके साक्ष्य के आधार पर किया। यह विवाद उस समय सामने आया जब एक दम्पति ने 14 वर्षीय पुत्री के वास्तविक माता-पिता होने का दावा किया तथा पालने-पोषण करने वाले व्यक्तियों को दोषी ठहराया यह कहते हुये कि उनकी पुत्री 1970 से लापता है। सम्भवतः इन व्यक्तियों को 14 वर्ष पूर्व उठा ले गये थे। रुधिर वर्ग के विश्लेषण से दोनों दम्पति की पितृजता सम्भव प्रतीत हुई। यह विवाद चिकित्सा-विधिक संस्थान भोपाल में भेजा गया था जहाँ पर Rh प्रणाली, पारिवारिक इतिहास, बच्चों के जन्म का क्रम, आकारिक तथा मानवशास्त्रीय साक्ष्यों के आधार पर विश्लेषण किया गया। अन्ततः यह अनुभव किया गया कि इन पांचों व्यक्तियों का H#A–विश्लेषण किया जाना चाहिए। जिसे 'कोशिकीय प्रतिरक्षा वैज्ञानिक प्रयोगशाला' अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान, नई दिल्ली में अध्ययन किया गया।

HLA–प्रणाली के साक्ष्यों के आधार पर यह पाया गया कि वह 14 वर्षीया पुत्री के वास्तविक माता-पिता याचिका का दायर करने वाले दम्पति नहीं है। न्यायालय ने इन दम्पतियों की पितृजता की नकारोक्ति (Exclusion) करते हुए पालने पोषण करने वाले व्यक्तयों को उस पुत्री का जैविक पिता माना।

(iv) अन्य आनुवंशिक साक्ष्यों का विश्लेषण (Analysis of Other Genetical Evidence)

पितृजता-निर्धारण में अन्य कई आनुवंशिक साक्ष्यों का प्रयोग किया जाता है जैसे- पी.टी. सी. स्वाद परीक्षण (P.T.C. Tasting), वर्णान्धता (Colour blindness), स्रावक स्तर (Secrotor Status), कर्ण खण्ड (Ear lobe), **डार्विनियन बिन्दु** (Darwin's Tubercle), हाइपर ट्राइकॉमिस (HyperTrichosis), मध्यवर्ती अंगुलि बाल (Mid–Phalangeal Hair), अंगुलियों की लघुता (Brachyphalangy) , सिर की भंवर (Occiital Whort), आदि। इन लक्षणों की वंशागति अत्यन्त स्पष्ट है। इनकी जीनी

बारम्वारता का आंकलन करना भी अपेक्षाकृत सरल है क्योंकि ये प्रायः दो विकल्पियों द्वारा वंशागत होते है जिनकी वंशागति प्रभावी तथा अप्रभावी प्रक्रिया या जीन सहलग्न प्रक्रियाओं के अनुसार होती हैं। चूकि इनमें अधिकांश लक्षणों का वर्णन अन्य अध्यायों में किया गया है। अतः यहाँ इनके विवरण है, इसकी पुनरावृत्ति उचित नहीं है। लेकिन यहाँ यह कहना प्रासंगिक होगा कि पितृजता सम्बन्धी विवादों का निस्तारण में इन साक्ष्यों की अभूतपूर्व भूमिका है। इनका प्रयोग अब प्रायः रुधिर तथा जैव रासायनिक विशेषकों के साथ किया जाता है, जिसका उल्लेख इसके पूर्व स्पष्ट किया जा चुका है।

भारत में न्यायालयों ने उक्त साक्ष्यों के आधार पर अनेकों अपराधिक क्षेत्र के विवाद तथा पितृजता सम्बन्धी समस्याओं का निस्तारण किया है। कलकत्ता विश्वविद्यालय के मानव विज्ञान विभाग में उक्त आनुवंशिक लक्षणों तथा शारीरिक विशेषकों की सहायता से एक लापता बच्चे से सम्बन्धित विवाद कुछ वर्षो पूर्व सुलझाया गया।

सन् 1992 में अपराध विज्ञान प्रयोगशाला, मधुबन, करनाल (हरियाणा) के 310 के.पी० एस कुश्वाहा, सहायक निदेशक ने स्रावक स्तर (Secretor Stutus) एवं P.T.C. स्वादन क्षमता (P.T.C. Tasting Ability) का रुधिर तथा जैव रायायकनकि लक्षणों के साथ प्रयोग करके एक पितृत्व विवाद को सुलझान में न्यायालय की मदद की।

हरियाणा के ज़िला न्यायालय में एक व्यक्ति ने अपनी पत्नी से विवाह-विच्छेद की अपील की। उसने अपनी पत्नी के विवाहेतर सम्बन्धों को उजागर करते हुए यह आरोप लगाया कि उसके विवाह के 7 महीने बाद जो पत्नी के बच्चा हुआ है, वह अवैध सन्तान है। वह विवाह के पश्चात् मात्र 3 दिन पत्नी के साथ रहा, लेकिन इन दिनों भी पत्नी से लैंगिक सम्बन्ध स्थापित भी नहीं किये, तो यह बच्चा कैसे जन्मा? दूसरी ओर, पत्नी ने पति के आरोप का खण्डन किय तथा पति पर इसके विपरीत यह आरोप लगाया कि उसके पति उसके पिता से अधिक दहेज पाने की इच्छा रखते हैं।

जब आनुवंशिक साक्ष्यों के आधार पर पति, पत्नी, एवं कथित अवैध सन्तति का परीक्षण किया गया, तो यह पाया गया कि पति एवं पत्नी की पितृजता असम्भव नहीं है। इन साक्ष्यों के आधार पर उस व्यक्ति की याचिका को खारिज कर दिया तथा उस व्यक्ति को नवजात शिशु का वास्तविक पिता माना। आनुवंशिक साक्ष्यों के

विश्लेषण को निम्न तालिका में प्रदर्शित किया जा रहा है:

आनुवंशिक-साक्ष्य प्रणालियाँ	पिता	माता	पुत्र	पितृत्व	X	Y
ABO	B	AI	B	सम्भावित	0.59	0.235
Rh	Cc De	Cc De	cBe	सम्भावित	0.5	0.522
MNS_s	M Ss	MNSs	MNss	सम्भावित	0.5	0.379
Kell	K-k+	K-k+	K-k+	सम्भावित	1.0	0.977
Duffy	$a+b^+$	$a+b^-$	$a+b^-$	सम्भावित	0.5	0.423
PGMI	1–1	1–1	1–1	सम्भावित	1.0	0.643
EsD	2–1	AI	1–1	सम्भावित	0.5	0.802
EAP	BB	BB	BB	सम्भावित	1.0	0.774
ADA	2–1	1–1	1–1	सम्भावित	0.5	0.888
AK	2–1	1–1	1–1	सम्भावित	0.5	0.893
GLO I	2–1	2–1	2–1	सम्भावित	0.5	0.500
Hb	AA	AA	AA	सम्भावित	–	–
Hp	2–2	2–2	2–2	सम्भावित	1.0	0.776
Gc	1–1	2–1	2–1	सम्भावित	1.0	0.750
Tf	CC	CC	CC	सम्भावित	1.0	0.996
स्रावक	Se Se	Se Se	Se Se	सम्भावित	1.0	0.514
कर्णखण्ड	स्वतन्त्र	सम्बद्ध (जुड़े)	स्वतन्त्र	सम्भावित	0.67	0.491

उक्त विश्लेषण में पितृत्व की सम्भावना (Likelihood of Paterhity) आंकी गयी। इसे निम्न से आंकलित किया गया:

$$\text{LOP} = \frac{x}{(x+y)}$$

(Likelihood of Paternity)

यहाँ X का तात्पर्य संदिग्ध पिता (Putatuire Father) के उन पितृत्व जीनों की सम्भावना है जो बच्चे में पारगमित हुए है। संकेत Y का अभिप्राय उस जनसंख्या के एक अनादृचिक मनुष्य के उन जीनों की सम्भावना से है जो पुत्र में प्रवाहित हो

सकते हैं। उपर्युक्त पितृत्व विवाद में LOP या पितृजता की सम्भावना का मान 93.29% है। इससे पूर्णतः प्रमाणित होता है कि उस व्यक्ति की पितृजता असम्भव बिल्कुल नहीं है।

4. गुणसूत्री-विश्लेषण-विधि

(Chromosomal Approach)

गुणसूत्रों की आकारिकी (morphology) से ज्ञात होता है कि मानव-गुणसूत्रों में बैयक्तिक विविधता (सूक्ष्म) होती है। यह वैयक्तिक विशिष्टता पीढ़ी दर पीढ़ी वंशागत होती है। इसके आधार पर विभिन्न कोशिका वैज्ञानिक तकनीकों से पितृजता सम्बन्धी विवादों को सुलझाया जा सकता है।

यदि किसी विशिष्ट आकार का कोई गुणसूत्र एक कथित अवैध सन्तति में पाया जाये तथा उसी आकार का गुणसूत्र किसी संदिग्ध व्यक्ति की कोशिकाओं में भी हो, तो यह स्पष्ट है कि वह व्यक्ति ही, वास्तविक पिता है। Y गुणसूत्र केवल पुत्रों में पाया जाता है। इसका आकार प्रकार विशिष्ट होता है यदि इस विशिष्ट आकार का Y गुणसूत्र संदिग्ध पिता में है तथा पुत्र में यह अपेक्षाकृत लम्बा है, तो उस व्यक्ति के पितृत्व को दावे के साथ नकारा जा सकता है। इसके अतिरिक्त गुणसूत्र समूह E तथा G में विविधतायें, सैटलाइट बिन्दुओं का गणगांक आदि लक्षण पितृत्व निर्धारण में प्रामाणिक साक्ष्य हैं। गुणसूत्रों से सम्बन्धित आकारिक विविधताओं तथा इनके अध्ययन की तकनीकों का उल्लेख पिछले अध्यायों में किया जा चुका है, अतः यहा इन साक्ष्यों के विस्तृत वर्णन की आवश्यकता हमें प्रतीत नहीं होती।

5. आणविक विधि

(Molecular Approach)

नवीन वैज्ञानिक तकनीकों क ...विष्कार से अब आनुवंशिक पदार्थ का आणविक विश्लेषण सम्भव हो गया है। अब यह ज्ञात हो चुका है कि सभी आनुवंशिक विविधताय, जैसे -रुधिर वर्ग, नेत्र रंग, कर्ण प्रकार, प्रोटीन विशेषक, एंजाइम प्ररुप आदि, आनुवंशिक तत्व अथवा अणु-'डी आक्सी राइबो न्यूक्लिक एसिड' (DNA) के अन्तर्गत जन्म लेती हैं। वस्तुतः डी.एन.ए. (DNA) ही सूक्ष्म आनुवंशिक अणु है जिसकी विशिष्टता के फलस्वरुप आनुवंशिक लक्षण की निरन्तरता बनी रहती है। इससे सम्बन्धित विभिन्न आधुनिक तकनीकों का वर्णन

गत अध्याय- 'आनुवंशिक अध्ययन प्रविधियाँ' में किया जा चुका है। इसलिए यहाँ उन महत्वपूर्ण तकनीकों का अति संक्षिप्त उल्लेख किया जायेगा, जो पितृजता निर्धारण तथा चिकित्सा-विधिक मामलों में प्रयोग की जाती हैं।

'डी एन ए फिंगर प्रिटिंग'
(DNA Finger Printing)

विभिन्न पारिवारिक अध्ययनों से यह ज्ञात हुआ है कि किसी एक व्यक्ति के शरीर के द्रव्य अथवा शुष्क पदार्थों जैसे- रुधिर, शुक्राणु, शुष्क-शुक्राणु, ऊतक, बाल के टुकड़े, लार, पसीना आदि के डी एन ए प्रारुप (DNA Pattern) विशिष्ट तथा आनुवंशिक होते हैं। एक विशिष्ट स्थल (Cocus) के डीएनए. खण्ड (Fragment) जिन्हें "प्रॉब" (Probe) कहा जाता है, कई पीढ़ियों तक स्थायी रचना बनाये रहते हैं। ये प्रयोगशालाओं में उत्पन्न नमी, उमस, पराबैंगनी किरणें आदि वातावरण से प्रभावित नहीं होते। लेकिन इनमें प्रायोगिक प्रक्रिया की अवधि में फँफूदी तथा जीवाणु का संक्रमण सम्भव है। अतः इस संक्रमण से बचाव के लिए DNA का 'इलेक्ट्रोफोरेसिस' तकनीक से प्रथक्करण किया जाता है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि मानव जाति में जन्म जेने के कारण हम सभी प्राणी समान जीनों को रखते हैं। लेकिन ये जीनी समानता मानव के कुल 5% डी एन ए. में होती है। दूसरे शब्दों में प्रत्येक मानव का 5% डी एन ए. समान हो सकता है लेकिन शेष 95% डी एन ए. उस मानव की विशिष्टता को बताता है। ये डी एन ए. विशिष्ट क्षार-प्रारुप रखते हैं जिसमें कुछ क्षारों की अधिकांशतः आनुवंशिक पुनरावृत्ति होती है। एक अनुमान के अनुसार यह क्षार-पुनरावृत्ति 9-40 लघु क्षार युग्मों में, 200–300 मध्यवर्ती क्षारयुग्मों में, तथा 1000 से ऊपर लम्बे क्षार युग्मों में होती है। ये क्षार-युग्मों की लघु पुनरावृत्ति जो DNA का एक 'लघुतम खण्ड' (Short Fragment) है, इन्हें 'मिनी सैटेलाइट' (Minisatellites) कहते हैं। इनमें से प्रत्येक क्षार के लघु अनुक्रम की हजारों आवृत्तियों रखते हैं। ये सूक्ष्म सैटेलाइट अत्यधिक परिवर्तनशील होते हैं तथा एक युग्मनज-यमजों (Identical Twins) अतिरिक्त किन्हीं दो व्यक्तियों में समानता प्रकट नहीं करते। इन्हें 'बैरियेबल नम्बर टेण्डम् रिपीट' (VNTR) कहते हैं। चूंकि ये अनुक्रम संख्यायें गैर-सम्बन्धी व्यक्तियों की एक समान नहीं होती, इसलिए इन दो व्यक्तियों के डी एन ए. से

उत्पन्न डी एन ए. खण्ड (DNA Probe) भी विषम लम्बाई के होते हैं। ये विषम लम्बाई के 'डी एन ए' 'जेल इलेक्ट्रोफोरेसिस तकनीक' से प्रथक किये जाते हैं। अवलोकन करने से चूंकि ये 'अंगुलि छाप' (Fingure Prints) के सदृश प्रतीत होते हैं इसलिए सामान्य भाषा में इन डी एन ए प्रारुपों को 'डी एन ए. फिंगर प्रिंट्स' या डी एन ए. प्रोफाइल (D N A Profile) कहा जाता है तथा सम्पूर्ण तकनीक को 'डी एन ए. फिंगर प्रिंटिंग' (DNA Fingure Printing) या 'डी एन ए प्रोफाइलिंग' (DNA Profiling) कहते हैं। पितृजता या अन्य चिकित्साविधिक विवादों के निस्तारण में यह एक विश्वसनीय तकनीक है।

इस तकनीक का महत्व और भी अधिक बढ़ गया है जब से 'पॉलीमरेज चेन रिऐक्सन' (P.C.R) के द्वारा डी एन ए. प्रारुप प्राप्त कर लिये जाते हैं। इस प्रक्रिया में डी एन ए. की अल्पतम मात्रा भी विश्लेषण के लिए पर्याप्त होती है।

उदाहरण

अपराधिक साक्ष्यों में डी एन ए साक्ष्यों का सर्वप्रथम प्रयोग 1987 में ब्रिस्टल में स्थित न्यायालय, (इंग्लैण्ड) में किया गया। भारत में अभी शीघ्र ही सन् 1995 में "नैना साहनी तन्दूर हत्याकाण्ड" में इसका प्रयोग किया गया। इसमें नैना के हत्यारों ने उसे तन्दूर की भट्टी में जला कर राख कर दिया था लेकिन राख के ढेर से प्राप्त अस्थियों के टुकड़े से 'डी एन ए फिंगर प्रिंट्स' प्राप्त किये गये जो नैना के माता पिता के 'डी एन ए फिंगर प्रिंट्स' से मेल खाते थे। अतः डी एन ए. साक्ष्य के आधार पर नैना की हत्या की पहचान की जा सकी।

सन् 1989 में मद्रास के उच्च न्यायालय में एक दम्पति ने यह याचिका दायर की कि उसकी पुत्री - लक्ष्मी (4 वर्ष) 10 माह पूर्व से लापता है जिसकी प्रथम सूचना स्थानीय थानाक्षेत्र में दी गयी थी। उसे एक अन्य दम्पति के घर में 'मेरी' नाम से रखा जा रहा है। दूसरी ओर, दूसरे दम्पति ने 'मेरी' को अपनी पुत्री कहकर इसका खण्डन किया। इस विवाद को सुलझाने के लिए न्यायालय ने सी सी एम बी प्रयोगशाला हैदराबाद से रुधिर परीक्षण करने को कहा। यहाँ पर इस लड़की, पक्ष तथा विपक्ष के दम्पतियों तथा उस लड़की के जुड़वा भाई के रुधिर प्रतिदर्श से उपयुक्त आणविक तकनीकों से 'डी एन ए प्रिंट्स' BKM प्रॉब P_{32} रेडियोधर्मी तत्वों

का प्रयोग करते हुए प्राप्त किये गये। इसके विश्लेषण से यह निर्धारित किया गया कि वह लड़की वर्तमान समय में जिन माता-पिता के साथ निवास कर रही है, उनकी वास्तविक पुत्री है तथा उसका न्यायालय में याचिका दायर करने वाले दम्पतियों की वास्तवित पुत्री होना सम्भव है।

2. आनुवंशिक परामर्श (Genetic Counselling)

अर्थ

"जब कोई आनुवंशिक विशेषज्ञ या चिकित्सक किसी दम्पत्ति या रोगी या उसके निकट सम्बन्धियों को अगली पीढ़ी में वंशागत होने वाली विकृतियों तथा उससे सम्बन्धित खतरे की सम्भावनाओं, बचाव के उपाय आदि कल्याणप्रद सुझाव देता है, तो इस प्रक्रिया को "आनुवंशिक परामर्श" (Genetic Counselling) कहते हैं।"

सामान्यतया मानव समाज तथा परिवार में शरीर के कार्य अथवा रचना से सम्बन्धित नयी-नयी समस्यायें दृष्टिगोचर होती रहती है। इसके निदान के लिए प्रायः हम चिकित्सक की सलाह से तत्सम्बन्धित औषधि लेते हैं। लेकिन कभी-कभी वे शारीरिक समस्यायें पुत्र-पुत्रियों तथा अगली पीढियों में भी प्रकट होती है। ऐसी स्थिति में पूरा परिवार मानसिक रुप से परेशान होने लगता है। यदा-कदा इस बीमारी से प्रभावित व्यक्ति या 'रोगी' को अनेकों पारिवारिक सामुदायिक तथा सामाजिक तथा सामाजिक भेदभाव एवं अश्प्रश्यता का शिकार भी होना पड़ता है। जिससे यह एक परिवार की ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण समुदाय की समस्या बन जाती है। लेकिन यदि हम इन जैविक समस्यायों के निदान हेतु किसी ऐसे चिकित्सक या विशेषज्ञ से सम्पर्क स्थापित करते हैं जिसे मानव आनुवंशिकी का ज्ञान हो, तो इन पारिवारिक समस्याओं का समाधान सरल विधियों से हो जाता है। दूसरे शब्दों में, वह जैविक बीमारी जिसकी कई पीढ़ियों तक निरन्तरता बनी रहे, ता इस बीमारी का आनुवंशिक कारण समझकर किसी आनुवंशिक चिकित्सक या सलाहकार (Genetic Doctor or Counsellor) से इसके निदान का परामर्श लेना ही यथोचित्त है क्योंकि आनुवंशिक चिकित्सक कथित बीमारी के विभिन्न पहलुओं पर विचार करने के उपरान्त उसके निदान की सलाह रोगी या उसके निकट सम्बन्धियों को देता है जिससे कथित रोग को यथा सम्भव नियन्त्रित किया जा सकता है।

अतः आनुवंशिक परामर्श को यदि सरल शब्दों में परिभाषित करें तो हम कह सकते है कि 'आनुवंशिक परामर्श मानव आनुवंशिकी की एक वह मानव कल्याण की विधि है जिसके माध्यम से कोई विशेषज्ञ या चिकित्सक किसी वंश परम्परागत बीमारी के निदान हेतु रोगी, या उसके निकट सम्बन्धियों को परामर्श देता है।' यह सुजनानिकी (Eugenics) जीन चिकित्सा (Genetherapy) तथा जीन अभियान्त्रिकी (Genetic Engineering) से भिन्न प्रणाली है जिसके माध्यम से आनुवंशिक चिकित्सक किसी आनुवंशिक रोग के प्रभाव को उत्तरोन्तर कम करता है।

ई०इ०इमरी (E.E.Emery) के अनुसार 'आनुवंशिक परामर्श किसी दम्पत्ति के विभिन्न सम्बन्धियों में पाया जाने वाले विकार का अध्ययन तथा उसके खतरे की सम्भावना के आंकलन से सम्बन्धित है, जिसके परिप्रेक्ष्य में वे में वे (दम्पत्ति) उस विकार की पुनरावृत्ति के प्रति सूचित किये जाते हैं।

कर्ट स्टर्न डा० इमरी से भिन्न दृष्टिकोण रखते हैं। उनके अनुसार "आनुवंशिक परामर्श चिकित्सा आंनवंशिकी का वह भाग है, जिसके माध्यम से आनुवंशिकी एवं बीमारी के अन्तर्सम्बन्धों की विवेचना की जाती है तथा जनसमूहों से प्राप्त सूचनाओं का मानव-कल्याण में उपयोग किया जाता है।"

आनुवंशिक परामर्श के मुख्य लक्षण

Saliant Features of Genetic Counselling)

नार्मन वी. राथवेल (Notman V. Rothwell, 1977) आनुवंशिक परामर्श को एक 'मानवसेवा' का एक स्वरुप मानते हैं जो आयुवैज्ञानिक एवं परीक्षणात्मक विधियों से निकटवर्ती सम्बन्ध रखती है। इनके अनुसार आनुवंशिक परामर्श के निम्नलिखित में मुख्य लक्षण होते हैं :

1. सहकारी एवं संयुक्त प्रयास

(Cooperative and Combined Efforts)

आनुवंशिक परामर्श एक सहकारी सेवा है जिसमें एक से अधिक विशेषज्ञों के संयुक्त प्रयास आवश्यक है। इसमें आनुवंशिक विशेषज्ञ प्रशिक्षित कर्मी, चिकित्सक, तथा समाज कार्यकर्ता आदि संयुक्त रुप से किसी आनुवंशिक बीमारी का समाधान खोज पाने में समर्थ होते हैं। अतः परामर्श एक टोली कार्य (Team Work) है किसी एक व्यक्ति के द्वारा सम्पन्न होने वाला कार्य नही है क्योंकि आनुवंशिक सलाहकार

को अन्य क्षेत्र के विशेषज्ञों जैसे- चिकित्सक, जैव-रसायन विद अथवा कोशिका/गुणसूत्र विशेषज्ञ विशेषज्ञ, सामुदायिक नेता तथा समाजकार्यकर्ता आदि के प्रयासों की आवश्यकता होती है। परामर्शदाता या आनुवंशिक विशेषज्ञ को किसी विकृति Disorder) के त्रुटिरहित परीक्षण के लिए एक कुशल चिकित्सक (Competant Physician) की आवश्यकता होती है। कभी-कभी रोग की आनुवंशिक क्रियाविधि संदिग्ध होती है। उदाहरण के लिए मांसपेशीय विकलांगता विशेषज्ञ विशेषज्ञ, सामुदायिक नेता तथा समाजकार्यकर्ता आदि के प्रयासों की आवश्यकता होती है। परामर्शदाता या आनुवंशिक विशेषज्ञ को किसी विकृति Disorder) के त्रुटिरहित परीक्षण के लिए एक कुशल चिकित्सक (Mascular Dystrophy) दो स्वरुपों में वंशागत होती है- लिंग सहलग्न तथा अप्रबल अलिंगसूत्री प्ररुप। ऐसी स्थिति में किसी विशेष घटना में इनमें से कौन वंशागति प्रकार का अनुसरण हो रहा है, यह सुनिश्चित कर पाना कठिन एवं भ्रामक हो सकता है, अतः त्रुटि से बचने के लिए किसी योग्य गुणसूत्र विशेषज्ञ या जैव रसायन विधि की सहायता से उस रोग का रासायनिक या गुणसूत्री परीक्षण आवश्यक होता है। इसके अतिरिक्त, उस रोग के निदान हेतु सभी निर्देशों का पालन करवाने हेतु किसी सुयोग्य सामुदायिक नेता तथा समाजकार्यकर्ताओं का सहयोग आवश्यक है।

2. आनुवंशिक सलाहकार की मीमांसा एवं सूझ-बूझ
(Situation Analysis and Vision of Genetic Counsellor)

समस्याजनित परिस्थितियों की सूझ-बूझ, सलाहकार के लिए अत्यावश्यक है। उसे मानव के विभिन्न आनुवंशिक विकारों का समसामयिक ज्ञान होना चाहिए। उसे इन हजारों आनुवंशिक रोगों की जटिलताओं, दर्द आदि के प्रति सचेत होना चाहिए। अच्छे सलाहकार बनने के लिए भिन्न- 2 मानव के मनोविज्ञान से परिवार सम्बन्धियों तथा समुदाय की भावनायें प्रत्यक्ष रुप से सम्बद्ध होती है। अतः आनुवंशिक परामर्श का अस्तित्व सलाहकार की कार्य क्षमता एवं सूझबूझ पर निर्भर करता है।

3. आनुवंशिक जटिलताओं के प्रचार-प्रसार का प्रबन्ध
(Publicity Management of Genetic Disorders)

जनसामान्य प्रायः विकारों से अनभिज्ञ रहता है। कई शिक्षित लोग भी

आनुवंशिकी के इस उपयोगी क्षेत्र से अपरिचित होते हैं। इसलिए वे व्यक्ति जो आनुवंशिक विकारों के शिकार हैं, वे भी अपनी समस्या तब तक गम्भीरता से नही लेते जब तक कोई दूसरा उन्हें सचेत न करे। कभी-कभी लोगों में इन विकारों को छुपानें की भावना भी पायी जाती है, तथा सामाजिक कुरीतियां भी इन वकारों से जटिलतायें उत्पन्न करती हैं। इसलिए आनुवंशिक परामर्श के विकास के लिए निम्न प्राथमिकतायें आवश्यक है :

(i) आनुवंशिक जटिलताओं सम्बन्धी तथ्यों का प्रचार व प्रसार,

(ii) जनता को आनुवंशिक विकारों से सम्बन्धित शिक्षा देना, तथा

(iii) किसी विशेष जनसंख्या में प्रकाशित आनुवंशिक विकारों की आवृत्ति तथा उसके खतरों से परिचित कराना।

4. उच्च खतरे से प्रभावित व्यक्ति की खोज (Search of High risk Individuals)

उच्च खतरे से प्रभावित व्यक्ति (High risk individuals) की खोज आवश्यक है। यह कार्य चिकित्सालयों, आयुर्विज्ञान संस्थानों, समुदायों के संदिग्ध रोगियों की जांच से की जाती है। रोग के पता हो जाने पर उसके खतरे की सक्भावना (उच्च अथवा निम्न) का आंकलन वंशावली आनुवंशिकता के नियमों तथा सांख्यकी की परिनियमावली से ज्ञात की जानी चाहिए। इस खोज को तब एक दिशा मिल जाती है जब सलाहकार विशिष्ट आनुवंशिक विकारों के परिप्रेक्ष्य में कदम उठाता है। उदाहरण स्वरुप यदि उसे यह ज्ञात है कि अफ्रीका मूल के निवासियों में हसियांकार कोशिकीय रक्ताल्पता (Sickle Cell Anaemia) भूमध्यसागरीय वंशजो में थैलासीमिया (Thalassemia), यूरोपियन यहूदियों में टे-शैक्स आदि की उच्च सम्भावनायें हैं, तो सलाहकार का "आनुवंशिक परामर्श" प्रभावी साबित होता है।

5. प्राथमिक उपचार तथा सेवा की भावना (First aid and Service Motto)

किसी विशेष रोग से पीड़ित व्यक्तियों का प्राथमिक उपचार तथा उसके सेवा की भावना आनुवंशिक परामर्श का आवश्यक तत्व है। इन परिस्थितियों में रोगी का सलाहकार के प्रति विश्वास बढ़ता है तथा रोगी एवं उसके सम्बन्धी वास्तविक लक्षणों व तथ्यपरक सूचनाओं को सरलता से प्रदान करता है।

6. निदान की सम्भावनाओं एवं विकल्पों का विश्लेषण
(Analysing Options and Possibilities of Diagnosis)

रोगी जब आनुवंशिक परामर्श की मांग करे या उसकी आवश्यकता अनुभव करे, तो उस रोग के निदान एवं वैकल्पिक अवस्थाओं की पूर्व व्याख्या की जानी चाहिए। रोगी एवं उसके सम्बन्धियों का आनुवंशिक परामर्श के प्रति विश्वास बढ़े, इसलिए सलाहकार को सभी वैकल्पिक अवस्थाओं का पूर्व विवरण दिया जाता है। उदाहरण के लिए यदि कोई रोगी हीमोफीलिया (Hemophilia) रोग से ग्रसित हैं। इस रोग की जटिलताओं को जानने पर उस रोगी के सम्बन्धी भी भयभीत है। इन सम्बन्धियों में से रोगी का भाई सलाहकार के पास आकर अपने भय का कारण बताता है। सलाहकार उस रोग के परीक्षण के बिना इसकी सम्भावनाओं को आंकलित करता है तथ पूर्व अनुसंधानों के प्रकाश में उस व्यक्ति को व रोगी की वंशागति-प्रारुप को सक्षिप्त परिचय देते हुए यह सलाह देता है कि वह भविष्य में इस रोग से पीड़ित नहीं होगा और न ही उसके बच्चों में यह रोग प्रकट होगा क्योंकि वह जिस X गुणसूत्र को अपनी माँ से प्राप्त किया है वह सामान्य है, अतः वह इस रोग की परिधि से परे है। दूसरी ओर वह उस व्यक्ति के रोगी भाई को उस बीमारी के प्रति सचेत करता है तथा उसके खतरे की पूर्व-सम्भावना को व्यक्त करता है।

महत्व (Significance)

आनुवंशिक परामर्श, आनुवंशिकी की एक उपयोगी विधि है। यदि इसे मानव कल्याण में उपयोग किया जाये तो अनेकों जानलेवा आनुवंशिक बीमारियों से बचा जा सकता है, तनाओं से मुक्त हुआ जा सकता है तथा जन्मजात विकृतियों की पुनरावृत्ति को रोका जा सकता है। लेकिन दुर्भाग्यवश इस विधि का समुचित विकास नहीं हो सका है। संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, आदि विकसित देशों में भी इसका सीमित प्रयोग हुआ है। भारत तथा चीन जैसे विशाल देशों में इसका प्रयोग नगण्य है। अफ्रीकी, दक्षिणी अमेरिका तथा एशियाई अल्प विकसित तथा विकासशील देशों में इस विधि के प्रयोग के विषय में लोग अनभिज्ञ हैं। अतः इन देशों में जहाँ इस विधि के उपयोग की पर्याप्त सम्भावनायें हैं। वहाँ की सरकार तथा जनता का ध्यान आकृष्ट करके मानव समाज की सेवा तथा जीविकोपार्जन का शाधन बनाया जा सकता है।

आनुवंशिक बीमारियाँ तथा विक्रतियाँ प्रायः घातक तथा औषधिविहीन होती है। इनका उपचार सरलता से सम्भव नहीं है। प्रायः आयुर्वैज्ञानिक औषधियों से इनके प्रभाव, जटिलताओं तथा पीड़ा को एक निश्चित अवधि के लिए कम किया जा सकता है लेकिन इन विधियों से जड़ से समाप्त नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिए हीमोफीलिया से पीड़ित व्यक्ति के कटने पर निरन्तर बहने वाले रुधिर की हानि की पूर्ति रक्ताधान से की जा सकती जिससे सम्भव है कि रोगी मृत्यु से बच जाये, लेकिन इस रोग पीड़ित व्यक्ति की सन्ततियों में पारगमन को किसी औषधि या शल्य चिकित्सा से रोका नहीं जा सकता। इसी प्रकार 'एड्स' (AIDS) आनुवंशिक तथा संक्रामक जानलेवा बीमारी है, इसका किसी औषधि प्रणाली से इलाज अभी तक सम्भव नही हो सका है। अतः जिन आनुवंशिक विकारों में उपयुक्त उपचार सम्भव नहीं है, उनके लिए आनुवंशिक परामर्श एकमात्र बचाव का उपाय है। जिन विकारों के क्षणिक एवं सावधि उपचार भी हैं, उनके लिए भी आनुवंशिक परामर्श बचाव का निर्णायक उपाय है।

आनुवंशिक परामर्श में निरोगी एवं स्वस्थ्य सन्तति की कामना प्रायः रोगी या उसके सम्बन्धियों के द्वारा की जाती है। इससे परिवार कल्याण एवं जनसंख्या नियन्त्रण भी होता है। उदाहरणस्वरुप एड्स की रोकथाम हेतु निरोध या कण्डोम के प्रयोगों की सलाह दी जाती है जिससे इस रोग के बचाव के अतिरिक्त जनसंख्या वृद्धि में कमी अवैध सन्तानों के जन्मदर में गिरावट आदि मानव समाज की समस्यायें भी अपघटित होती हैं।

उद्देश्य (Aims)

आनुवंशिक परामर्श के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित है:

(i) आनुवंशिक विकारों तथा विकृतियों की विभिन्न तकनीकों से खोज करना।

(ii) उस विकार से सम्बन्धित चिकित्सकीय लटिलताओं, पीड़ा आदि की व्याख्या, रोगी, उसके माता-पिता या निकट सम्बन्धियों से करना।

(iii) किसी परिवार में उस विशिष्ट रोग की पुनरावृत्ति की सम्भावना का पता करना, तथा

(iv) उस रोग के पुनः घटित होने के परिप्रेक्ष्य में उसके रोकथाम, बचाव तथा विकल्प का सुझाव देना।

आनुवंशिक परामर्श कैसे दे?
(Techniques of Genetic Counseling)

आनुवंशिक परामर्श देने की तकनीक किसी व्यक्ति (आनुवंशिकवाद) की विशेषज्ञता तथा उसकी टोली के सदस्यों की कार्यकुशलता पर आधारित होती है। परामर्श का विभिन्न अवस्थाओं में कुशल प्रबन्धन इसकी अनिवार्य आवश्यकता है। कुशाग्र एवं दूरदर्शी सलाहकार इस क्षेत्र को नवीनतम ऊँचाइयाँ दे सकता है। आनुवंशिकता परामर्श देने में निम्नलिखित तकनीकों तथा कार्ययोजना प्रायः प्रयुक्त होती है:

1. आनुवंशिक सर्वेक्षण (Genetoc Survey)
2. चिकित्सकीय परीक्षण (Medical Examination)
3. रासायनिक विश्लेषण (Chemical Analysis)
4. वंशावली एवं पारिवारिक इतिहास (Pedigree and Family History)
5. पुनर्घटित खतरे का विश्लेषण (Risk recurrence Analysis)
6. मनोचिकित्सा (Psycho Therapy)
7. उपचार, बचाव के उपाय तथा रोगी की देखरेख (Cure, Preventive methods and Follow-up Action).

1. आनुवंशिक सर्वेक्षण (Genetic Survey)

आनुवंशिक विकारों का सर्वेक्षण दो विधियों से किया जा सकता है: क्षेत्रकार्य विधि, द्वितीय आँकड़ा विधि तथा प्रयोगशाला विधि। इनमें क्षेत्र कार्य विधि (Field Work Method) अत्यधिक जटिल है। इसमें सलाहकर्ता विभिन्न क्षेत्रों की संदिग्ध बीमारियों को आकड़े क्षेत्रभ्रमण, अवलोकन, पूंछतांछ आदि मानववैज्ञानिक क्षेत्रकार्य की तकनीकों से एकत्रित करता है। आवश्यकता पड़ने पर कुछ विशेष बीमारियों का अस्थायी प्रयोगशाला से परीक्षण भी करता है। इस अध्ययन में प्रायः वह प्रत्येक परिवार का एक सदस्य ही चुनता है जिसका विस्तृत विवरण तथा पतिदर्श एकत्रित करता है। कभी-कभी वह किसी विशेष बीमारी के लिए उस क्षेत्र के समस्त व्यक्तियों का अवलोकन तथा प्राथमिक परीक्षण करता है।

द्वितीय आंकड़ा संग्रह विधि (Second Hand Data Collection Technique) अपेक्षाकृत सरल लेकिन अपूर्ण सर्वेक्षण है। इससे एक क्षेत्र के विभिन्न चिकित्सालयों,

चिकित्सा केन्द्रों, चिकित्सालयों आदि से अधिक पायी जाने वाली बीमारियों, उनकी जटिलताओं, प्रकोप तथा उनकी बारम्बारताओं को एकत्रित किया जाता है। इसके अतिरिक्त सरकारी, अर्द्धसरकारी तथा स्वयंसेवी संस्थाओं आदि से भी क्षेत्रवार बीमारियों से सम्बन्धित समस्त सूचनायें एकत्रित की जाती है।

प्रयोगशाला विधि विश्वसनीय लेकिन अत्यधिक सीमित सर्वेक्षण है। इसमें सर्वेक्षण कार्य परामर्शकेन्द्र (Counsclling Centere) पर ही किया जाता है। जितने रोगी इस केन्द्र पर किसी कारण से आते हैं, उनकी बीमारियों का सर्वेक्षण होता है, एक जनसंख्या के शेष व्यक्ति अछूते रहते है। आवश्यकता पड़ने पर रोगी के निकटवर्ती सम्बन्धियों में भी उस बीमारी की आवृत्ति ज्ञात की जाती है। आनुवंशिक सलाहकार प्रायः इसी विधि से बीमारियों का सर्वेक्षण करता है क्योंकि इससे वह अनावश्यक श्रम की बचत कर लेता है तथा रोगी की रुचि परामर्श के प्रति सरलता से विकसित कर सकता है।

प्रमुख विकारों का प्रचार-प्रसार (Publicity of Major Defects)

प्राथमिक सर्वेक्षण से प्राप्त प्रमुख विकरों का प्रचार-प्रसार तथा किसी विशेष क्षेत्र में आवश्यक है। इसके लिए सलाहकार विभिन्न प्रचार-प्रसार माध्यमों की सहायता लेता है। विभिन्न पोस्टर, पत्र, हैण्डआउट्स, हैण्डलेट्स आदि को मुद्रित करवाकरके जनजागरण पैदा किया जाता है। इन माध्यमों से इन विकरों के फैलने की सम्भावनाओं तथा बचाव के उपायों का संक्षिप्त उल्लेख भी किया जाता है। विकरों से सम्बन्धित पूछतां के सकारात्मक समाधान हेतु अच्छा तो यह होगा कि एक प्रकोष्ठ (Cell) भी स्थापित की जायें। भारत तथा अनेकों देशों की महानगरियों में अब इस प्रकार के परामर्श प्रायः चिकित्सा केन्द्रों पर उपलब्ध होते हैं। सलाहकार को चाहिए कि अपने केंद्र की परामर्श विशेषज्ञता को जनता तक विभिन्न प्रचार माध्यमों, कार्यशालाओं, शिविरों आदि से पंहुचाये तथा उसका केन्द्र प्रत्येक पल जनसेवा के लिए तत्पर रहे।

2. चिकित्सीय परीक्षण (Medical Examination)

जब किसी एक विशेष रोग के उपचार हेतु कोई रोगी, परामर्श केन्द्र से सम्पर्क स्थापित करे, तो उसके रोग उचित का परीक्षण परामर्श की प्राथमिक आवश्यकता है। सलाहकार किसी आनुवंशिक विकार के विशिष्ठ लक्षणों के आधार पर परामर्श नहीं देता। वह उस रोग की पीड़ा, जटिलता, अन्तर्सम्बन्ध, तथा उससे सम्बन्धित

शारीरिक अथवा मानसिक विकृति आदि का विस्तार से अध्ययन करने के पश्चात् उस रोग के वंशागति प्रारुप का निर्धारण करता है। शारीरिक तथा जैविक लक्षणों का परीक्षण किसी योग्य चिकित्सक की सहायता से किया जाता है। चिकित्सक रोगी के शरीर की विभिन्न कार्य प्रणालियों (Functionaries or systems) का गहनता से परीक्षण करता है तथा इन प्रणालियों की जैविक विसंगतियों से सम्बन्धित राय (Opinion) सलाहकार को देता है। आवश्यकता पड़ने पर रोग से सम्बन्धित उत्तेजना तनाव आदि के प्रभाव को घटाने के लिए रोगी को प्राथमिक औषधि (First Aid) भी प्रदान की जाती है।

सलाहकार किसी योग्य चिकित्सक से राय इसलिए प्राप्त करना चाहता है क्योंकि वह यह जानता है कि समान लक्षण (Symptioms) प्रायः कुछ ऐसे विकारों से सम्बद्ध होते हैं। जिनकी वंशागति भिन्न-भिन्न होती है। उदाहरण के लिए मांसपेशी विकलांगता (Mascular Dystrophy) लिंग सहलग्न एवं अंलिगसूत्री अप्रबल दोनों स्वरुपों में व्यक्त होती है लेकिन गहन एवं विस्तृत चिकित्सीय परीक्षण के आधार पर इसमें मौलिक भेद पहचान में आ जाते हैं। अतः रोग के विसंगतियों के साधारण विवरण के आधार पर परामर्श देना उचित नहीं है, जब तक किसी रोग का विस्तृत चिकित्सीय परीक्षण न करवा लें।

3. रासायनिक तथा आणविक विश्लेषण (Chemical and DNA Analysis)

आनुवंशिक विकारों की रोकथाम में जैव रासायनिक परीक्षण या निर्धारण (Biochemical Diagnosis or detection) प्राथमिक भूमिका निभाते हैं। यदि उचित समय पर रोग का सटीक निर्धारण हो जाये तो इसके मृत्युदायक परिणामों तथा उपचार विहीन विकलांगताओं से बचाव किया जा सकता है। उदाहरण के लिए 'फिनाइल कीटोनूरिया' (Phenyl Ketonuria) से जन्म के पूर्व तो कोंई क्षति नहीं होती लेकिन जन्म के तुरन्त बाद यदि "फिनाइललैमाइन (Phenylalamine)" एक अमीनों अम्ल बराबर उपयोग किया जायें तो एक एन्जाइम शरीर में उपस्थित होता है तथा उस शिशु को दैनिक भोजन देने पर वह मानसिक रुप से विक्षिप्त (Mental retard) हो जाता है। वह इस रोग को 'PKU' के नाम से पुकारते है, जो "फिनाइललैमाइन-हाइड्रोजाइलेज़" (Phenylalamine Hydroxylase) एन्जाइम की कमी से सम्बद्ध होता है। इसकी वंशागति "अलिंगसूत्री अप्रबल" प्रारुप से होती है। संयुक्त राज्य अमेरिका में इसकी आवृत्ति प्रति 10 हजार है।

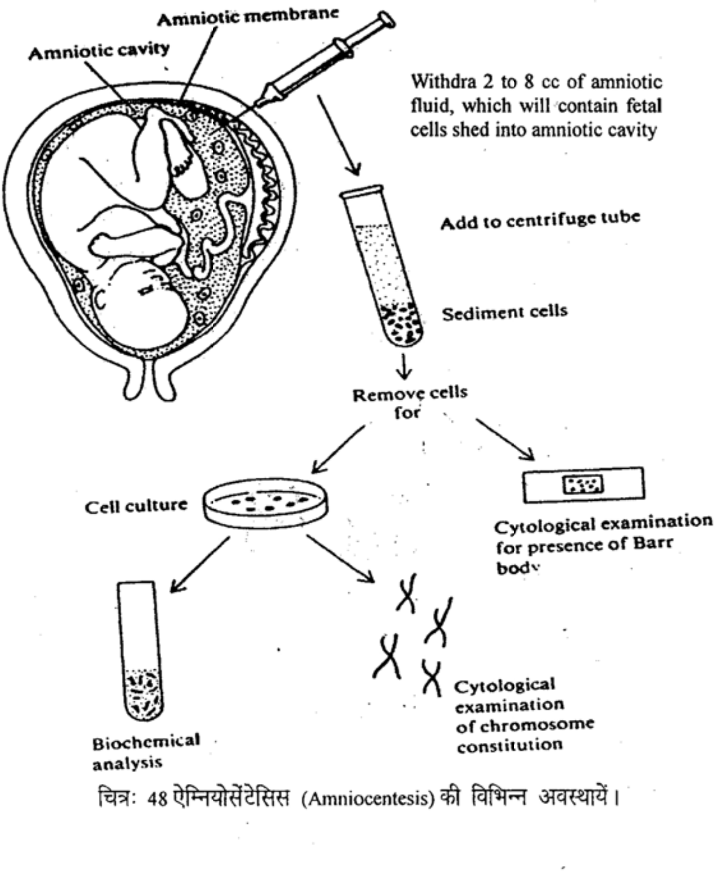
इसी प्रकार "G–6–PD" एन्जाइम (Glucose–6–Phosphate Dehydrogenase) की कमी एक आनुवंशिक विकार है जिसकी वंशागति अप्रबल लिंग सहलग्न प्रकार से होती है। इसलिए यदि किसी व्यक्ति को यह ज्ञात हो कि वह उस जीन का वाहक है जिससे निर्धारित एन्जाइम की कमी का शिकार हुआ है तो वह किसी विशेष द्रव्य (Drugs) के प्रयोग का परित्याग कर दे जिससे इसकी गम्भीर प्रतिक्रिया से बच सकता है।

संयुक्त राज्य अमेरिका के एक संस्थान- नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ हेल्थ (National Institute of Health) ने जैव रासायनिक परीक्षण से एक आनुवंशिक विकार- ''गोचर रोग'' (Gaucher's Disease) का पता लगया जिससे लगभग 1000 व्यक्ति प्रभावित थे। ''टे-सैक्स रोग'' (Tay–Sacks disease) के समान यह भी एक बसा जनित असामान्य कोशिका की आन्तरिक गांठ से बनता है। ये गांठ एक कोशिकीय एन्जाइम की कमी के फलस्वरुप बनती है। इस एन्जाइम- 'ग्लूकोसेरीब्रोसिडेज' (Glueocerebrosidase) की अनुपस्थित से रुधिर तथा अन्य शारीरिक ऊतकों में बसा की गुत्थी बन जाती है। प्रभावित पुरुष का यकृत (Liver) तथा प्लीहा (Spleen) की अभिवृद्धि हो जाती है, अस्थियां कमजोर हो जाती है घावों मसूड़ों आदि से रक्त रिसता रहता है, तथा रोगी अन्ततः रक्ताल्पता तथा तेज शरीर दर्द का शिकार हो जाता है। यह रोग अप्रबल जीन के द्वारा वंशागत होता है। इसकी रोकथाम के लिए उक्त संस्थान ने उत्तरदायी एन्जाइम का एक इंजेक्शन बनाया। इसके लेने से सम्बन्धित जटिलतायें समाप्त हो जाती है। रसायन विदों के इस प्रयोग से अन्य आनुवंशिक विकारों- विशेषकर उन विकारों जिनकी आणविक स्थिति का ज्ञान है उनके जैव-रासायनिक उपचार की सम्भवनायें बढ़ी हैं।

इन विकारों का निर्धारण प्रायः जन्मपूर्व एवं जन्मोपरान्त किया जाता है। विकारों का जन्मपूर्व विश्लेषण (Prenatal detection) परामर्श हेतु निर्णायक कार्य करता है। इससे वे मृत्युदायक तथा घातक बीमारियों से ग्रसित भ्रूण का ऐच्छिक गर्भपात कराकर इनकी रोकथाम की जा सकती है। गर्भ में इन बीमारियों का पता ''एक तकनीक ऐम्नियोसेंटेसिस'' (Amniocentosis) से किया जाता है।

उदाहरण के लिए ''डाउन सिंड्रोम'' (Down's Syndrome) एक घातक आनुवंशिक

विकृति है जो गुणसूत्र-15–21 के स्थानान्तरण से उत्पन्न होती है। जब ऐम्नियॉसेंटेसिस तकनीक से एम्नियॉन द्रव का कोशिकीय संर्वधन (Cell Culture) करने पर यदि गुणसूत्रों की संख्या 46 है जिसमें दो 21 वें तथा एक "15–21" है, तो निस्संदेह वह भ्रूण "डाउन बच्चे" का हैं। सलाहकार को जब इस जांच की सूचना मिलती है तो वह माता-पिता को इसके गर्भपात का परामर्श देता है। सलाहकार 35 वर्ष से अधिक आयु की गर्भवती महिलाओं को एम्नियॉसेन्टेसिस द्वारा गर्भ-परीक्षण कराने का परामर्श देता है इस आयुवर्ग की माताओं के गर्भ में इस रोग की सम्भावना अधिक होती है। इसीप्रकार यदि दोनां माता पिता "टे-सैक्स" विकार के अप्रबल जीन वाहक होते हैं। तो गर्भवती मां को "ऐम्नियॉसेंटेसिस की सलाह अवश्य देनी चाहिए।



चित्रः 48 ऐम्नियोसेंटेसिस (Amniocentesis) की विभिन्न अवस्थायें।

इसी प्रकार यदि एक माँ ने "हीमोफीलिया" रोग से ग्रसित बच्चे को जन्म दिया हो तो इस रोग की वंशागति प्रकार के आधार पर एक सलाहकार उसके अगले गर्भ के लिए सम्नियॉसेंटेसिस परीक्षण आवश्यक बताता है। यद्यपि इस रोग का ज्ञान उक्त परीक्षण से नहीं हो पाता फिर भी यदि गर्भ का लिंग निर्धारण होता है। तो इससे माता-पिता को यह पता हो जाता है कि गर्भ लड़की का है या लड़के का। लड़के का गर्भ होने पर हीमोफीलिया से पीड़ित होने के 50 प्रतिशत सम्भावना होती है। लड़की का गर्भ होने पर खतरे की कोई सम्भावना नहीं होती। एक सलाहकार लड़के का गर्भ होने पर इससे बचाव का उचित विकल्प (गर्भपात) का सुझाव देता है जिसके फलस्वरुप पति-पत्नी भविष्य के तनावों से मुक्त होते हैं।

डी०एन०ए० संवर्घन तकनीक (DNA Recombination Technology) के विकसित होने से आज 3000 से अधिक आनुवंशिक विकारों को "डी०एन०ए० निर्धारक प्रॉब्स" (DNA Diagnostic Probes) विकसित किये जा चुके।

ये रेडियोंधर्मी विधि से अंकित DNA खण्ड हैं जो आनुवंशिक विकारों के समान 'क्षार अनुक्रण' रखते हैं। यह 'निर्धारक प्रॉब्स संदिग्ध व्यक्ति या रोगी के डी०एन०ए० से संकरित हो गया तो वह रोगी उस विशिष्ट विकार से ग्रसित है। इन 'प्रॉब्स' के प्रयोग से पहले संवर्धित कर लिया जाता है क्योकि एक जीन (प्रॉब्स) अंकित संकरण हेतु पर्याप्त नहीं होता। 'प्रॉब्स' का एवंर्धन PCR तकनीक (Polymerase Chain Reaction) से किया जाता है।

अधिकांश आनुवंशिक विकारों के लिए 'जीन मानचित्रण' (Gene Mapping) हो चुका है। इनकी गुणसूत्री संख्या एवं स्थिति ज्ञात हो चुका है। एक विकार के लिए पहले जीनी स्थिति का मोटे तौर पर अनुमान किया जाता है। तत्पश्चात्इसका परीक्षण 'डी०एन०ए० निर्धारक प्रॉब' से किया जाता है। आजकल LGR किट (Ligation Chain Reaction Kit) को विकसित किया जा रहा है। जिससे आनुवंशिक विकारों का आणविक परीक्षण (Molecular Diagnosis) सरलतापूर्वक किया जा सकगा। इससे चिकित्सा विशेषज्ञों तथा जैव-रसायनविदों की सहायता के बिना सफल परीक्षण सम्भव हो सकेगा। जहां पर यह किट उपलब्ध नहीं होगें उन परामर्श केन्द्रों में DNA विशेषज्ञ, कोशिका विज्ञान तथा जैव रासायनिक प्रयोगशाला की सहायता अपरिहार्य होगी।

4. वंशावली निर्माण एवं पारिवारिक इतिहास (Pedigree Formation and Family History)

जब किसी रोग का परीक्षण कार्य पूर्ण हो जाता है, तो कुशल सलाहकार इस रोग की वंशावली का निर्माण करता है। इसके लिए भी प्रायः दो विधियों का प्रयोग करके बनाता है। पहली विधि से पूंछता तथा अवलोकन से ज्ञात साधारण लक्षणों के आधार पर। रोगी के सम्बन्धियों में उस रोग की आवृत्ति का अनुमान करता है। दूसरे रोग की आवृत्ति का पुनरीक्षण अन्य चिकित्सीय, रासायनिक एवं आणविक तकनीकों से करता है।

एक रोग के वंशागति स्वरुप के निर्धारण के लिए वंशावली निर्माण नितान्त आवश्यक है। इसमें एक व्यक्ति (रोगी) ज्ञात सभी सम्बन्धियों, उनकी आयु, जनन इतिहास, मृत गर्भ का जन्म, गर्भपात, जीवित जन्म आदि का वृतान्त, उन सम्बन्धियों के जन्म स्थान, गोत्र, जाति, उपनाम (Surname) वैवाहिक स्थिति, विवाह तिथि (यदि ज्ञात हो) आदि पारिवारिक सूचनाएं भी एकत्रित कर ली जाती है। ये सूचनाएं रोग के आनुवंशिक क्रियाविधि की व्याख्या में सहायक होती है।

5. खतरे की सम्भावना का विश्लेषण (Risk Recurrence Analysis)

एक बार जब परीक्षण हो जाता है तथा वंशावली एवं पारिवारिक इतिहास की सूचना प्राप्त हो जाती है तो सलाहकार परामर्श ग्राहक (Consultand)– रोगी या रोगी के सम्बन्धी की सन्ततियों में खतरे की सम्भावना ज्ञात करता है। सलाहकार के समक्ष प्रायः दो प्राकर के विकार होते है- एक तो वे जो एक जीन अथवा दो या दो से अधिक विकल्पियों के द्वारा वंशागत होते हैं, दूसरे वे जो बहुजीन अथवा जीन समूह के द्वारा वंशागत होते हैं।

एक अध्ययन के अनुसार लगभग 50 प्रतिशत आनुवंशिक विकार एक जीन द्वारा वंशागत होते है, 20 प्रतिशत गुणसूत्री विकार से सम्बन्धित होते है तथा 20 प्रतिशत विकार जन्मजात या बहुजीनों द्वारा नियन्त्रित होते हैं जिनका वंशागति प्रकार संदिग्ध होता है। गुणसूत्री विकारों में 80 प्रतिशत मामलें 'ट्राइसोमी-21' (Trisomi–21) से सम्बन्धित होते हैं। शेष विकार उत्परिवर्तन (Mutation) या सगोत्रता (Consanguinity) के कारण उत्पन्न देखे गये हैं। कूपर तथा स्मिथ (Cooper and Shmidth, 1986) ने आनुवंशिक विकारों की संदर्भ सूची (Catalogue) तैयार की है। रास्को तथा डाउन्स (Rasco and Downs, 1995) ने आनुवंशिक

विकारों के लिए उत्तरदायी अनेकों जीन का विस्तृत मानचित्रण (Gene Mapping) किया है। डॉ० वी० मकसिक (Dr. V. Mckusick) ने आनुवंशिक विकरों हेतु मानव में मेण्डलीय वंशागति की 'सन्दर्भ सूची' (Catalogue) प्रकाशित किया है। राबर्ट्स रॉथवेल, इमरी, नील एवं शुल्ज, स्टर्न आदि आनुवंशिक विदों ने इन विकरों की सम्भावनाओं का विस्तृत उल्लेख किया है।

एकल-जीन वंशागति (Single Gene Inheritance)

एक जीन द्वारा वंशागत विकार, प्रभावी या अप्रभावी विकल्पियों के द्वारा सन्ततियों में लाये जाते हैं। ये विकल्पी लिंगसूत्र (Sex Chromosomes) या अलिंगसूत्रों (Antosomes) पर स्थित होते हैं। अतः उक्त विकल्पियां तथा सहलग्न जीनों द्वारा नियन्त्रित विकृतियों के खतरे की सम्भावना का आंकलन 'मेंडल तथा अन्य वंशागति क्रियाविधियों' के अनुसार किया जा सकता है। चूंकि 'संयोग की कोई स्मृति नहीं होती' (Chance has no memory) इसलिए सलाहकार को पूर्व से ही तय कर लेना चाहिए कि प्रत्येक विकार की सम्भावना स्थापित नियमों से कुछ विचलित अवश्य हो सकती है।

लक्षणों का अध्ययन वंशावली तथा पारिवारिक इतिहास के माध्यम से करना चाहिए। इससे उस लक्षण की वंशागति की प्रत्येक सम्भावनायें ज्ञात हो जाती है। इसके अतिरिक्त उसके ऊपर अन्य उद्विकासीय प्रक्रियाओं के प्रभाव की सम्भावना भी ज्ञात कर लेनी चाहिए। वे लक्षण जो बहुविकल्पी के द्वारा नियन्त्रित होते हैं उनका अध्ययन भी रोगी के परिवार के अतिरिक्त उस समुदाय के अन्य लोगों के माध्यम से कर लेना चाहिए। वे रोग जिनके लिए बहुलजीन उत्तरदायी है, इसके खतरे की सम्भावना ज्ञात करना अत्यन्त कठिन है। इसमें जिस प्रकार रोगी के माता पिता के जीनी स्तर की सम्भावना नहीं ज्ञात हो पाती है उसी प्रकार रोगी तथा उसकी सन्ततियों में खतरे की सम्भावना ज्ञात करना कठिन है। अनेक विकृतियां/रोग जैसे हृदय रोग, रक्तचाप(उच्च), मानसिक विकार, मधुमेह, गठिया, अस्थि रोग, तपैदिक, हार्मोनी रोग, कैंसर आदि जिनको देखा गया है कि आनुवंशिक आधार प्रायः रखते हैं। यद्यपि ये रोग मेंडलीय वंशागति का पूर्णतः अनुसरण नहीं करते। ऐसा माना जाता है कि ये बहुलजीनों के द्वारा नियंन्त्रित होते है। कई जीन विभिन्न जीनी संस्थिति पर एक ही लक्षण को नियन्त्रण करते हैं। जिन पर पर्यावरण का प्रभाव भी पड़ता है। ऐसी स्थिति में खतरे की सम्भावना का आंकलन अत्यधिक सावधानी पूर्वक पूर्वतथ्यों के आधार पर करनी चाहिए।

6. मनोचिकित्सा (Psychotherapy)

अच्छे सलाहकार के लिए रोगी का मनोविज्ञान जानना भी आवश्यक है क्योंकि सलाहकार को विकृत जीन से उत्पन्न स्थितियों की सलाह एक बार में नहीं देना चाहिए। सर्वप्रथम सलाहकार को विकृत जीन तथारोगी अथवा उसके पिता/माता/सन्ततियों की भावनाओं से सम्बनध ज्ञात करना चाहिए तथा उत्तम सलाहकार उनकी भावनाओं को रोग से पृथक करने का पूर्ण प्रयास करता है। उदाहरण के लिए यदि किसी रोगी को यह ज्ञात हो जाये कि उसके पिता की मृत्यु 'हडिंगटन रोग' से हुई तथा उस रोगी में उक्त जानलेवा रोग की वंशागति के 50 प्रतिशत सम्भावना है। ऐसी परिस्थिति में सलाहकार सावधानी से मानवीय आधार पर सहानुभूति के साथ सूचना दे तथा मर्म तथा रोगी के मन को आहत न करें।

7. उपचार, बचाव के उपाय तथा रोगी की देखरेख (Cure, Preventive Methods and Follow–up action)

आनुवांशिक सलाहकार के यो कार्य क्षेत्र हैं, जिनके लिए वह चिकित्सक व समाज कार्यकर्त्ता की सहायता से रोगियों के सम्बधियों का मनोबल बढ़ा सकता है। इनका उल्लेख इसके पूर्व किया जा चुका है। संक्षेप में ये बचाव एवं उपचार पर महत्व देते हैं एवं ये तरीके रोगी को बचाव एवं उपचार के लिये प्रेरित करते हैं। इस प्रकार आनुवांशिक परामर्श एक वह प्रविधि एवं आनुवंशिक प्रणाली है जिसमें रोगी एवं रोग दोनों का निदान सलाहकार संगठित प्रयास से करता है।

3. आनुवंशिक अभियान्त्रिकी (Genetic Engineering)

आनुवंशिक अभियान्त्रिकी किसी जीव के आनुवंशिक पदार्थ के साथ किया गया मानवीय हस्तक्षेप है। इसके अन्तर्गत एक कोशिका में कुशलतापूर्वक DNA या तो प्रविष्ट किया जाता है या निकाल अथवा समाप्त कर दिया जाता है। यह क्रिया आनुवंशिक विकारों के संदर्भ में एक आदर्श उपचार है क्योंकि विकृत जीन एक सामान्य जीन के द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया जाता है। यह कार्य उन कोशिकाओं में किया जाता है जिनमें सामान्य जीन की गतिविधियां आवश्यक है।

इस प्रकार **कोशिका के भीतर कृत्रिम विधियों से जीनी फेरबदल करना आनुवंशिक अभियान्त्रिकी है**। सन् 1953 के पूर्व आनुवंशिकवेत्ताओं ने वंशागति के

नियम, संकरण के तरीके, रसायनों तथा विकिरणों से होने वाले उत्परिवर्तन (Mutation) की कुछ विधियों जान ली थी, परन्तु 1953 में DNA की रचना ज्ञात होने के पश्चात् स्पष्ट हो गया कि आनुवंशिक कूट (Genetic Code) क्या है तथा प्रोटीनों, डी०एन०ए० एवं जीन का निर्माण किस तरह होता है? आज यह ज्ञात हो चुका है कि एक जीन की कौन एवं क्या क्रियायें हैं। अतः अभियान्त्रिकी के अन्तर्गत जीन की गतिविधियों का पता लगाना एवं उसका मूल स्थान ज्ञात करना एक प्राथमिक आवश्यकता है। इसके पश्चात आवश्यक एवं सरल जीनों का कृत्रिम रुप से निर्माण करना एवं गुणसूत्र का मापन आवश्यक है जो शताब्दी के अन्तिम दशकों में अनुसंधान पूर्ण कर लिये गये हैं।

इस प्रकार की अभियान्त्रिकी की मूल विधि को **'पुनर्संयोजित डी०एन०ए०'** (Recombinent DNA) के नाम से पुकारा जाता है जिसका वर्णन पूर्व अध्याय में किंया गया है। इसमें दो प्रकार के एंजाइम की भूमिका होती है। जिनके माध्यम से डी०एन०ए० की कुण्डली में जीनों को बदला जाता है। एक जीव के किसी विशेष जीन को दूसरे जीव के डी०एन०ए० में पुनः रखा जाता है। इसीलिये जिस डी०एन०ए० में जैव तकनीक का उपयोग करके अन्य स्रोतों से जीन डालने के करण ही इसे विशिष्ट नाम "पुनःसंयोजित डी०एन०ए०" से जाना गया।

जैव तकनीक की कई विधियां खोजी गयी। एक विधि में प्लास्मिड का उपयोग होता है। ये प्लास्मिड (Plsamid) डी०एन०ए० के छोटे ब्रलय होते हैं। तथा जीवाणुओं की कोशिकाओं में निरर्थक तरंगते रहते है। इनका आनुवंशिक अभियान्त्रिकी में बड़ा महत्व है। सबसे पहले ये प्लास्मिड पृथक किये जाते हैं। इनके बलय में से एक छोटा टुकड़ा काटा जाता है तथा उस खाली स्थान पर बाहर से लिया गया जीन रोपित कर दिया जाता है। फिर उस प्लास्मिड को किसी जीवाणु में अधिकांशतया "एशरीकिया कोली" (E-Coli) या यीस्ट (Yiest) के जीवाणु में स्थापित कर देते हैं। जैसे-जैसे यह जीवाणु बहुगुणित होते जाते हैं। इसप्रकार जीवाणु एक खास प्रकार के उत्पादन का कारखाना बन सकता है क्योंकि नये डाले गये उस जीन में प्रोटीन के निर्माण का संदेश विद्यमान रहता हैं। इसे समझने के लिये यहां "इंसुलिन मधुमेह" (Insulin) नामक हार्मोन का उदाहरण लिया जा सकता है। इंसुलिन मधुमेह (Diabiteas Malitus) की एकमात्र औषधि है। यह इंसुलिन कारे गये सुवरों तथा पशुओं की अग्नाशय ग्रंथियों से तैयार किया जाता है। लेकिन अब जैवतकनीक से

मानव-इंसुलिन तैयार किये जाने लगे हैं। मानव में इंसुलिन बनाने वाले जीन को जीवाणु की कोशिका में रोपित करके यह कृत्रिम इंसुलिन तैयार किया गया है जो मारे गये पशुओं के इंसुलिन से की अधिक बेहतर हैं। शीघ्र ही आनुवंशिक अभियान्त्रिकी द्वारा "मानव वृद्धि हार्मोन" करने में सफलता प्राप्त हुई है। रोग के प्रतिरोधक क्षमता रखने वाला प्रतिरोधी प्रोटीन "इण्टरफेरॉन" विकसित कर लिया गया है जो कैंसर जैसे रोगों हेतु एक औषधि प्रमाणित हो सकती है।

इस प्रकार आनुवंशिक अभियान्त्रिकी से अनेक लाभ हैं। इसके कारण आनुवंशिक में एक नवीन क्षेत्र-**"जीनचिकित्सा" (Gene Therapy)** अस्तित्व में आया है। इसके अन्तर्गत मनुष्य में विद्यमान आनुवंशिक रोगों के जीनों के स्थान पर बेहतर जीन डालकर इलाज किया जाता है। उदाहरणस्वरुप जीनों से कई प्रकार के एन्जाइमों का निर्माण होता है। ऐसा ही एक एन्जाइम है- एडिनासिन डीमाइनेज (Adincine Deminase) । यह एन्जाइम कानवशरीर में न हो तो रोग की प्रतिरोधी शक्ति क्षीण हो जाती है तथा मनुष्य कालान्तर में मृत्यु का शिकार हो जाता है। लेकिन जीन चिकित्सा के द्वारा यह एन्जाइम पैदा करने वाले जीन को मनुष्य की अस्थि मज्जा में डालकर रोगी को बचाया जा सकता है।

आनुवंशिक अभियान्त्रिकी की एक और चमत्कारिक तकनीकहै- **क्लोनिंग (Cloning) अर्थात् "क्लोन" (Clone)** तैयार करना। प्रणियों में आमतौर पर लैंगिक पद्धति से संतान पैदा की जाती है। परन्तु "क्लोन" एक ही प्राणी से तैयार किये जा सकते हैं। इसके लिये मादा की कोशिका लेकर उसमें से केन्द्रक निकाल लिया जाता है तथा उसके स्थान पर शरीर के अन्य भाग की कोशिका लेकर उसके केन्द्रक को वहां स्थापित किया जाता है। इस प्रकार के अण्डाणु को मादा के गर्भाशय में रखने पर उससे नया जीव जन्म लेता है। सन् 1997 में इंगलैंड के डा० इयान बिलमुट ने क्लोनिंग की इसी पद्धति का उपयोग करके "डॉली" नामक भेंड़ को जन्म दिया। इस तकनीक को मानव पर भी लागू किया जा सकता है। कई विकसित देशों में इससे सम्बनिधत अनुसंधान तेजी से हो रहें हैं इससे मानव क्लोन भी तैयार किये जायेंगे। तथा इसके विकास की कितनी सम्भावनायें हो सकती हैं कहना विवादों से परे नहीं है। इतना जरुर है कि जीन-इंजीनियरी के मानव समाज को कई सारे लाभ है, जैसे अच्छी नस्ल के पशुओं को बड़ी संख्या में पैदा किया जा सकता हैं।

इस प्रकार पहली बार जब से हरगोविन्द खुराना ने 1970 में एक कृत्रिम जीन का निर्माण किया है तथा 1976 में वे अपने साथियों के साथ एक जीवाणु (Bactirium) में कृत्रिम जीन रोपित करने में सफलता प्राप्त की जो सामान्य रुप से काम करता देखा गया, तब से लेकर आज तक आनुवंशिक अभियान्त्रिकी ने काफी प्रगति की। एक विषाणु की पूर्ण आनुवंशिक संरचना का पता चलना (1977), डी०एन०ए० अनुक्रमण (Sequencing) की तकनीक विकसित होना (1977), एन्ड्रयूमुर्रे अलेक्जैफ्रीक(इंग्लैंड) व्यक्तियों की अलग-अलग पहचान करने के लिये डी०एन०ए० ए फिंशर प्रिंटिंग तकनीक विकसित करना (1984), अमेरिका में अन्तर्राष्ट्रीय मानव जीनोंम परियोजना की स्थापना तथा 15 वर्ष की कार्ययोजना तय किया जाना (1990), इयान बिल्मुट की क्लोनिंग पद्धति का विकास (1997), बहुकोशिकीय प्राणी का आनुवंशिक कूट (Code) खोलने में सफलता (1998), मानव के गुणसूत्र संख्या 22 का अनुक्रमण करने में सफलता (1999), मानवजीनोम के प्रारम्भिक प्रारुप का विकसित (2000) एवं मानव जीनोम के अनुक्रमण का कार्य सम्पन्न कर लेना (2001) आदि, ये आनुवंशिकी के मील के पत्थर हैं। इसके अतिरिक्त क्लोंनिंग के क्षेत्र में सियोल में एक गाय के बछड़े का क्लोन (फरवरी, 1998) जापान के होकैड़ो की स्त्रोवैक डेयरी में क्लोनिंग से जुड़वा बछड़ें उत्पन्न करना (अप्रैल 1999) कनाडा के नेक्सिया जैव तकनीकी केन्द्र के द्वारा बकरी का क्लोन उत्पन्न करना (अप्रैल 1999), तथा अमेरिका में बंदर का क्लोन उत्पन्न करना (जनवरी 2000) प्रमुख अभियान्त्रिक अनुसंधान है जो मानव क्लोन विकसित करने की दिशा में प्रगति का संकेत देते हैं।

लेकिन आज हम जान चुके हैं कि मानव कुण्डली में लगभग 35,000 घटक (जीन) ही होते हैं न कि 1,00000 से 1,50000 तक घटक। यह भी पता चला है कि एक घटक (जीन) एक गुण वाली मान्यता भी सत्य नहीं है। आज जीन अभियान्त्रिकी से मानव सभ्यता को कई लाभ है। इनमें प्रमुख इसप्रकार हैं :

1. जैव तकनीक से अंग प्रत्यारोपण करके मानव का कल्याण किया जा सकता है। चूंकि प्लास्टिक सर्जरी अर्थात् शल्य चिकित्सा में शरीर आसानी से बाहरी आरोपित अंगों को स्वीकार नहीं करता तथा शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। मानव क्लोनिंग की तकनीक के माध्यम से

चिकित्सक इच्छुक व्यक्ति के अस्थि, मंज्जा, बसा, कार्टिलेज और कोशिकाओं के समान जैविक संरचना वाला तादात्म्य प्रतिरुप तैयार कर सकेंगे जिससे चिकित्सा प्रणाली पर चमत्कारिक प्रभाव पड़ेगा।

2. सामान्यतया अध्ययन बताते हैं कि एक आदमी में 8 दोषयुक्त जीन होते है। इन्हीं दूषित जीनों के कारण मनुष्य कई बीमारियों का शिकार होता है। आनेवाले समय में क्लोनिंग तकनीक से इन विकारयुक्त जीनो से इलाज सम्भव हो सकेगी।

3. हृदय रोग जैसा अनेक ज़ानलेवा बीमारियों का निदान हमेशा के लिये सम्भव हो जायेगा क्योंकि अभियांत्रिकी से हृदय जैसी मार्मिक अंगों की कोशिकाओं के क्लोन तैयार किये जा सकेंगे तथा उन्हें बाद में इन अंगों के क्षतिग्रस्त हिस्से में स्थानान्तरण सम्भव हो जायेगा।

4. इस तकनीक की सफलता से कैंसर लाइलाज बीमारी नहीं रहेगी क्योंकि इससे निर्धारित कोशिका को सक्रिया अथवा निक्रिष्य बनाया जा सकेगा। कैंसर युक्त कोशिकाओं के स्वभाव को पूर्णरुपेण समझकरके इसे अभियान्त्रिकी पद्धति से इस अंग के बाहर निकाल कर वहां पर आवश्यक कोशिका प्रविष्ट करायी जा सकेगी।

5. गम्भीर दुर्घटना में व्यक्यिों के क्षतविक्षपत अंगों को पूर्व जैसा बनाया जा सकेगा तथा घायल मनुष्य के तन्त्रिका तंत्र और मेरु-दण्ड को पुनः उगाया जा सकेगा। इससे विकलांगता समाप्त की जा सकेगी।

6. कृत्रिम प्रजनन की सफलता दर 10 प्रतिशत से भी कम हैं। संतान की दच्छा रखने वाले माता-पिता इस पूरी प्रक्रिया में मानसिक प्रताड़ना झेलनी पड़ती है। क्लोनिंग से कृत्रिम प्रजनन की सफलता दर बढ़ेगी तथा निःसंतान दम्पत्ति को उनके इच्छानुकूल संतान प्राप्त होना सम्भव हो जायेगा।

7. क्लोन्रिग से बढ़ती उम्र की प्रक्रिया रोकी जा सकेगी जिससे वृद्धों की चिंतायें कम हो सकेगी तथा वृद्धावस्था से पुनः युवावस्था की ओर लौटना सम्भव हो सकेगा।

8. पालतू जंतु प्रजातियों के उत्तरोत्तर उत्तम नस्ल के क्लोन विकसित किये जो सकेंगे।

9. वे जन्तु प्रजाजियां जो विलुप्तता की कगार पर हैं उनके तथा विलुप्तशील वनस्पतियों के क्लोन बनाकर मानव सभ्यता को अधिकाधिक लाभ ही नहीं प्रकृति की जैव विविधता कायम रखी जा सकती है।

परन्तु जैव-तकनीकी परीक्षण अनेक खतरे भी उत्पन्न करते हैं जिनसे सम्बन्धित स्वर आज सम्पूर्ण विश्व में मुखरित हो रहें हैं क्योंकि मानव एक सामान्य जीव नहीं है वह एक सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्राणी है जो नैतिक मूल्यों, परम्पराओं एवं आदर्श मान्यताओं का सृजनकर्ता है। अभियान्त्रिकी से अनेक ऐसे प्रश्न उठते हैं जो उसके सामूहिक जीवन को खतरे में डालते हैं कि आज मानव जीनों को "इ-कोली" या ईस्ट के जीवाणुओं में रोपित बे रोक टोक किया जा रहा है। यह माना जाता है कि आज ये दोनों जीवाणु रोगजनक नहीं है। परन्तु इनमें बाहर के जीन डालने से ये कब रोगजनक बन जायेंगे, इसके बारे में विश्वास से नहीं कहा जा सकता। यह भविष्य ही बतायेगा कि यदि जैव तकनीकी प्रयोगशाला में कोई दुर्घटना हो जायें अथवा दुर्घटनावश कोई भी रोगजनक जीवाणु बाहर झाकर सारी दुनिया में तबाही मचा दे। ठीक उसी प्रकार माना जा सकता है जिस प्रकार परमाणु ऊर्जा जो सम्पूर्ण विश्व के लिए वरदान बन सकती है परन्तु परमाणु बमों के रुप में यही तकनीक महाविनाशकारी भी बन सकती है। इसके अतिरिक्त क्लोनिंग से सामाजिक एवं विचारणीय समस्यायें इस प्रकार है:

1. क्लोनिंग में बड़े पैमाने पर भ्रूण हत्या होगी। डाली नामक भेंड़ का क्लोन तैयार कने वाले अनुवांशिक विद्इयॉन विल्मुट के ऑकडों के अनुसार 277 केन्द्रकों के संयोग से 27 भ्रूण तैयार करने में सफलता मिली और इन भ्रूणों को 13 भेड़ों में प्रत्यारोपित किया गया किन्तु केवल एक भेड़ ही बच्चे का जन्म दे सकी।

2. जिस पितृ कोशिका से क्लोन मानव उत्पन्न किया जायेगा। उस क्लोन की कोशिका की आयु पितृ कोशिका के बराबर होगी। इस तरह से मानव क्लोन अपने पिता की आयु के बराबर हो जायेगा जब कि वह अपनी शैशवास्था में होगा अर्थात् क्लोन के जीवन से उतने वर्ष घट जायेंगे।

3. सन्तानोपत्ति में नर की भूमिका समाप्त हो जाने का खतरा पैदा हो गया है। क्लोनिंग के लिये जिस कोशिका से केन्द्रक लिया जाता है वह नर या मादा

में से किसी भी एक का हो सकता है। लेकिन क्लोनिंग में बादा को डिम्ब कोशिका अत्यावश्यक है। इससे नर की आवश्यकता पर प्रश्न चिन्ह लगता है। साथ ही साथ स्त्री की इच्छा पर निर्भर करेगा कि वह किस पुरुष के बच्चे की माँ बनना चाहती है। परन्तु क्या इसे समाज स्वीकारेगा?

4. केवल उच्चवर्ग अर्थात् अमीरों के लिये ही क्लोनिंग उपलब्ध हो सकेगी क्योंकि धनसम्पन्न लोग अपने क्लोन तैयार कराकर तैयार कराकर जैविक अंगों के सुरक्षित बैंक तैयार कर सकते हैं और जब किडनी, लीवर, हृदय, फेफड़ा आदि कोई अंग विकृत होगा तो वे क्लोन को मारकर उसके अंग को प्रत्यारोपित करवा सकते हैं। इससे अनेक नैतिक प्रश्न उभरेंगे तथा मानव-क्लोन अंगों हेतु एक बंधक एवं गुलामी का जीवन बितायेंगा।

5. मानव क्लोन से अपराध बढ़ने की आशंका जन्म लेती है। चूंकि क्लोन पूर्णतया जीन के स्थानान्तरण से पैदा होता है और जिस व्यक्ति की कोशिका से भ्रूण बनता है क्लोन उसका प्रतिरुप होता है। इससे एक रुप के कई लोग उत्पन्न होने से अपराध पर नियन्त्रण पाना पूर्णतः दुर्लभ होगा।

6. क्लोनिंग की सहायता से बड़ी संख्या में पेशेवर युवतियों का क्लोन तैयार कर सकते है। इससे देहव्यापार, नारी शोषण, तथा अपराध को प्रोत्साहन मिलेगा जो सामाजिक जीवन के लिये घातक सिद्ध होगा।

7. अनेक देशों में मानव मांस खाया जाता है जो मानव-क्रूरता एवं बर्बरता की पराकाष्ठा है। आगामी समय में व्यापारी सरलता से क्लोन-निर्माण करेंगे तथा वध करके मांस भक्षण करने की प्रवृत्ति प्रोत्साहित हो सकती है।

इस प्रकार आनुवंशिक अभियान्त्रिकी से मानव की सामाजिक व्यवस्था, समुदाय एवं परिवार पर गहरा प्रभाव पड़ेगा। एक ही परिवार में सम्बन्धों जैसे- पिता-पुत्र, माँ-बेटी, मां-बेटा, एवं पिता-पुत्री पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। मानसिक, सामाजिक तथा शारीरिक आदि समस्त सम्बन्धों में दरारें बढ़ सकती हैं। जमीन-जयदाद, पितृत्व-मातृत्व अधिकार सम्बन्धी कई वैधानिक प्रश्न उठते हैं जो मानव मूल्यों एवं सांस्कृतिक मान्यताओं को आघात पंहुचाते हैं। अतः आनुवंशिक अभियांन्त्रिकी जहां एक ओर मानव समुदाय हेतु वरदान सिद्ध हुई है- वहीं दूसरी ओर अभिशाप भी

प्रतीत होती है। इस प्रकार इस प्रविधि के दुष्परिणामों को यदि नजरंदाज कर दें तो इसका भावात्मक पक्ष अति लाभकारी है। अनेकों जानलेवा व्याधियां जो लाइलाज है, वे आनुवंशिक विकृतियां जिनसे सम्पूर्ण मानवजाति आतंकित एवं आहत रही है, उनसे मुक्ति पाने की सम्भावना बढ़ी है। अतः आनुवंशिक मानवविज्ञान के व्यावहारिक स्वरुप की कसौटी जैव तकनीकी की सकारात्मक एवं भावात्मक पक्ष में निहित है।

❑❑❑

सन्दर्भ सूची
(References)

- Allen, J.M 1962. The Molecular Control Activity. Mac Graw Hill Book Co, Inc.
- Anderson, R.C. 1951. Genetics and Medical Practices. **Lancet.** 71, 49-52.
- Armendares, S. and R.Lisker 1977 Human Genetics. Excerpta Medica Amsterdam Oxford.
- Austin, C.R and Bishop MWH 1957 Fertilization in Mammals **Bio. Review** 32:296-349.
- Avers, C.J. 1974. Biology of Sex. John Woley and Sons N.J.
- Avers, C.J. 1974.Evolution Haper & Row N.Y.
- Ayala, Francisco and J.A. Kigar 1980, Modern Genetics. Cummings Publishing Company. Inc.
- Basu, A.etal. 1976. Morphology Serology, Dermatogtyphics and Micro evolution in some village Population in Haiti. West Indies **Hum. Biol.**, 48-2-245-269.
- Bateson W. 1902, Mendel's Peinciple of Heredity. London.
- Bergsma, D. ed 1973. Birth defects Atlas and compendium William & Wilkins Baltimore.
- Berry, R.J. 1965. Teach Yourself Genetics. The English Univ. Press Ltd. London.
- Bhasin, M..K. , H.Walter. and H.Dankerr–Hopfe. 1992. The Distribution of Genetical Morphological and Behavioral Traits among the peoples of Indian Region. Kamla-Raj Enterprises Delhi.

- Birdsell, J.B. 1975. Human Evolution; An Introduction to New Physical Anthropology. Rand Mc.Nally College Publishing Co. Chicago.
- Blackeslee, A.F. and Fox A.L. 1932 Our Different Taste Worlds. J **Hered.** 23.96-110.
- Bodner, W.F. 1972. Evolutionary Significance of the HL-A System **Nature** 237 :139.
- Boyd, W.C. 1950 Genetics and Races of Man, An Introduction to Modern Physical Anthropology. Black Well Scientific Pub. Oxford.
- Boyd, W.C. 1956. Fundamentals of Immunology. Inter Science Wiley New York.
- Boyd, W.C. 1963. Four achievements of the genetical method in physical Anthropology. **American anthropologist**. 65:243-252
- Bruse, A.M 1954. Selection and Polymorphisim in the ABO Blood groups **Am Jour Phy. Anth.** New Series. 12: 559-597.
- Buettner-Janusch. J.1969. Origins of Man, Physical Anthropology. Wiley Eastern Pvt. Ltd. New Delhi.
- Carter. C.O. 1970. Human Heredity. Penguin Books
- Cavalli–Sforia L L and W.F. Bodmer 1971. The Genetics of Human Population. WH Freeman. 1971.
- Cavalli–Sforia, L L 1974. The Genetics of Human Population, **Science** Amer sept 80.
- Chu, E.H. and N.H. Giles. 1959. Human Chromosome Complements in normal somatic cells in Culture. **Am. J. Human Genet.** 11. 63–79.
- Chu, E.H.Y. and M.A. Bender 1962. Cytogenetics and Evolution of Primates. The Relatives of Man. **New York Acad. of Science.** New York.
- Chung C.S., Robinson O.W. and Morton N.E. 1959 A Note on deaf Mutism. **Ann. Hum.** 23:357-366.
- Chung. C.S. N.E.Morton and N.Yasuda 1966. Genetics in Inter racial Crosses. **Ann. N.Y.Acad**. Sci. 134(2). 666-687.
- Clarke, C.A. 1973. Human Genetics and medicine. English Language Book Society & ed Arnold Ltd London.

- Cooper, M.D. and A.R. Lawton 1974. The Development of the Immune System, **Sci Amer.** Nov 58.
- Crow, J.F. 1958. Some Possibilities for measuring selection intensities in man, **Hum. Biol**. 30: 1-13.
- Crow, J.F. and M. Kimura 1970. An Introduction to Population Genetic Theory, Harper & Row N.Y.
- Cummins H.and C.Midlo. 1943. Finger Prints, Palms and Soles; An Introduction to Dermatoghyphics. Blackiston Comp. Philadelphia.
- Cummins H.and C.Midlo.1961. Finger Prints, Palms and Soles, An Introduction to Dermatoghyphics. Dover Publications Inc. New York.
- Dankmeijer, J,1947. Finger Prints of African pygmies and Negroes. **Am. J.Phys.** Anthrop. 5-443.
- Darlinglon, C.D. 1966. Genetics and Man. Penguin Books Ltd. Hormondsworth Middlesex.
- Darwin, C. 1871. Desent of man and selection in the Relation to sex. Murray . London .
- Davenport, G.C. and C.B. Davenport. 1910. Heredity of skin Pigmentation in man. **Am Naturalist.** 44: 641-672.
- Dobzhansky, 1964. Genetics and the Origin of Species.Oxford Univ-Press. Kharagpur.
- Dobzhansky, 1970. Genetics and the Origin of Species. Columbia Univ-Press. New York.
- Dobzhansky, T. 1955. Evolution Genetics and Max Jhon wiley & Sons New York.
- Dobzhansky, T. 1962. Mankind Evolving Yale University Press New Heven.
- Dobzhansky, T. 1967. Genetic Diversity and the Diversity of Environments University of California Press. Berkeley.
- Dobzhansky, Th.1937. Genetics and the Origin of Species. Columbia Univ-Press. New York.
- Du Praw, F.J. 1970. DNA and Chromosomes Molecular and Cellular Biology Series, Holt Rinehart and Winston N.G.

- Dunn L.C. (ed) 1951 Genetics in twentieth Century, New York.
- Dunn.L.C. and T.Dobzhansky 1952. Heredity, Race and Society New American Library. New York.
- Ember, C.R., M.Ember and P.N Peregrine. 2002 Anthropology. 10th Eddition Parson Education Pvt Ltd. Delhi.
- Falconer, D.D. 1960. Introduction to Quantitative Genetics, Ronald Press. N.Y.
- Fang.T.C. 1950 Inheritance of a-b ridge Count on Human Hand. Ph.D. Dissertation. Univ of London.
- Farris. E.J. 1956. Human Ovulation and Fertility. Lippincott Philadelphia.
- Fawcett, D.W. 1958. The Structure of the mammalian spermatozoon. Int. Rev. Cyt. 7.19. 5–234.
- Finney, D.J. 1940-43. The detection of Linkage I-III, V-VII. **Ann Eugen.** 10. 171-214. 11: 10-30.
- Fisher R.A. 1930. The Genetical Theory of Natural Selection. Oxford Univ- Press. Oxford.
- Fisher, R.A. 1935. The detection of Linkage, **Am. Engen.** 6: 187-201.
- Fisher, R.A. 1947. The Rhesus Factor, A study in scientific Method. **Am. Scientist.** 35: 95-103.
- Furuhata. T.1927. The Difference of the Index of Finger Prints according to race. **Japan Med. World.** 7:162-264.
- Galton F.1976. History of Twins as a criterium of the relative powers of nature and nurture. J.Anthropol. Inst.
- Galton F.1992. Finger Prints, Mac Millian. London.
- Galton, F. 1869. Hereditary Genius, Mac Millan. London.
- Gates R. 1948. Human Ancestry from a Genetical Point of View. Harvard Univ-Press Cambridge.
- Gates, R.R. 1954. Genetic Linkage in Man. Junk, The Hague.
- Ginsburg, B.E. 1958. Genetics as a tool in the study of Behaviour Perspectives, **Biology and Medicine** 1:397-424.
- Graham J.B. 1977. Genetic Counseling in Classic Haemophilia **A.N.Engl. J.Med,** 296, 996.

- Haldane, J.B.S. 1932 The Causes of Evolution. Longmans. London.
- Haldane, J.B.S. 1938. A Method for investigating recessive characters in Man. **J.Genet.** 25: 251-255.
- Haldane, J.B.S. 1954. The Biochemistry of Genetics. Allen & Unwin. London.
- Hall, C.S. 1951. The Genetics of Behaviour in SS Stevens (ed) Handbook of Experimental Psychology. Chapt. 9, Wiley. New York.
- Hardy, G.H. 1908. Mendelian Proportions in mixed Population **Science.** 28;49-50.
- Harris, H. 1948. On Sexlimitation in Human Genetics. **Eugen. Rev.** 40:70-76.
- Harris, H.1959, Human Biochemical genetics. Cambridge Univ. Press. London.
- Harris. G.1975. Prenatal Diagnosis and Selection Abortion Harvard UnivPress. Cambridge.
- Harrison G.A. J.S. Weiner, J,M.Tanner and N.A. Baricot. 1964, Human Biology, An Introduction to Human Evolution, Variation and Growth. Clarendon Press. Oxford.
- Hartl, Daniel. et al. 1988. Basic Genetics Jones & Bartlett. Publ. Boston Porola Valley.
- Hogben L. et al 1932 The Genetic Basis of alkaptonuia, **Proc. Roy. Soc. Edinb.** 52:264-295.
- Hogben, L.T. 1933. Nature and Nurture. 143pp. Norton. New York.
- Holt, S.B. 1949. A quantitative Survey of the Finger Prints of a small Sample of British Population. **Ann. Eugen.** 14:39.
- Holt, S.B. 1968. The Genetics of Dermal Ridges. Charles C. Thomas Springfield III.
- Howells, W.W. and A.P. Slowey. 1956. Linkage Studies in Morphological Traits **Am. J. Hum. Genet** 8: 154-161.
- Hulse, F. S .1971. the Human Species, An Introduction to Physical Anthropology . Random House Inc. 2nd edition New York.
- Jacobs, P.A. 1977. Human Cytogenetics. Population aspects in

Human ed by S.Armendares etal. Excerpta medica Amsterdam Oxford.

- Jenkins, J.B. 1975. Genetics. Houghton Mifflin Boston.
- Jerne, N.K. 1973. The Immune System, **Sci Amer.** Aug. 34.
- Kimura, M. 1964. Diffusion Models in Population Genetics. **J.Appl. Probab**.1;177-232
- Kimura, M. 1983. The Neutral theory of molecular Evolution. Cambridge Univ-Press. Cambridge.
- Kruger, J. and F. Vogel.1975 Population Genetics of Unequal Crossing over. **J. Mol. Evol.** 4:201-247
- Lasker, G.B. and R.N. Tyzzer. 1982. Physical Anthropology. Ist Edition. Holt, Rinehart and Winston, New York. IIIrd Ed. C.B.S College Publishing.
- Learner, I.M. 1968. Heredity, Evolution and Society. W-H-Treeman & Co. Sanfrancisco.
- Levine, L 1969.Biology of the Gene C.V. Mosty Co Saint Louis .
- Lewontin, R.C. 1967. Population Genetics. **Ann. Rev. Genet**.1:37.
- Lewontin, R.C. 1977. Population Genetics in Human Genetics ed by S.Armendares et al . Excerpta Medica Amsterdam . Oxford.
- Li C.C 1955. Population Genetics. Chicago.
- Loewy, A.G. and Siekurifz P Cell Structure and Function. 2nd ed Holt Rinehart and Winston, N.Y.
- Mckusick, V.A. 1971. Medelian Inheritance in Man. 3rd ed. John Hopkins Press. Baltimore.
- Mendel, G. Experiments in Plant Hybridization . Translated in Classic Papers in Genetics Peters J.A. (ed) Preitice Hall Englewood Cliff N.J. 1959.
- Mering Von otto and L.Kasdan (eds) 1970 Anthropology and the Behavioral and Health Sciences. Univ-Pittsburg Press.
- Mohr, J. 1954. A study of Linkage in Man. 119 pp Munksguard. Copenhagen.
- Mohr, O.L 1934. Heridity and Disease. Norton, New York.
- Moody, P.A. 1967. Genetics of Man. Norton, New York

- Morgan, T.H. 1925. Evolution and Genetics. Princeton Univ Press, Princeton.
- Motulsky, A.G. 1977. Ecogentics ; genetic variation in susceptibility to enviromental agents. in Human Genetics by S.Armendares etal. Excerpta medica Amsterdam, Oxford.
- Mourant, A.E. 1954. The Distribution of Human Blood Groups. Blackwell. Oxford.
- Mourant.A.E. et al 1958. The ABO Blvodgroups Blackwell, Oxford.
- Muller, H.J. 1947 The Gene Pilgrim Trust Lecture. Proc. Roy Soc. 13. 134. 1-37.
- Newman, H.H., F. N. Freeman and K.J. Holzinger 1937. Twins; A study of Heredity and Environment, 369 pp Univ. of Chicago Press, Chicago.
- Newman, H.H. 1940. Multiple Human Birth. Doubleday , Doran & Co Inc, New York.
- Pearson K..et al. 1911-13 A monograph on albinism in Man Doulan & Co. London.
- Penrose, L.S. 1954. The Biology of Mental Defects. 303 pp Sidgwick & Jackson, London.
- Penrose, L.S. 1959. Outlines of Human Genetics, Wiley, New York.
- Penrose, L.S. 1963. Outline of Human Genetics. William Heinemann Ltd. London 2nd ed.
- Pontecorva G. 1958. Trends in Genetio Analysis. New York.
- Race, R.R. and R. Sanger. 1959. Blood Groups in Man . 3rd ed 377 pp C.C. Thomas Springfield III.
- Reed, S.C. 1963. Counselling in Medical Genetics. 2nd ed W.B.Saunders Co, Philadelphia.
- Reisfield, R.A. and B.D. Kahan. 1972. Markers of Biological Individuality. **Sci. Amer.** June 28.
- Renwick, J.H. 1971. The Mapping of Human Chromosomes **Ann. Rev. Genet.** 5:81.
- Robert, J.A. 1959. An Introduction to Medical Genetics, 2nd ed. 263 pp Oxford Univ. Press. London.
- Rothwell, N.V. 1977. Human Genetics Prentice -Hall of India. Pvt Ltd. New Delhi.

- Ruddle, F.H. 1973. Linkage Analysis in Man by Somatic cell **Genet. Nature.** 242: 165.
- Sagal, S.J.1974. The Physiology of Human Reproduction, **Sc. Amer** Sept. 52.
- Salzano, F.M. 1977. Human Population Genetics ; Retrospect and prospect in Human Genetics ed by S. Armendares etal etal. Excerpta medica Amsterdam, Oxford.
- Schatkin, S.B. 1953. Disputed Paternity. Proceedings 3rd ed 823 Bender, New York.
- Scheinfied, A. 1966 Your Heredity and Environment. Chaltoo and Windus London.
- Sharp, L.W. 1934. Introduction to cytology. Mc Graw Hill, New York.
- Shukla B.R.K and Sudha Rastogi. 1990. Physical Anthropology and Human Genetics. Palaka Prakashan, New Delhi.
- Simpson, GG, C.S. Pittendrigh and L. H. Teffany. 1957. Life ; An Introduction to Biology . Hercourt Brace and Co. New York.
- Simpson, R, 1957. The Biological Nature of Man, **Science** 152: 472.
- Singh, Udai Pratap. 1993. Biological microdifferentiation and Population Structure among Bhoksa tribals of Uttar Pradesh. Ph.D. thesis. Lucknow Univ, Lucknow.
- Singh, Udai Pratap. 1995, The Oraons of Ranchi. Asian Institute of Human Science and Development, Lucknow.
- Singh, Udai Pratap. 1997, Biological Anthropology. Prakashan Kendra, Lucknow.
- Singh, Udai Pratap and A.K. Singh, 1998. Human Ecology and Development in India. APH Publishing Corporation, New Delhi.
- Sinnott, Edmund W, L.C. Dunn and Theodosius Dobzhansky, 1981, Principles of Genetics, Tenth Ed. Tata Mc Graw Hill Publ. Co. New Delhi.
- Smith, C.A. 1953. The detection of Linkage in Human Genetics. **J.Roy. Stat. Soc.** 13.15.; 153-192
- Spuhler, J.N. 1948. On the number of gene in Man, **Science.** 108. 279-280.

- Steinberg, A.G. 1959. Methodology in human Genetics. **J.Med.** 34:315-334.
- Stern, C. 1960 Principles of Human Genetics. W.H. Freeman and Co. San Francisco, London.
- Stern, C. 1959 The Chromosomes of Man. J. Med. 34 301–314 also in **Am. J. Hum. Genet.** 11.2 part 2 301–314.
- Sutton, H.E. 1975. An Introduction to Human Genetics. 2nd ed Holt Rinehart and Winston N.G.
- Tjio, J.H. and T.T. Puck. 1958. The somatic chromosovmes of man. **Proc. Nat. Acad. Sci.** 441229-1237.
- Vogel F. and A.G. Motulsky, 1982. Human Genetics. Problems and Approaches. Springer Verlag Berlin Heidelberg, New York.
- Wagner, R.P. and H.K. Mitchell 1964. Genetics and Metabolism. 2nd ed. John Wiley & Sons.
- Wagner, R.P. and Mitcheld H.K. 1955. Genetics and Metabolism. Wiley. New York.
- Wardenburg P.J. 1957 The Twin Method in Wider Perspective, **Acta. Genet.** 7:10-20.
- Watson, J.D. 1965. The Molecular biology of the Gene. W.A. Benjaimin Inc, New York.
- Watson, J.D. 1976. Molecular Biology of the Genes, W A Benjamin, Menlo Park Calif.
- Weiner J.S. and J.A. Lourie 1981. Practical Human Biology. Academic Press, New York.
- Weiner, A.S. 1943. Bloodgroups and Transfusion. 3rd ed . 438 pp C.C. Thomas Springfield III.
- White, M.J.D. 1954. Animal Cytology and Evolution. 2nd ed. Chapter 5pp 77-108. Cambridge University Press. London.
- Whitehouse, H.L.K 1970. The Mechanism of Genetic Recombination, **Bio. Rev** 45: 265.
- Whittinghill, M 1965. Human Genetics and Its Foundations. Reinhold Publishing Corp. New York.
- Wilson, E.B. 1925. The cell in development and Heredity. Macmillan, New York.

- Winchester, A.M 1963. Heredity and Your Life. Dover Publication Inc. New York.
- Winchester, A.M. 1972. Laboratory Manual Genetics. 2nd ed. Willian C. Brown Dubuque 10 wa.
- Winehester, A.M. 1966. Genetics : A survey of the Priniciples of Heredity. IIIrd ed. Oxford & IBH Publishing Co, New Delhi.
- Woodworth, R.S. 1941. Heredity and Environment. 95 pp Bulletin 47. Social Science Research Council. New York.
- Wright, S. 1931. Evolution in Mendelian Population. **Genetics** 1:356-366.
- Wright, S. 1952. The Genetics of Quantitative Variability in Quantitative Inheritance ed by Waddington pp 5-41. H.M. Stationary Office London.
- Yanofsky, C. 1967. Gene Structure and Protienstructure. **Sci. Amer.** May 80.

❑❑❑

मानवविज्ञान में आनुवंशिकी एक अपरिहार्य क्षेत्र के रूप में विगत शताब्दी के पूर्वार्ध से जानी जाती रही। वंशागति के आधारभूत सिद्धान्तों के मानव पर हुए सत्यापनों ने इसकी उपयोगिता को मानव उद्विकास ही नहीं मानव विविधताओं के अध्ययनों में भी उत्तरोत्तर बढ़ाया। फलस्वरूप, आज सम्पूर्ण विश्व की आणविक प्रयोगशालायें 'मानव जीनोम' (Genome) के रहस्यों के उद्घाटन में रत हो गयीं हैं, जिससे मानव समुदाय के बहुआयामी कल्याण की सम्भावनायें बढ़ी हैं। **आनुवंशिक मानवविज्ञान** मानव के इन्हीं गूढ़ रहस्यों को समावेशित किये है। यह वंशागति के मानवोपयोगी मौलिक नियमों, वंशागति की क्रियाविधियों, इसके भौतिक आधारों (कोशिका, गुणसूत्र, जीन), रासायनिक घटकों (डी०एन०ए०, आर०एन०ए०, प्रोटीन) का विस्तार से विवेचन करती हुई विविध गणुसूत्री विसंगतियों, अध्ययन प्रविधियों पर गहन दृष्टिपात करती है। जनसंख्या, उद्विकास आनुवंशिक क्षेत्रों का पृथक रूप से वर्णन करने के पश्चात् आनुवंशिक विविधता को विश्व परिदृश्य में इसके अन्तर्गत दर्शाया गया है। अन्त में, कतिपय अति महत्वपूर्ण उपयोगी क्षेत्रों जैसे पितृजता निर्धारण, आनुवंशिक परामर्श, जीनी अभियान्त्रिकी की विशद परिचर्चा प्रस्तुत की गयी है। इस प्रकार प्रस्तुत ग्रंथ सामान्य पाठकों के अतिरिक्त स्नातक, परास्नातक एवं सिविल सेवा परीक्षा के छात्र-छात्राओं एवं सम्बद्ध क्षेत्र में रूचि रखने वाले शोधार्थियों एवं प्राध्यापकों के लिये अति उपयोगी अध्ययन विषय है।

डॉ उदय प्रताप सिंह सम्प्रति पं० दीनदयाल उपाध्याय राजकीय महिला महाविद्यालय में मानवविज्ञान विभाग में प्रवक्ता एवं अध्यक्ष हैं। इसके पूर्व डॉ० सिंह ने लखनऊ विश्वविद्यालय के मानवविज्ञान विभाग में लगभग 10 वर्षों तक नियमित अध्यापन किया है। इसी मध्य आपने **उरांव, भोक्सा एवं थारू** जनजातियों में गहन मानवैज्ञानिक क्षेत्रकार्य किया। जिनमें भोक्सा आदिवासियों में क्षेत्रकार्य पर आधारित शोधप्रबन्ध प्रस्तुत करने पर लखनऊ विश्वविद्यालय ने डा० सिंह को डाक्टोरेट उपाधि (Ph.D.) से 1993-94 में विभूषित किया। डा० सिंह एक अनुभवी अध्यापक एवं ख्यातिलब्ध लेखक है। अब तक आपके राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिकाओं में 32 लेख/शोधपत्र तथा विभिन्न भारतीय प्रकाशन केन्द्रों से 4 संदर्भ एवं पाठ्यपुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। इसके अतिरिक्त आप "इंडियन जनरल ऑफ फिजिकल एन्थ्रोपोलोजी एण्ड ह्यूमन जेनेटिक्स" के सहायक सम्पादक एवं 'अभिव्यक्ति' के सम्पादक हैं तथा अनेक राष्ट्रीय स्वयंसेवी एवं शासकीय शैक्षिक शोध संस्थाओं के सक्रिय सदस्य/सलाहकार के रूप में कार्य करते हुए 'एशियन इंस्टीट्यूट ऑफ ह्यूमन सांइस एण्ड डेवलपमेंट' लखनऊ के निदेशक (मानद) हैं।

मूल्य–**225/-**

ISBN 81-85936-45-5

NEW ROYAL BOOK COMPANY
1st Floor, Shah Trade Centre, 32/16, Valmiki Marg, Lalbagh, Hazratganj, Lucknow-226001 Phone : 91-522-2285607
E-mail:nrbc@rediffmail.com